ISSN : 2321-6581
जुलाई - दिसम्बर - 2022
वर्ष : X, अङ्क - II
कुल अङ्क - XIX
Impact Factor : 5.037

शोध नवनीत
SHODH NAVNEET

षाण्मासिकी अन्ताराष्ट्रिया शोध-पत्रिका

The Half Yearly International Peer-Reviewed Research Journal of Humanities and Oriental Knowledge

हमारा प्रयास समाजोपयोगी,
नवीन एवं प्राच्यज्ञान का प्रकाशन

"Our whole effort is to publish societal, innovative and oriental knowledge"

स्तुति प्राच्यविद्या समिति, गोण्डा (उ.प्र.)
STUTI PRACHYAVIDYA SAMITI, GONDA (U.P.)
अन्तर्जाल (Website) : www.shodhnavneet.com
अणुसंकेत (E-mail) : shodhnavneet@gmail.com
चलभाष (contact us) : +91-7800193920

शोध नवनीत

प्रधान सम्पादक : डॉ० अवधेश प्रताप सिंह ● सम्पादक : डॉ. प्रमोद कुमार मिश्र

जुलाई - दिसम्बर - 2022 ISSN : 2321-6581
वर्ष : X, अङ्क - II, कुल अङ्क - XIX
Impact Factor : 5.037

शोध नवनीत

SHODH NAVNEET

(षाण्मासिकी अन्ताराष्ट्रिया शोध-पत्रिका)

The Half Yearly International Peer-Reviewed (Refereed)
Research Journal of Humanities and Oriental Knowledge

हमारा प्रयास समाजोपयोगी, नवीन एवं प्राच्यज्ञान का प्रकाशन
Our whole effort is to publish societal, innovative and oriental knowledge.

प्रधान सम्पादक :
डॉ. अवधेश प्रताप सिंह
असिस्टेंट प्रोफेसर, संस्कृत विभाग, दिल्ली विश्वविद्यालय, दिल्ली

सम्पादक :
डॉ. प्रमोद कुमार मिश्र
असिस्टेंट प्रोफेसर-संस्कृत, गौतमबुद्ध राजकीय महाविद्यालय, अयोध्या (उ.प्र.)

सह-सम्पादक :
डॉ. आशुतोष पारीक
असिस्टेंट प्रोफेसर, सम्राट पृथ्वीराज चौहान राजकीय महाविद्यालय अजमेर, राजस्थान
डॉ. सुनील कुमार शर्मा
सहायक आचार्य, शिक्षाशास्त्र विभाग, श्री लालबहादुर शास्त्री राष्ट्रिय संस्कृत विद्यापीठ, नव देहली

स्तुति प्राच्यविद्या समिति
51- जबर नगर, पो. परास,
जिला - गोण्डा, उत्तर प्रदेश, भारत - **271403**
अन्तर्जाल (Website) : www.shodhnavneet.com
अणुसंकेत (E-mail) : shodhnavneet@gmail.com
चलभाष (contact us) : +91-7800193920

- **प्रबन्ध सम्पादक**
  डॉ. अनुराधा शुक्ला

- **विधिक सलाहकार**
  श्री सतीश कुमार मिश्र
  एडवोकेट, चैम्बर नम्बर 18 ए, हाईकोर्ट, प्रयागराज – 211 002

- **शोध नवनीत**
- **Shodh Navneet (International Peer-Reviewed (Refereed) Research Journal)**
- **ISSN : 2321-6581**
- **Impact Factor : 5.037**
- **वर्ष : X, अङ्क : II, कुल अङ्क : XIX, जुलाई – दिसम्बर 2022**

© प्रकाशक द्वारा सभी अधिकार सुरक्षित

- प्रकाशक
  स्तुति प्राच्यविद्या समिति (Reg. No. - 1137/2013-14)
  म० सं० 51, जबर नगर, पो० परास
  जिला – गोण्डा, उत्तर प्रदेश, भारत – 271403
- सम्पर्क सूत्र : +91-7800193920
- अणु-सङ्केत : **shodhnavneet@gmail.com**
- बेबसाइट : **www.shodhnavneet.com**
- सहयोग राशि (Subscription) : प्रति अङ्क **₹ 150**
  Soft Copy : Free by E-mail or Free Download from- www.shodhnavneet.com
- **D.D. 'Stuti Prachyavidya Samiti' Payable at 'Gonda'** के पक्ष में होना चाहिए।

- मुद्रित :
  प्रभा कम्प्यूटर्स एण्ड प्रिंटर्स
  30/21, यूनिवर्सिटी रोड, प्रयागराज – 211 002

नोट : शोधपत्र/शोधलेख के प्रति सम्पूर्ण उत्तरदायित्व उसके आलेखकों का होगा तथा लेखकों के मत से सम्पादक, सम्पादक मण्डल आदि का सहमत होना अनिवार्य नहीं है। सम्पादक मण्डल/समीक्षक समिति आदि द्वारा चयनित शोधपत्रों को निःशुल्क प्रकाशित प्रदान किया जाएगा। शोध नवनीत से सम्बन्धित किसी भी विवाद के लिए न्यायिक क्षेत्र जनपद न्यायालय फैजाबाद होगा। ₹ 1500 सहयोग राशि का भुगतान करके 'शोध नवनीत' शोध पत्रिका का वार्षिक सदस्य बना जा सकता है। सदस्य बनने पर सदस्यता प्रमाण-पत्र के साथ पत्रिका का वार्षिक दो अङ्क प्रदान किया जायेगा।

मुख्य संरक्षक (Chief Patrons)

- **प्रो. राम सेवक दुबे**

  कुलपति, जगद्गुरु रामानन्दाचार्य राजस्थान संस्कृत विश्वविद्यालय, जयपुर, राजस्थान
- **प्रो. रमेश कुमार पाण्डेय**

  पूर्व कुलपति, श्री लाल बहादुर राष्ट्रिय संस्कृत विद्यापीठ, नई दिल्ली
- **प्रो. के. रविशङ्कर मेनोन**

  पूर्व-कुलसचिव एवं संकायप्रमुख शिक्षाविभाग,

  राष्ट्रिय संस्कृत विद्यापीठ (मा. वि.), तिरुपति (आ.प्र.)
- **प्रो. राम किशोर शास्त्री**

  पूर्व-अध्यक्ष, संस्कृत विभाग, इलाहाबाद विश्वविद्यालय, प्रयागराज
- **प्रो. सत्यप्रकाश दुबे**

  आचार्य, संस्कृत विभाग, जयनारायण व्यास विश्वविद्यालय जोधपुर, राजस्थान
- **प्रो. जि.एस. कृष्णमूर्ति**

  संकाय प्रमुख, साहित्य विभाग, राष्ट्रिय संस्कृत विश्वविद्यालय, तिरुपति

सम्पादक मण्डल (Editorial Board)

- **प्रो. उमेश प्रसाद सिंह**

  संस्कृत विभाग, बनारस हिन्दू विश्वविद्यालय, वाराणसी
- **प्रो. रंजन त्रिपाठी**

  संस्कृत विभाग, दिल्ली विश्वविद्यालय, दिल्ली
- **डॉ. विजय कुमार शर्मा**

  वेद विभाग, सम्पूर्णानन्द संस्कृत विश्वविद्यालय, वाराणसी (उ.प्र.)
- **प्रो. सत्यपाल तिवारी**

  हिन्दी विभाग, राजर्षि टण्डन मुक्त विश्वविद्यालय, प्रयागराज
- **डॉ. गीता शुक्ला**

  एसोसिएट प्रोफेसर, संस्कृत विभागाध्यक्ष

  भगवानदीन आर्यकन्या स्नातकोत्तर महाविद्यालय, लखीमपुरखीरा (उ.प्र.)
- **डॉ. शैलेन्द्र कुमार शाहू**

  सहायक आचार्य, साहित्य विभाग,

  संस्कृत विद्या धर्म विज्ञान संकाय, काशी हिन्दू विश्वविद्यालय, वाराणसी
- **डॉ. आभा द्विवेदी**

  सहायक आचार्य, संस्कृत विभाग,

  सिद्धार्थ विश्वविद्यालय, कपिलवस्तु, सिद्धार्थनगर

- **डॉ. राघवेन्द्र मिश्र**
  सहायक आचार्य, संस्कृत विभाग, इलाहाबाद विश्वविद्यालय, प्रयागराज
- **डॉ. राजीव रंजन**
  असिस्टेंट प्रोफेसर, संस्कृत विभाग, दिल्ली विश्वविद्यालय, दिल्ली
- **डॉ. विवेक शर्मा**
  असिस्टेंट प्रोफेसर, संस्कृत विभाग,
  हिमाचल प्रदेश केन्द्रीय विश्वविद्यालय धर्मशाला, हिमाचल प्रदेश
- **डॉ. देवराज**
  सहायक आचार्य, संस्कृत इक्डोल,
  हिमाचल प्रदेश विश्वविद्यालय शिमला, हिमाचल प्रदेश
- **डॉ. हरिपद महापात्र**
  सहायक आचार्य, संस्कृत विभाग,
  साँकराइल अनिल विश्वास स्मृति महाविद्यालय झाडग्राम, पश्चिम बंगाल
- **डॉ. प्रताप चन्द्र राय**
  सहायक आचार्य, संस्कृत विभाग,
  सिधो-कानहो वीरसा विश्वविद्यालय पुरुलिया, पश्चिम बंगाल
- **डॉ. रवि प्रभात**
  सहायक प्रोफेसर, संस्कृत विभाग,
  महर्षि दयानन्द विश्वविद्यालय, रोहतक, हरियाणा
- **डॉ. शैलेन्द्र कुमार मिश्र**
  असिस्टेंट प्रोफेसर, मानवशास्त्र विभाग, इलाहाबाद विश्वविद्यालय, प्रयागराज
- **डॉ. विशाल श्रीवास्तव**
  असिस्टेंट प्रोफेसर, हिन्दी विभाग, राजकीय महाविद्यालय पचवस बस्ती (उ. प्र.)
- **डॉ. अमित कुमार मिश्र**
  विभागाध्यक्ष, पत्रकारिता एवं जनसंचार विभाग,
  जी.एन.एस. विश्वविद्यालय, जमुहार, सासाराम, विहार
- **श्री आदित्य प्रताप सिंह**
  असिस्टेंट प्रोफेसर, शारीरिक शिक्षा विभाग,
  राजकीय महाविद्यालय पचवस बस्ती (उ. प्र.)
- **डॉ. रजनीश शर्मा**
  प्राचार्य, कंचन देवी शिक्षक प्रशिक्षण महाविद्यालय
  एवं कंचन देवी कॉलेज ऑफ कम्प्यूटर साइंस भीलवाड़ा, राजस्थान
- **डॉ. परमेश कुमार शर्मा**
  सहायक आचार्य-शिक्षाशास्त्र विभाग,
  श्री लाल बहादुर राष्ट्रिय संस्कृत विद्यापीठ, नव देहली

समीक्षक समिति / निर्णायक मण्डल
(Review Committee/Referees Board)

- **प्रो. पी. के. साहू**
  शिक्षाशास्त्र विभाग, इलाहाबाद विश्वविद्यालय, प्रयागराज
- **प्रो. ई. एम. राजन**
  केन्द्रीय संस्कृतविश्वविद्यालयः, गुरुवायूर-परिसरः, तृश्शुर, केरलम्
- **प्रो. रमाकान्त पाण्डेय**
  निदेशक, मुक्तस्वाध्यायपीठ, राष्ट्रिय संस्कृत संस्थान (मा. वि.), नई दिल्ली
- **प्रो. सुशील कुमार शर्मा**
  अंग्रेजी एवं आधुनिक यूरोपियन भाषा विभाग, इलाहाबाद विश्वविद्यालय, प्रयागराज
- **प्रो. उमाकान्त यादव**
  संस्कृत विभाग, इलाहाबाद विश्वविद्यालय, प्रयागराज
- **प्रो. आमोदवर्धन कौण्डिन्न्यायन**
  वेद विभाग, वाल्मीकि विद्यापीठ, काठमाण्डू, नेपाल संस्कृत विश्वविद्यालय, नेपाल
- **डॉ. बजरंग बिहारी तिवारी**
  एसो. प्रोफेसर, हिन्दी विभाग, देश बन्धु डिग्री कॉलेज, दिल्ली विश्वविद्यालय, दिल्ली
- **प्रो. प्रदीप कुमार दीक्षित**
  संस्कृत विभाग, विक्रमाजीत सिंह सनातन धर्म कॉलेज, नवाबगंज, कानपुर (उ.प्र.)
- **प्रो. अमूल्य कुमार सिंह**
  प्रोफेसर, समाजशास्त्र विभाग, का. सु. साकेत महाविद्यालय, अयोध्या (उ.प्र.)
- **डॉ. राजीव सिन्हा**
  असिस्टेंट प्रोफेसर, संस्कृत विभाग, श्रीकृष्ण महाविद्यालय,
  नदीया (कल्याणी विश्वविद्यालय), पश्चिम बंगाल
- **डॉ. सुदेव**
  असिस्टेंट प्रोफेसर, संस्कृत विभाग, पाँच मुड़ा विश्वविद्यालय, बाँकुड़ा, पश्चिम बंगाल
- **डॉ. उमाकान्त प्रसाद**
  असिस्टेंट प्रोफेसर, शिक्षाशास्त्र विभाग, विश्वभारती, शान्ति निकेतन, पश्चिम बंगाल

परामर्शदात्री समिति (Advisory Committee)

- **डॉ. जी. गङ्गाधरन नायर**
  पूर्व डीन एवं प्रोफेसर, संस्कृत व्याकरण विभाग,
  श्री शङ्कराचार्य संस्कृत विश्वविद्यालय, कालडी, केरल
- **प्रो. ए. पी. सच्चिदानन्द**
  प्राचार्य, राष्ट्रिय संस्कृत संस्थान (मा. वि.), राजीव गाँधी परिसर शृङ्गेरी , कर्नाटक
- **प्रो. लक्ष्मीनिवास पाण्डेय**
  प्राचार्य, राष्ट्रिय संस्कृत संस्थान (मा. वि.), वेदव्यास परिसर बलहार, हिमाचल प्रदेश

- **प्रो. सुकान्त सेनापति**
  परीक्षा नियन्त्रक, राष्ट्रिय संस्कृत संस्थान (मा. वि.), नव देहली
- **प्रो. मनोज कुमार मिश्र**
  विभागाध्यक्ष, वेद विभाग, राष्ट्रिय संस्कृत संस्थान (मा. वि.), नव देहली
- **प्रो. सुरेश चन्द्र दुबे**
  पूर्व-आचार्य, अंग्रेजी एवं आधुनिक यूरोपियन भाषा विभाग,
  इलाहाबाद विश्वविद्यालय, प्रयागराज
- **श्रीमती प्रियंवदा काफ्ले**
  एसो. प्रोफेसर, इतिहास पुराण विभाग (वाल्मीकि विद्यापीठ),
  नेपाल संस्कृत विश्वविद्यालय, नेपाल
- **डॉ. विजय शङ्कर द्विवेदी**
  असिस्टेंट प्रोफेसर, संस्कृत विभाग, दिल्ली विश्वविद्यालय, दिल्ली
- **डॉ. शिव कुमार मिश्र**
  प्रधानाचार्य, एस.एन. इण्टर कॉलेज इन्दईपुर, अम्बेडकरनगर (उ.प्र.)

नोट : शोधपत्र/शोधलेख का प्रकृति के अनुसार सम्पादक मण्डल एवं समीक्षक समिति में अन्य विषय विशेषज्ञों का सहयोग लिया जा सकता है। शोधपत्र दो या दो से अधिक विशेषज्ञों की समीक्षा के अनन्तर ही प्रकाशित किया जाएगा।

सम्पादकीय (Editorial)

भारतीय संस्कृति सर्वदा से ज्ञानप्रधान संस्कृति रही है। संस्कृति शब्द 'सम्' उपसर्गपूर्वक 'कृ' धातु से क्तिन् प्रत्यय के योग से निष्पन्न होता है। जिसका अर्थ है- सम्यक् कृति अर्थात् सदाचारपूर्ण कर्म। यहाँ सम उपसर्ग से 'समपरिभ्यां करोतौ भूषणे' इस सूत्र से भूषण अर्थ में सुट् आगम हुआ है जिससे यह भाव द्योतित होता है कि संस्कृति को सम्यक्तया धारित करने वाला प्राणी ही लोक में भूषित होता है। लोक में हम दो प्रकार की सृष्टि का अनुभव करते हैं - चेतन सृष्टि तथा जड़ सृष्टि। इन दोनों प्रकार की सृष्टियों में चेतन सत्ता को प्रधान माना जाता है जिसका मुख्य कारण उसकी ज्ञानशक्ति है। चेतन अपनी ज्ञानशक्ति के द्वारा लौकिक एवं पारलौकिक दोनों प्रकार के कल्याण को अर्जित करता है। हमारे शास्त्रों में चतुर्दश एवं अष्टादश विद्यास्थानों का उल्लेख प्राप्त होता है जो हमारी संस्कृति की ज्ञानप्रवणता को निदर्शित करता है।

भारतीय ज्ञानपरम्परा की यह विशेषता रही है कि यहाँ जिज्ञासु तथा शिष्य की ज्ञानप्राप्ति की योग्यता के परीक्षण की व्यवस्था रही है। विभिन्न शास्त्रों के ज्ञान प्राप्ति से पूर्व जिज्ञासु में क्या योग्यताएँ होनी चाहिए इसका विस्तृत विवेचन हमें शास्त्रों में मिलता है। ऐसे योग्यता सम्पन्न जिज्ञासु को ही 'अधिकारी' कहा जाता है। वेदान्तशास्त्र में अधिकारी के लक्षण का विस्तृत विवेचन प्राप्त होता है। अद्वैतवेदान्त के प्रकरण ग्रन्थ वेदान्तसार में आचार्य सदानन्द जी कहते हैं - **''अधिकारी तु विधिवदधीतवेदवेदाङ्गत्वेन आपाततोऽधिगताखिलवेदार्थो अस्मिन् जन्मनि जन्मान्तरे वा काम्यनिषिद्धवर्जनपुरस्सरं नित्यनैमित्तिकप्रायश्चित्तोपासनानुष्ठानेन निर्गतनिखिलकल्मषतया नितान्तनिर्मलस्वान्तः साधनचतुष्टयसम्पन्नः प्रमाता अधिकारी''** अर्थात् जिसने इस जन्म में अथवा किसी और जन्म में वेदों और वेदाङ्गों का अध्ययन करके उनके अर्थ को आपाततः जान लिया है, काम्य और निषिद्ध कर्मों का परित्याग करके नित्य, नैमित्तिक, प्रायश्चित्त और उपासना कर्मों के आचरण से चित्त के समस्त कल्मषों के निवृत्त हो जाने के कारण जिसका अन्तःकरण अत्यन्त निर्मल हो चुका है, ऐसा साधनचतुष्टय से सम्पन्न (विवेक, वैराग्य, शमादिषटकसम्पत्ति और मुमुक्षुत्व) प्रमाता ही अधिकारी कहलाता है। इस प्रकार के अधिकारी को किस प्रकार के आचार्य से ज्ञान ग्रहण करना चाहिए, शास्त्र में इसका भी विस्तृत निर्देश मिलता है। छान्दोग्य उपनिषद् का वचन है - **'आचार्याद्धैव विदिता विद्या साधिष्ठं प्रापयति'** (छान्दोग्योपनिषद्, ४.९.३) अर्थात् आचार्य से ग्रहण की गयी विद्या ही श्रेष्ठ होती है तथा इष्ट को प्राप्त कराने में समर्थ होती है। इसी उपनिषद् में कहा गया है - **'आचार्यवान् पुरुषो वेद'** (छान्दोग्योपनिषद्, ६.१४.२) अर्थात् प्रशस्त आचार्य ही ब्रह्म को जानता है। जो जिज्ञासु ऐसे ब्रह्मविद प्रशस्त आचार्य से ज्ञान प्राप्त करता है वही ब्रह्म को जानता है। अब यह जिज्ञासा होती है कि प्रशस्त आचार्य कौन होता है? बृहदारण्यक उपनिषद् में कहा गया है-**'यश्च श्रोत्रियोऽवृजिनकोऽपहतः'** (बृह. उप., ४.३.३) अर्थात् जो श्रोत्रिय, अवृजिन तथा अपापहत है,

वही आचार्य होता है। श्रोत्रिय का अर्थ होता है – **वेदज्ञ**। जो व्यक्ति शास्त्रों में विहित कर्मों का शास्त्रविधि से अनुष्ठान करते हुए निष्पाप हो जाता है। अपापहत का तात्पर्य है जो मुक्ति से भिन्न लौकिक फलों की इच्छाओं से ग्रस्त नहीं होता है। श्रुति का कथन है कि जो जिज्ञासु ऐसे आचार्य से शास्त्र का अध्ययन करता है वही शास्त्रों के तात्पर्य को सम्यक्तया ग्रहण कर पाता है तथा अपने परम लक्ष्य को अर्जित करने में सफल होता है।

'शोध नवनीत' शोध पत्रिका के प्रकाशन को एक दशक पूर्ण हो रहा है। इसका यह १९वाँ अंक (जुलाई–दिसम्बर २०२२) आप सभी सुविज्ञों को समर्पित है। इस अंक में वैदिक एवं लौकिक साहित्य से सम्बद्ध, व्याकरणशास्त्र के गूढ़ विचारों के साथ विविध सामाजिक, सांस्कृतिक, साहित्यिक एवं मानविकी विषयों को समाहित करने वाले संस्कृत, हिन्दी एवं अंग्रेजी भाषा के चयनित शोधालेखों का संकलन किया गया है। ये आलेख अपने विषय के प्रतिपादन के साथ ही नवीन शोध के प्रेरक भी हैं। अतः इनका पठन, मनन और सम्प्रेरण शोधार्थियों के लिए अत्यन्त उपादेय है। प्राच्यज्ञान को संरक्षित एवं प्रकाशित करने वाली वर्तमान शोध को वैश्विक पटल पर ले जाने के लिए अनवरत प्रयत्नशील यह पत्रिका आपके सफल अनुसन्धान की सहगामिनी और प्रेरिका के रूप में सदैव आपके साथ है – '**चरैवेति चरैवेति**'।

प्रधान सम्पादक/सम्पादक

विषयानुक्रमणिका
(CONTENTS)

- **निर्वाणम्** 1
  तुशि चक्मा
- **शाकुन्तले पर्यावरणसंरक्षणम्** 7
  डॉ. शैलेंद्र कुमार साहू
- **कर्णचरित्रस्य भारतीयसमाजस्योपरि प्रभावः** 12
  देवाशिष अग्रवाला
- **वाल्मीकिरामायणे धर्मस्यावधारणा** 17
  डॉ. पारमिता पण्डा
- **पद्मपुराणे द्वादशीव्रतमाहात्म्यम्** 27
  दीपिका बेहेरा
- **पुराणेषु उद्भिदानामुपयोगिता** 31
  मधुमिता साहु
- **अद्वैतसिद्धान्तः सूफिसिद्धान्तः च किञ्चित् दार्शनिकविचिन्तनम्** 38
  सौम्या. के
- **धर्म एवं दर्शन : एक विश्लेषण** 44
  डॉ. अवधेश प्रताप सिंह
- **रघुवंशमहाकाव्य में प्रतिबिम्बित भारतीय संस्कृति के तत्त्व** 51
  डॉ. मुकेश कुमार गुप्ता
- **श्रीकृष्ण एवं प्रबंधन के सिद्धान्त** 60
  डॉ. महेश कुमार शर्मा

- **पुराणों का वैशिष्ट्य एवं महत्त्व** **67**
  डॉ. सुरेश कुमार सान्दू
- **वैदिक अर्थव्यवस्था का स्वरूप** **73**
  डॉ. आभा द्विवेदी
- **जगद्विषयकचिन्तन के सन्दर्भ में विविध मत-मतान्तरों की वेदमूलक समीक्षात्मिकी विवेचना** **77**
  डॉ. आशुतोष पारीक
- **महाकवि भारविविरचित 'किरातार्जुनीयम्' में शृङ्गार रस-समीक्षा** **87**
  चन्द्र धर मिश्र
- **अमरता के शिल्पी 'ऋभु देव' : एक विवेचन** **91**
  श्रीमती अर्चना भार्गव
- **आचार्य पाणिनि पूर्व संस्कृत व्याकरण का इतिहास** **98**
  डॉ. गुंजन गर्ग
- **संस्कृत काव्यों में आभूषण** **109**
  कुलदीप
- **Sapta Dhātu : Seven Essential Body Tissues in Principal Upaniṣads** **113**
  Jyothi L
- **Tribal class, their world in the view of Mahasweta Devi** **118**
  Dr. Priyanka Sharma
- **RFID Technology Application in Libraries** **128**
  Seema Yadav
- **Web Page Analysis of National Institute of Pharmaceutical Education and Research (NIPER) Websites in India : A Webometric Study** **133**
  Manish Kumar Yadav, Dr. Rajani Mishra
- **हिन्दी-मराठी स्त्री आत्मकथाओं में व्यक्त जीवन संघर्ष** **143**
  (जमाने में हम व आयदान के विशेष सन्दर्भ में)
  चाईना मीणा

- **हिन्दी कथा साहित्य में किसान जीवन** **149**
  डॉ. सविता टाक
- **अमरकांत के पात्रों में जीवन-जीने की लालसा** **152**
  जिज्ञासा मिश्रा, डॉ. महेन्द्र कुमार त्रिपाठी
- **उदात्त वैचारिक पृष्ठभूमि पर निर्मित उपन्यास : पुनर्नवा** **156**
  अरविंद कृष्ण उपाध्याय
- **वर्तमान में महात्मा गाँधी के शैक्षिक कार्यों की उपादेयता** **162**
  डॉ. सीमा कुमारी
- **डिण्डौरी जिले के उच्च माध्यमिक विद्यालय स्तर के विधार्थियों की वैज्ञानिक अभिवृत्ति एवं समायोजन क्षमता का उनकी शैक्षणिक उपलब्धि पर प्रभाव का तुलनात्मक अध्ययन** **167**
  किशन कुमार यादव, डॉ. सुनील कुमार जैन
- **भूमि उपयोग एवं कृषि परिवर्तन डिण्डौरी जिले के संदर्भ में** **177**
  प्रसन्न वदन मरकाम, डॉ. भुनेश्वर टेम्भरे

Shodh Navneet (International Peer-Reviewed Research Journal)
ISSN : 2321-6581, IIJ Impact Factor : 5.037, Vol. XIX, July - Dec. - 2022

निर्वाणम्

तुशि चक्मा*

उपक्रमणिका

यत्र सर्वधर्माणां मुख्यं लक्ष्यं स्वर्गप्राप्तिः भवति तत्र बौद्धधर्मस्य मुख्यलक्ष्यं निर्वाणप्राप्तिः। बौद्धधर्मे निर्वाणविषये न स्पष्टतया उक्तः। गौतमबुद्धः विविधविमर्शेन निर्वाणविषये संक्षिप्तविचारं दत्तवान्। बौद्धधर्मे चत्वारि आर्यसत्यानि सन्ति, यथा– शोकोः अस्ति, शोकहेतुः अस्ति, शोकमुक्तिः अस्ति शोकनिर्गमनमार्गः च अस्ति। अस्य च शोकस्य निर्गमनमार्गः अष्टाङ्गमार्गः भवति। यत् सम्यक् ज्ञानं, सम्यक् निश्चयः, सम्यक् वाक्यं, सम्यक् कार्यं, सम्यक् जीविका, सम्यक् व्यायामः, सम्यक् स्मृतिः सम्यक् समाधिश्च। अभ्यासेन् एव परममुक्तिः निर्वाणं वा प्राप्तुं शक्यते। अतः तृष्णायाः जन्म–मृत्यु–दुःखचक्रस्य पूर्णनिरोधस्य नाम निर्वाणम्।

निर्वाणस्य विचारः

'नि' उपसर्गेण सह बाणशब्दस्य संयोगेन निर्वाणशब्दस्य निर्माणं भवति। अभावक्षयान्तादिभावे 'नि' इति उपसर्गः। बाणशब्दस्य आभिधानिकार्थः धनुबाणः। किन्तु अत्र तृष्णार्थे बाणशब्दः प्रयुज्यते। अतः निर्वाणम् इत्यर्थः तृष्णाभावः। गौतमबुद्धः संसार–मानवता–कल्याणार्थं यस्य धर्मस्य प्रचारं कृतवान् तस्य मुख्यं लक्ष्यं निर्वाणम् अस्ति। यः धर्मः अवलोकितः तृष्णाबन्धनभङ्गः निर्वाणम्। गौतमबुद्धः उक्तवान् – यथा पुनः पुनः जन्मं दुःखं भवति तथा मृत्युः अपि शोकस्य कारणम्। यतः मृत्युः शोकान्तं न करोति। पुनर्जन्मं तं अवश्यं गृह्णीयात्। प्रश्नः अस्ति यत् एतत् पुनर्जन्मं किमर्थम्। तृष्णा कामस्य मुख्यकारणम्। अतः तृष्णायाः पूर्णतया उन्मूलनस्य आवश्यकता पुनर्जन्मनिवारिता। यदि जन्मं न स्यात् तर्हि मृत्युः न भविष्यति। जन्ममृत्युप्रदक्षिणमिदं बौद्ध–भाषायां 'भवचक्रम्' इति कथ्यते। यदि त्वं तस्मात् मुक्तः न भवसि तर्हि शोकः न समाप्तः भवति। संक्षेपेण सर्वदुःखानां निवृत्तिः निर्वाणम् इत्युच्यते।

गौतमबुद्धः उवाच – हे भिक्षवः ! इदं जगत् प्रज्वलितं भवति। किं कारणमिदं जगत् प्रज्वलितं भवति। प्रज्वलितमिदं जगत् रागाग्निद्वेषाग्निमोहाग्निभिः। धर्मपदे उक्तं – जगत् अनित्यं। दुःखितमात्मं च। न किमपि लोके स्थायित्वं वर्तते। अयं संसारः सर्वदा परिवर्तनशीलः एव भवति। यत्र अनित्यं जीवलोकं तत्र तत्त्वं कुतः? सर्वविधास्तित्वविनाशनम् इति निर्वाणम्। अत्रैव जन्ममृत्युर्निवर्तते तृष्णा च निवर्तते।

---

* अतिथि शिक्षिका, संस्कृत–विभागः, धर्मनगरं शासकीय महाविद्यालयं धर्मनगरम्, त्रिपुरा (उः)

निर्वाणस्य प्रकारयोः चर्चा

निर्वाणं द्विविधं –सोपादिशेषनिर्वाणं अनुपादिशेषनिर्वाणं च।

१. **सोपादिशेषनिर्वाणम् –** रूप–दुःख–परिभाषा–संशोधन–विज्ञानम् इति जीव–महापुरुषस्य पञ्च–तत्त्वानि शरीरे वर्तते तावत् निर्वाण–प्राप्तिः भवति तस्य नाम सोपादिशेषनिर्वाणम्। अत्र सामग्री वर्तमानजीवनस्य शरीरं मनः च निर्दिशति। सामान्यजनाः आन्तरिक–वाह्येन्द्रियाणां प्रति आकृष्टाः भवन्ति। सोपादिशेषनिर्वाणग्रहणं मुक्तार्याः न रूप–रस–शब्द–गन्ध–स्पर्श–प्रियाः। यावत् भौतिकशरीरतत्त्वानि सन्ति तावत् तेषां कर्मम् अवरुद्धं भवति। अतः पञ्चस्कन्धः विद्यमानावस्थायां यदा भक्तः शोकविनाशेन निर्वाणज्ञानं साक्षात्करोति तदा स सोपादिशेषनिर्वाणम् उच्यते।

२. **अनुपादिशेषनिर्वाणम् –** निर्वाणदर्शी मुक्तपुरुषः पञ्चस्कन्धं नाशयित्वा यदा परिनिर्वाणे निरुध्यते तदा ततः अनुपादिशेषनिर्वाणम् इत्यच्यते। एतत् निर्वाणं सम्पूर्णतया निवारणीयम्। एतत् निर्वाणं प्राप्य जनः पुनः न प्रज्वलिष्यति। सः जन्ममृत्युशृङ्खलाभ्यो विमुक्तः सर्वथा। एतादृशस्य निर्वाणस्य न विपाकः, एषा स्थितिः अनिर्वचनीयः, सुख–दुःख–प्रशमनं करोति। सुख–दुःख–प्रशमनं परमं सुखं भवति। अत्रैव नित्यलोकप्रवाहः समाप्तः भवति। गौतमबुद्धः उक्तवान् – ''निब्बानं परमं सुखम्।'' आचार्यः नागार्जुनः निर्वाणस्य विषये उक्तवान्– ''अप्रतीतम् असस्प्राक्तम् अनुच्छिन्नम् अशाश्वतम्,अनिरुद्धम् अनुत्पन्नम् एव निब्बानं उच्यते।'' गौतमबुद्धः बोधं प्राप्य ४५ दीर्घवर्षपर्यन्तं धर्मप्रचारं कृतवान्।

निर्वाणस्य स्वरूपविषये भिन्नानि मतानि

गौतमबुद्धः स्व शिष्यान् निर्वाणस्य स्वरूपविषये स्पष्टतया न वर्णितवान्। निर्वाणस्थितिविषये यदि कश्चित् प्रश्नः पृष्टः सः किमपि प्रश्नस्य उत्तरं न दत्तवान्। निर्वाणविषये बुद्धस्य मतं किमस्ति तत् सम्यक् निर्धारयितुं न शक्यते। बुद्धस्य निधनानन्तरं तस्य शिष्याणां मध्ये निर्वाणविषये असहमतिः अभवत् यद्यपि ते सर्वे निर्वाणमेव दुःखनिवृत्तिः इति सहमताः आसन्। निर्वाणविषये बौद्धानां चत्वारि भिन्नानि मतानि सन्ति, यथा–

१. **निर्वाणं नित्यं विलोपनम् –** निर्वाणं शब्दस्य अर्थः निवर्तनीयमिति बहवः जनाः उक्तवन्तः। रतनसूत्रे उक्तम्– ''निब्बन्ति धीरा यथायं पदीपो'' यथा तैलस्य अभावे दीपज्वाला निष्पद्यते, तथा कामपात्रे निवर्तते जीवनं निष्पद्यते। कामं नीत्वा जीवनम्। कामनाशेन निर्वाणप्राप्ते जीवनस्य पूर्णविनाशः भवति। एतत् मतं बुद्धस्य अनित्यवादस्य सह सुसंगतः अस्ति। अनित्यवादानुसारे– ''**सर्वम् अनित्यम्।**'' केवलं परिवर्तनमेव महत्त्वपूर्णम् अस्ति। स्थायी सत्ता वस्तुतः किमपि नास्ति। निर्वाणावस्थायां सत्त्वस्य सम्पूर्णविनाशः भवति। अस्य मतस्य समर्थकाः द्वे प्रकारौ निर्वाणस्य उल्लेखं कृतवान् – निर्वाणं परिनिर्वाणं च। जीवतो निर्वाणमाप्नोति अर्हत् इति उच्यते। अर्हतस्य जीवनं निष्क्रियावस्था न भवति। निर्वाणं प्राप्य गौतमबुद्धः कार्यजीवनं जीवितवान्। परिनिर्वाणं प्राप्य सर्वाणि कर्माणि निवर्तन्ते, यतः तदा सत्ता एव विलुप्ता भवति।

परिनिर्वाणं इति परमार्थः। हिनयानी बौद्धाः निर्वाणस्य अस्य प्रकारः नकारात्मकं व्याख्यानं दत्तवन्तः।

अस्य मतस्य आलोचनायां हिरियन्नः अवदत् – यदि निर्वाणं केवलं अभावस्य वा निष्त्वस्य वा अवस्था उच्यते तर्हि बुद्धविहितमार्गेण न कोऽपि मानवः निर्वाणप्राप्त्यर्थं प्रेरयिष्यति फलतः च बुद्धस्य उपदेशाः विफलाः भविष्यन्ति। अतः निर्वाणस्य अभावः, सत्ताप्रलयः इति व्याख्यातुं न शक्यते, यत् बुद्धस्य उपदेशं सामान्यजनानां निकटे स्वीकार्यं कर्तुं शक्यते।

२. **निर्वाणं एकं नित्यानन्दमवस्था** – निर्वाणशब्दस्य अर्थः शीतलीकरणं वा शीतत्वं इति ये अवदन् ते निर्वाणं नित्यानन्दमवस्था इति अवदन्। निर्वाणम् इत्येव व्याख्यानुसारेण न कामनिवृत्तिः न वा भावनिवृत्तिः इत्यर्थः। धर्मपदे निर्वाणं सङ्गरहितं, निर्भयं, सुखदवस्था इति कथ्यते। निर्वाणं शान्तावस्था यथा कामाः विग्रहाश्च निवर्तन्ते। कामो मनः बाधते, उद्दीपयति, निर्वाणं प्राप्य मनः निरुध्यते मनश्च निर्भयं शोकात्मनिरोधावस्थायां च विराजयति। नागसेनः ग्रिकराजः मिलिन्दं निर्वाणस्य विषये अवदत् – निर्वाणमवाप्नोति यः पुरुषः परमदुःखं निवर्तते, न पुनः लौकिकबन्धैः बद्धो भवति, नित्यानन्दशान्तिं च प्राप्नोति। सर्वपल्ली राधाकृष्णन् अस्य मतस्य समर्थने अवदत् – "निर्वाणस्य लक्ष्यं न शून्यताप्राप्तिः, सिद्धिप्राप्तिः, परमशान्तिं आनन्दमयावस्था च प्राप्तिः निर्वाणस्य लक्ष्यं। हिरियन्नः निर्वाणस्य विषये उक्तवान् – अस्य प्रकारस्य विचारः उपनिषदस्य मोक्षस्य अवधारणायाः समानम्। उपनिषदि मोक्षं परमशान्तिं आनन्दमयावस्था च कथ्यते। निर्वाणप्राप्तिः आनन्दमयनित्यत्वेन एव इत्यर्थः।

निर्वाणस्य विषये अस्य प्रकारस्य मतं बुद्धस्य जीवनपद्धत्या सह सङ्गतम् अस्ति। गौतमबुद्धः निर्वाणं परमादर्शः कथितवान्। यदा निर्वाणं नित्य–शान्त–आनन्दावस्था इति गण्यते तदा एव तत् परमं वा आदर्शं वा सामान्यजनेन ग्राह्यं भवितुम् अर्हति, निर्वाण–प्राप्तिमिच्छा च भवितुमर्हति। निर्वाणं यदि निरपेक्षं शून्यत्वं न कश्चित् सत्त्वविलोपनमुत्साहः स्यात्। गौतमबुद्धस्य जीवनं तस्य सन्देशः अस्ति। गौतमबुद्धः निर्वाणं प्राप्य निष्क्रियजीवनं न जीवितवान्। सः जीवितानां हिताय सक्रियजीवनं जीवितवान्। एवमेव परिनिर्वाणोऽपि नित्यविलुप्तः न भवति। परिनिर्वाणावस्थायां आत्मा शान्त–आनन्द–स्थितौ विराजयति।

परन्तु निर्वाणविषये इदमपि भावपूर्णं मतमपि समयक् बौद्धमतं स्वीकुर्वितुं न शक्यते, यतः एतत् बुद्धस्य अनात्मवादस्य अवज्ञां कृतवान्। गौतमबुद्धस्य मते – '**सर्वम् अनात्मकम्।**' स्थायी आत्मा इति न विद्यते। आत्मनः चैतन्यधारा इत्यर्थः। निर्वाणं आदर्श नित्यावस्था मत्वा नित्यात्मनास्तित्वं बोधयति, यः नास्तिकवादविरोधः। परन्तु अस्य मतस्य समर्थकाः अस्य विषयं भिन्नरूपेण व्याख्यां कर्तुम् इच्छन्ति। तेषां व्याख्यानुसारे अनात्मवादे गौतमबुद्धः व्यक्तिगतात्मना अस्तित्वं तिरस्कृतम्, आत्मानं परमात्मा वा न निराकरोत् नित्यः। निर्वाणप्राप्तेः अनन्तरं यद्यपि जीवस्य व्यक्तिगतसत्त्वस्य नाशः भवति तथापि सः परमात्मरूपत्वेन एव तिष्ठति। किन्तु निर्वाणविषये अस्य प्रकारस्य व्याख्या अपि बौद्धमतत्वेन स्वीकृतं न शक्यते। गौतमबुद्धः

निर्वाणविषये न स्पष्टतया किमपि उक्तवान्, न च निर्वाणं विचारविलोपनम् इति वर्णितवान्, तेन च सुखदशा इति न परिकीर्तितम्। अतः द्वितीयः मतं अपि विना संकोचं बौद्धदृष्टिः वक्तुं न शक्यते।

३. निर्वाणम् इति नित्याविकारमवस्था– हीनयानसम्प्रदायेषु मध्ये वैभाषिकाः निर्वाणं नित्यानन्दावस्था उच्यते। निर्वाणस्य न उत्पत्तिर्न विनाशः निर्वाणऽजमसृष्टोऽकृष्टः एकः नित्यावस्था। अस्यानुसारे आत्मा मूलतः अचेतनं पदार्थः। विग्रहस्य फलस्वरूपात्मनि चेतना उत्पद्यते। शरीरसंयुक्तं चेत् आत्मानः सृज्यन्ते मनोदशाः। इति आत्मनः बन्धावस्था। निर्वाणे आत्मा देहसक्तो मनोस्थितिः स्थगितः च। अस्मिन् अवस्थायां यद्यपि आत्मा अस्ति तथापि भावः नास्ति – यथा शोकभावः नास्ति तथा सुखस्य भावः अपि नास्ति। निर्वाणं नित्याविकारा न तु सुखदशा। निर्वाणावस्थायां पञ्चेन्द्रियाणां प्रलयात् न हर्षशोकभावः। निर्वाणम् इति मौन–अचेतनस्य अवस्था। इयं निर्वाणव्याख्या अपि गौतमबुद्धस्य अनित्यत्वविरुद्धा अस्ति। अनित्यवादस्य मते स्थायी सत्ता इति किमपि नास्ति। केवलं परिवर्तनमेव सत्यम्। अनित्यवादानुसारेण निर्वाणावस्थायां स्थायी आत्मा न स्वीक्रियते।

५. निर्वाणम् अनिर्वचनीयं स्थितिः – निर्वाणविषये गौतमबुद्धस्य मौनस्य उल्लेखं कृत्वा बहवः वदन्ति यत् निर्वाणं अवर्णनीयावस्था अस्ति। एतत् निरुत्तरमाध्यमेन सः तस्य शिष्यान् वक्तुमिच्छति स्म यत् निर्वाणस्य स्थितिः वर्णयितुं न शक्यते। लौकिकभाषायाः माध्यमेन व्यक्तं कर्तुं न शक्यते। निर्वाणस्य विषये केवलं वक्तुं शक्यते यत् निर्वाणं दुःखनिवृत्तेः परमस्थितिः। एतदतिरिक्तं निर्वाणस्य स्थितिः शुभाशुभं वा शब्दैः वर्णयितुं न शक्यते।

नागार्जुनः निर्वाणविषये एतत् मतं प्रकटितवान्। नागार्जुनः अनुभवात् परं पारमार्थिकं सत्तां निर्दिशति स्म। अस्य परमभावस्य साक्षात्कारः निर्वाणम् एव। एषा सत्ता न केवलं अनुभावात्मका, अपितु बौद्धिकी अपि न भवति। एषा सत्ता केवलं भावनामध्यमेन प्रतीतुं शक्यते – यद्यपि सा प्रतीतिः भाषामाध्यमेन वर्णयितुं न शक्यते। नागार्जुनः अस्य परमसत्तां तथागतो वा बुद्धकायः अवदत्। यस्य विषये वर्णनं न सम्भवति। तथागतो वा बुद्धकायश्चतुष्टयस्य न समाविष्टम्। अस्य चत्वारकोटिः– सत् कोटिः, असत् कोटिः, सदसत् कोटिः अनुभयकोटिः च। बुद्धकायः सत्, असत्, सदसत्, अनुभयः इति न वर्णयितुं शक्यते।

निर्वाणावस्थायाः एषा व्याख्या अद्वैतवेदान्तस्य ब्रह्मसाक्षात्कारसदृशम्। यथा ब्रह्मविषये सत्, असत्, सदसत्, अनुभयः इति किमपि वक्तुं न शक्यते, तथैव निर्वाणस्य विषये अपि किमपि वक्तुं न शक्यते। अद्वैतवेदान्तस्य सह नागार्जुनस्य मतभेदः इति, अद्वैतवेदान्तस्य मते, ब्रह्मप्राप्तिः मुक्तिः ब्रह्मः सच्चिदानन्दस्वरूपं च। नागार्जुनः निर्वाणावस्थायां आनन्दमयावस्था न अवदत्। निर्वाणम् इति समाधिस्थितिः। निर्वाणावस्थायां शान्तिः आनन्दश्च भवति चेदपि सांसारिकशान्तिः आनन्दात् च भिन्ना भवितुमर्हति, तस्य सांसारिकपदैः वर्णनं विकृतवर्णनं स्यात्। निर्वाणविषये विविधमतानां मध्ये एतत् अन्तिमं मतं बुद्धमतत्वेन ग्रहीतुं शक्यते। सम्भवतः एतत् एव गौतमबुद्धः निरुत्तरस्य माध्यमेन निर्वाणस्य विषये बोधयितुं प्रयतमानोऽभवत्, यत् पारमार्थिकप्रतीतिः लौकिकानुभवात्

भिन्नप्रकृतिः अस्ति, पारमार्थिकसत्त्वं लौकिकभाषायाः माध्यमेन व्यक्तं कर्तुं न शक्यते इति।

निर्वाणस्य अनुसरणस्य आवश्यकता

लोभद्वेषहिंसादि अकुशलकर्मात् निवृत्या कुशलकर्मेण शान्तसंसारस्य निर्माणं तथा जन्ममृत्युरोगशृङ्खलाबद्धदुःखजीवनात् मुक्तये निर्वाणस्य अनुसरणं आवश्यकम्। तृष्णाद् शोकः उत्पद्यते। अज्ञानं तृष्णायाः कारणम्। अज्ञानस्य कारणे जनाः विविधानि कुकर्माणि कुर्वन्ति। अज्ञानी जनाः आत्मनः अपि च अन्वषां हानिम् अपि कुर्वन्ति। निर्वाणार्थं प्रयतमानेन पुरुषेण सर्वदा कुशलकर्मं कर्तव्यम्। अज्ञानं लोभद्वेषमोहस्य अथकानुसन्धानेन नाशं कर्तव्यम्। निरन्तरनिर्वाणानुसन्धानेन सः पुरुषः निर्भयः परोपकारी च भवति। फलतः आत्मनः सर्वस्य च कल्याणं करोति, लोके सर्वविधहितकारणत्वं भवति। अन्येषां हानिं कर्तुमिच्छा, अभिमानादि त्यजति। सः आत्मसंयमस्य अभ्यासयति। सर्वेषां कृते मैत्रीपूर्णाः भवन्तु। निर्वाणस्य अभ्यासः करणीयः। अल्पकाले निर्वाणप्राप्तिः न सम्भवति अतः कठिनाभ्यासः करणीयः भवति।

यद्यपि निर्वाणं दुर्बोधं व्याख्यानं च भवति तथापि जनानां निर्वाणप्राप्तिः सम्भवति। गौतमबुद्धः उक्तवान्– मानवजन्मं दुर्लभम् । कारणं जनानां मध्ये अन्तःकरणम् अस्ति। पुण्यकर्मेण मानवजन्मं प्राप्तव्यः। देवाः केवलं सुखं भोगयन्ति। प्रेताः केवलं दुःखं भोगयन्ति। पशवः प्राकृतिकवृत्तिभिः निर्देशिताः भवन्ति। केवलं मनुष्याः एव लोके सुखं दुःखं च अनुभवन्ति। मनुष्यातिरिक्तपशुनां जीवनानि कठिनं अनिश्चितश्च। अकुशलस्य कर्मस्य कारणे पशुरूपेण जन्मं ग्रहीतव्यं भवति। मनसि निर्वाणप्राप्तिकामना चेतना च जागृत्य सत्कर्मकरणं चेत् पशुकुलजन्मसंभावना विघ्न्यते।

निर्वाणं बौद्धानां कृते परमं लक्ष्यम् अस्ति। चतुर्णां आर्यसत्यानां सम्यक् ज्ञानं प्राप्तव्यं भवति। अष्टाङ्गमार्गः अवश्यं अनुसरणीयम्। अष्टाङ्गमार्गेण निर्वाणमार्गं प्रविष्टुं शक्यते। एषः मार्गः जनान् सम्यक् मार्गे मार्गदर्शनं करोति। बौद्धधर्मः ज्ञानधर्मः, ज्ञानिनां धर्मः इति उक्तम्, संसारः दुःखी इति केवलं ज्ञानिनः एव ज्ञायन्ते। तृष्णा शोकस्य कारणम्। तृष्णायाः कारणे पुनः पुनः जन्मं ग्रहीतव्यम्। तृष्णामुक्तिः सर्वेषां लक्ष्यं भवति। तदर्थं ज्ञानिनः निर्वाणसाधनं कर्तुं आवश्यकम्।

परिसमापनम्

अतः अन्ततः एतत् वक्तुं शक्यते यत्, निर्वाणं सर्वसंसारबन्धनमोक्षः सर्वान्तोऽत्र च। क्रोधद्वेषकामविमोचनं निर्वाणम्। निर्वाणं सर्वस्वरूपप्रलयं भवति। अतः निर्वाणप्राप्तिः मानवजीवनस्य जन्मफलं भवति।

सन्दर्भ-ग्रन्थसूची

- Dr. Anamika Gupta, Concept of Nirvana in Buddhist Philosophy, Publisher : Notion Press, Edition: 2018.
- Author : Manish Meshram, The Origin and Development of Buddhist Philosophy, Publisher : Kalpana Prakashan, New Delhi, Edition: 2020.

- Nirvana, Buddhist Philosophy and Religion, Swami Vidyaranya, West Bengal State Book Council, India, Page-160, Published: March 1984.
- Dr. Shukomal Barua and Suman Kanti Barua - Introduction to Tripitaka, Page-104, Chapter - Tripitaka History, Bangla Academy December- 2000.
- A History of Indian Philosophy, S.N. Dasgupta, pp, 100-01.

———————

Shodh Navneet (International Peer-Reviewed Research Journal)
ISSN : 2321-6581, IIJ Impact Factor : 5.037, Vol. XIX, July - Dec. - 2022

शाकुन्तले पर्यावरणसंरक्षणम्

डॉ. शैलेंद्र कुमार साहू*

सम्प्रति पर्यावरणं पूर्णम् असन्तुलितं जातमस्ति। अस्य संरक्षणम् आवश्यकमस्ति। परं किम् एकवारं यदि पर्यावरणं सुरक्षितं भविष्यति तर्हि सर्वाषां पर्यावरण-समस्यानां समाधानं भविष्यति इति चेन्न। भवन्तः पर्यावरणसमस्येति प्रकरणे पठितवन्तः यत् सर्वप्रमुखा समस्या अस्ति सामाजिकी, नैतिकी, प्राकृतिकी, जनसंख्या च। समस्याः एताः तदैव समधिगताः भविष्यन्ति यदा निरन्तर-प्रयासः भविष्यति। अतः आवश्यकं भवति यत् पर्यावरणस्य शिक्षा सर्वेभ्यः सामाजिकेभ्यः बाल-युवा-वृद्धिभ्यश्च दातव्या। अस्याः शिक्षायाः प्रसारः विविधेषु अभिकरणेषु एव आधारितः अस्ति। अतः अत्र तेषामभिकारणानां विषये चिन्तितं वर्तते। अस्मिन् शोधपत्रे कालिदासस्य समये पर्यावरणं प्रति विचारः प्रस्तुतम्।

कविकुलगुरुः कालिदासः महाकाव्यानां, नाटकानां, मुक्तककाव्यानाञ्च सिद्धः कविः। यो हि इत्येतेषु रूपेषु संस्कृतसाहित्यस्य इतिहासान्तर्गतमनन्यं स्थानं बिभर्ति। कालिदासस्य परवर्तिनः ये कवयः आसन् ते सर्वे कालिदासस्यानुकरणं कुर्वन्ति स्म तथापि कालिदासस्य स्थानं प्राप्तुं न प्रभवन्। कालिदासस्य काव्यशैली स्वस्मिन्नेवाद्वितीयाऽऽस्ति, तदर्थमेवानेकैः कविभिः गीयते यत् परवर्तिनः कवयः कालिदासस्य मुक्तकण्ठेन प्रशंसां कुर्वन्ति। केनचिदेवमप्युक्तं यत् कवीनां गणना सन्दर्भे कालिदासः कविषु श्रेष्ठतमो वर्तते। तथोक्तम् -

पुरा कवीनां गणना प्रसङ्गे कनिष्ठकाधिष्ठितकालिदासः।
अद्यापि तत्तुल्यकवेरभावाद् अनामिका सार्थवती बभूव।।

महाकविकालिदास्य कालविषये यत्प्रामाणिकाः कृतयः सन्ति यत्र कालगणनायाः उल्लेखो नास्ति। 'कीर्तिर्यस्य स जीवति' इत्यत्र विषये येऽस्माकं प्राचीनाः मनीषिणः विश्वासं कुर्वन्ति तेऽपि अत्र न किमपि उल्लिखितवन्तः। कालिदासः नास्त्यत्रापवादरूपः। तेनैव तस्य कालनिर्धारणस्य विषये न किमपि सारल्यं अपितु काठिन्यम् अनुभूयते तथापि पुष्टप्रमाणानुसारं तथ्यानुसारञ्च कालिदासस्य स्थितिकालः ई.पू. प्रथमा शताब्दी मन्यते इति मतं समीचीनं तर्कसङ्गतञ्च।

अभिज्ञानशाकुन्तलं न केवलं महाकवेः श्रेष्ठरचना, अपितु समग्रसंस्कृतसाहित्यस्य वाङ्मयस्य च सर्वोत्कृष्टतमा रचना द्योतते। यत्र एकतो भारतीयपरम्परायां '**काव्येषु नाटकं रम्यं तत्र रम्या शकुन्तला**' इति कथनं कृत्वा अस्य शाकुन्तलस्य महनीयतोच्यते वा तद्गुणानां गानं गीयते। कुत्रचित् पाश्चात्य विद्वान् जर्मन्देशीयः महाकविः गेटे कथयति यत् - '**ऐश्वर्यं यदि**

* असिस्टेन्ट प्रोफेसर, साहित्य विभाग, सं.वि.ध.वि. संकाय, काशी हिन्दू विश्वविद्यालय, वाराणसी (उ.प्र.)

वाञ्छसि प्रिय सखे! शकुन्तलं सेव्यताम्। ' इत्यमुष्याः रसास्वादनाय सम्पूर्णसहज्जगदाजुहुवे। शाकुन्तले सप्ताङ्कास्सन्ति, येषु पुरुवंशीयनरेशस्य दुष्यन्तस्य एवम् ऋषिकण्वस्य च दुहितुः शकुन्तलायाः प्रणयकथायाः मनोरमं वर्णनं कृतमस्ति।

'तत्रापि च चतुर्थोऽङ्कः' इत्यस्यानुसारं चतुर्थेऽङ्के कालिदासस्य प्रतिभायाः वास्तविकं स्वाभाविकं रूपं च तस्य विलासितारूपेण दृष्टिगोचरो दृश्यते। चतुर्थेऽङ्के कालिदासस्य काव्यप्रतिभायाः अनुपमेयनाट्यकौशलस्य तथा अप्रतिमप्रकृतिप्रेम्णः इत्यादीनां साक्षात्कारो भवति। प्रस्तुतेऽस्मिन् शोधपत्रे कालिदासस्य पर्यावरणस्य चिन्तनम् एवं पर्यावरणं प्रति तस्य संवेदनं प्रकाशयन् अहं तस्य आधुनिकपर्यावरणस्य चिन्तनम् इत्यस्य आधारसिद्धिं कर्तुं चिकीर्षामि।

कालिदासस्य प्रकृतिं प्रति स्नेहस्य निरूपणेन तस्य पर्यावरणचिन्तनमवज्ञातुं शक्यते, ततः प्राक् पर्यावरणं किमिति ? पर्यावरणस्य शाब्दिकोऽर्थः – परि + आवरणम् अर्थात् परितः येन वयमावृताः स्मः, तत् पर्यावरणम् इति। अनेन प्रकारेण ज्ञायते यत् सजीवानां परितः प्राप्यमानाः मानवाः तेषां स्थानम्, वस्तुनि प्रकृतयश्च इत्येते पर्यावरणस्य कारकरूपेण वर्तन्ते। पर्यावरणसंरक्षणस्याधिनियमः १९८६ तस्य धारा २(ए) इत्यनुसारं पर्यावरणान्तर्गतं जलं, वायुः, भूमिः एवम् अन्तर्सम्बन्धः वर्तते यत् जलस्य, वायोः, भूमेः, मानवजीवनस्य, प्राणीनां, वृक्षाणां, सूक्ष्मजीवानामपरञ्च सम्पतेः मध्ये विद्यमानाः सन्ति। महाकविकालिदासः प्रकृत्या सह तादात्म्यस्य अनुभवं करोति। एवञ्च तस्य तादात्म्यं वर्तते तदस्मिन् चतुर्थेऽङ्के स्वस्य पूर्णतागौरवाय व्यक्तं – स्पष्टञ्च भवति। तत्र प्रकृतेः प्रत्येकमुपादानं सजीवम् एवं संवेदनशीलं भवितुमर्हति। चतुर्थाऽङ्कस्यारम्भः मानवानाम् एवं प्रकृतेरन्तर्सम्बन्धरुत्पद्यते, यत्र उभे सख्यौ परस्परं वार्तालापं कुर्वत्यौ देवार्चनायै पुष्पवाटिकायां पुष्पाणां चयनं कुरुतः – '**ततः प्रविशतः कुसुमावचयं नाटयन्त्यौ सख्यौ।**'[१]

कालिदासः प्रकृतिं सजीवाम् एवं मानवीयभावनाभिः अतिसंयुक्तां मन्यते, यच्चाद्यत्वे प्रामाणिकं वैज्ञानिकञ्च तथ्यं वर्तते। अस्माकं देशस्य महान् वैज्ञानिकः जगदीशचन्द्रबसुः तेनापि 'कैस्कोग्राफ' नामकस्य यन्त्रस्य निर्माणं कृत्वा केभ्यश्चिद् वर्षेभ्यः पूर्वमेव साधितमिदं यत् वृक्षाः, लताः इत्येतेऽपि संवेदनशीलाः वर्तन्ते। इयं वैज्ञानिकस्थापना कालिदासस्य प्रकृतेः सम्बन्धितमान्यतायाः प्रमाणं करोति। मनुष्यः प्रकृतिश्चान्योऽन्याश्रितः वर्तते। उभयोः प्रत्येकम् एवञ्च प्रतिविनिमयः दृश्यते। कालिदासस्य शकुन्तला तु वृक्षान् सहोदराः भ्रातरः एवं लतां स्वभगिनी इति सम्बन्धेन कल्पनां करोति। प्रकृतिस्तु मानवानां संरक्षिका एवम् उपदेशिका च वर्तते। तस्याः मनोरमाक्रोडे मानवाः न केवलं स्वस्य भरणं पोषणं कुर्वन्ति, अपितु जीवनदर्शनमपि प्राप्नुवन्ति। चतुर्थेऽङ्के समयस्य ज्ञानार्थाय बहिरागतः शिष्यः सूर्यचन्द्रयोः इव तेजत्वात् उभयोः एकस्योदयं द्वितीयस्यास्तङ्गमने प्रकृतेः शाश्वतनियमस्य साक्षात्कारं कारयति –

यात्येकतोऽस्तशिखरं पतिरोषधीनामाविष्कृतोऽरुणपुरःसर एकतोऽर्कः।
तेजोद्वयस्य युगपद्व्यसनोदयाभ्यां लोको नियम्यत इवात्मदशान्तरेषु।।[२]

तस्य यः साक्षात्कारः वस्तुतः संसारस्य चिरन्तनं सत्यमस्ति।

निसर्गकन्या शकुन्तलात्वत्यन्त-सुन्दरी वर्तते एवञ्च प्रकृतेः अनन्या प्रेमिकाऽपि वर्तते। वस्तुतः प्रकृतिरेव तस्याः सहचरी संरक्षिका च अस्ति। अनेन कारणेन सा प्रकृतिमनन्यभावेन स्नेहं करोति। यत्र कालिदासस्य शकुन्तलायाः श्वसुरस्य गृहगमनकाले स्वप्रियां भगिनीं लतां वनज्योत्स्नां ततः तां मिलितुं न विस्मरति। 'तात, लताभगिनीं वनज्योत्स्नां तावदामन्त्रयिष्ये', तत्र आश्रमस्य पशवः, पक्षिणः, वृक्षाः, लताः स्वसामर्थ्यानुरूपं शकुन्तलायाः साहाय्यं कुर्वन्ति तथा तस्याः विरहेण वियोगत्वात् व्याकुलाः भवन्ति। आश्रमस्थिताः वृक्षाः तस्याः शृङ्गाराय वस्त्राभरणं लाक्षारसं च प्रददति।

तत इदानीम् –

क्षौमं केनचिदिन्दुपाण्डुतरुणा माङ्गल्यमाविष्कृतं
निष्ठ्यूतश्चरणोपरागसुभगो लाक्षारसः केनचित्।
अन्येभ्यो वनदेवताकरतलैरापर्वभागोत्थितै-
र्दत्तान्याभरणानि नः किसलयोद्भेदप्रतिद्वन्द्विभिः।।[३]

विगमनकाले तु कोकिलस्वरेण वृक्षाः गमनस्य अनुमतिं च ददति। कोकिलरवं सूचयित्वा –

अनुगतगमना शकुन्तला
तरुभिरियं वनवासबन्धुभिः।
परभृतविरुतं कलं यथा
प्रतिवचनीकृतमेभिरीदृशम्।।[४]

शकुन्तलायाः वियोगतः सम्पूर्णा प्रकृतिः स्वस्य कार्यं विहाय वियोगव्यथया तपति पीडां चानुभवति –

उद्गगलितदर्भकवला मृग्यः परित्यक्तनर्तना मयूराः।
अपसृतपाण्डुपत्रा मुञ्चन्त्यश्रूणीव लताः।।[५]

शाकुन्तलस्य चतुर्थेऽङ्के प्रकृतिशकुन्तलयोः पारस्परिकं सौहार्दं स्वस्य पराकाष्ठायां गमनं करोति। शकुन्तला वृक्षान् जलं पाययित्वा तदनन्तरमेव स्वयं जलं स्वीकरोति स्म, अलङ्करणस्य तत्करणाभिलाषी वर्तते, तथापि प्रेमाधिक्येन तेषां वृक्षाणां पर्णस्य छेदनं चयनं न करोति स्म, पुष्पोद्गमनकालस्योत्सवे प्रसन्ना भवति। महर्षिः कण्वः तेभ्यः वृक्षेभ्यः शकुन्तलायाः पतिगृहगमनायानुमतिं याचते। भो भोः संनिहितास्तपोवनतरवः !

पातुं न प्रथमं व्यवस्यति जलं युष्मास्वपीतेषु या
नादत्ते प्रियमण्डनाऽपि भवतां स्नेहेन या पल्लवम्।
आद्ये वः कुसुमप्रसूतिसमये यस्या भवत्युत्सवः
सेयं याति शकुन्तला पतिगृहं सर्वैरनुज्ञायताम्।।[६]

यत्र वियोगकाले शकुन्तला उटजपर्यन्तचारिणी, गर्भमन्थरा, अनघप्रसवा, मृगवधूः इत्येतस्य

सुखपूर्वकं स्वस्य सन्तानोत्पत्तये उत्कण्ठिता भवति, तत्र विगमनकाले शकुन्तलायाः मार्गमवरुध्य स्वपालितः मृगः स्वस्नेहस्य परिचयं ददाति। तथ्यं यदस्ति शाकुन्तलस्य चतुर्थेऽङ्के पर्यावरणस्य प्रत्येकमुपादानं यच्च ते वृक्षाः, वनस्पतयः, नद्यः, पशवः सर्वेषां मनुष्येण सह तादात्म्यं स्थापितं कृतं वर्तते, एवञ्च मानवप्रकृतिभ्यां सह तादृशः सम्बन्धः महाकविकालिदासस्य पर्यावरणचैतन्यस्य आधारः विद्यते।

भूमण्डलीकरणस्य अस्मिन् युगे सकलं विश्वम् एकम् आपणिस्थानरूपेण परिवर्तितमभवत्। प्रत्येकः राष्ट्रः स्वस्य व्यक्तिगतस्वार्थाय पर्यावरणस्य चिन्तां विहाय प्रकृत्या सह असम्यक् आचरणं करोति। परिणामतः विश्वेऽस्मिन् नैकाः समस्याः उपस्थिताः सन्ति। वृक्षाणां कृते, अन्यजीवकृते, नदीनां कृते मानवानाम् अत्याचारः व्यापकप्रभावरूपेण अद्य वर्तमाने भयावहसमस्यारूपेण उपस्थितः वर्तते। ग्रीनहाउस गैसानि- CO_2, CO, CH_4, NO, O_3 एवञ्च CCI_4 इत्येतेषां कारणेन ग्लोबलवार्मिंग, ओजोनक्षरण, अम्लवर्षा इत्येतादृशी समस्या विश्वस्य कृते चिन्तारूपा वर्तते। इत्येतासां समस्यानां समाधानमनेकवर्षपूर्वमेव प्रथमा शताब्दी ई.पू. इत्यत्र महाकविना कालिदासेन स्वस्याद्वितीये नाटके शाकुन्तले चतुर्थेऽङ्के प्रकृतेः चित्रणविषये व्यञ्जितं कृतमासीत्। प्रकृत्या सह तेषां तादात्म्यं पर्यावरणजनितसम्पूर्णसमस्यानामेकमात्रमेवमौषधिः रूपमुपायः वर्तते। यदा मानवः प्रकृत्यै संवेदनशीलः भविष्यति तदा तत्कालतः एव पर्यावरणजनित-समस्यानां तन्मूलनमपि प्रारप्स्यते। इत्थमेव अस्य चतुर्थाङ्कस्योपदेशोऽस्ति। अयमुपदेशः विश्वस्याभ्युदयाय मूलं वर्तते। तात्पर्यं तु इदमेव वर्तते यत् - शकुन्तलायाः स्वस्य सहवासिनः वृक्षाः, वन्यजीवाः, नद्यः, तान् प्रति यत् स्वाभाविकः पारिवारिकः स्नेहः स्वजनसदृशं वा प्रेम भवतु, तत्रोभयोद्देश्ये मानवानां कल्याणमेवं मानवानां प्रकृतेश्च अन्योऽन्याश्रयं सिद्धं भवति। 'कनिष्ठकाधिष्ठितकालिदासः' स्वस्मै हेतवे सम्पूर्णतया सफलोऽभवत् वा सर्वमान्योऽभवत् इति।

भारतवर्षस्य परिप्रेक्ष्ये स्वतन्त्रतायाः अनन्तरं भारतदेशः कालिदासस्यास्मिन् तथ्ये स्वीकृतिं प्रददाति एवञ्च तस्याभिमतमाचरति। भारतीयसंविधानान्तर्गतमस्माकं संविधानकर्तृभिः अनुच्छेदः ४८- ए इत्यत्र नीतिनिर्देशकस्य रूपेण, अनुच्छेदः ५१-ए (जी) इत्यत्र मूलकर्तव्यस्य रूपेण तथा अनुच्छेदः २१ एवं ३२ इत्यत्र मौलिकाधिकाराणां[७] रूपेण पर्यावरणसचेतनायाः प्रति अवधानतायाः परिचयः प्रदत्तः। संविधानमतिरिच्यापि विधेः निर्माणस्य माध्यमेन भारते पशुक्रूरता अधिनियमः १९६० इति वन्यजीवसंरक्षणस्याधिनियमः १९७२ तथा पर्यावरणसंरक्षणाधिनियमः १९८६ इत्यादिविधीनां[८] निर्माणेन पर्यावरणसंरक्षणाय समीचीनः प्रयासः कृतः वर्तते। विश्वस्य सन्दर्भान्तर्गतं कथयितुमपि शक्यते यत् सकलं विश्वं वर्तमाने पर्यावरणसंरक्षणाय तत्पोषणाय प्रयासः करोति। स्टाकहोम घोषणा (Stockhoim Declaration) १९७२, रियो घोषणा १९९२, कोपेन हेगन क्लाइमेंट चेञ्ज, नगोया जैव विविधता सम्मेलनं २०१० इत्यादयः प्रयासाः वर्तन्ते। इत्थं समस्तपर्यावरणसम्बन्धि-उपायानां मूलरूपेण कालिदासस्य सकारणरूपपर्यावरणचेतनया मान्यतया सह आवश्यकः न्यायः भविष्यति। एवमयं न्यायं कर्तुम् अस्माकं महाकविकालिदासं

प्रति सत्यरूपा श्रद्धाञ्जलिः भविष्यति।

निष्कर्षतः ज्ञायते महाकविकालिदासः तस्याभिज्ञानशाकुन्तलनाटकस्य चतुर्थेऽङ्के समस्तप्रकृतेः चित्रणं कालिदासस्य पर्यावरणचेतनायाः उदाहरणमस्ति एवञ्च यदि विश्वः कालिदासस्य पर्यावरणीयचेतनामाश्रित्य गाम्भीर्येण विचारं करोति, चेत् बहुमुखी विकासः भवितुं शक्नोति, अर्थात् कालिदासस्य पर्यावरणचेतनाविश्वस्याभ्युदयाय साक्षात्कारणभूता भवितुमर्हति।

सन्दर्भाः

१. कपिलदेव द्विवेदी, अभिज्ञानशाकुन्तलम्, चतुर्थाऽङ्कस्य प्रारम्भः, पृ. १८०
२. कपिलदेव द्विवेदी, अभिज्ञानशाकुन्तलम्, २-४
३. अभिज्ञानशाकुन्तलम्, ४-५
४. अभिज्ञानशाकुन्तलम्, ४-
५. अभिज्ञानशाकुन्तलम्, ४-१२
६. अभिज्ञानशाकुन्तलम्, ४-९
७. सुभाषकश्यपः - भारतस्य संविधानम्।
८. प्रो. एच. एनं. तिवारी महोदयस्य - पर्यावरणस्य विधिः।

Shodh Navneet (International Peer-Reviewed Research Journal)
ISSN : 2321-6581, IIJ Impact Factor : 5.037, Vol. XIX, July - Dec. - 2022

कर्णचरित्रस्य भारतीयसमाजस्योपरि प्रभावः

देवाशिष अग्रवाला*

महाभारते सामाजिकविषयाः

परिवर्तिताधुनिकसमाजे महाभारतम् एकं देदीप्यमानम् अमूल्यरत्नं भवति। यत्र व्यवहारः, नीतिः, सदाचारः, धर्मः, सुख-दुःखप्राप्तेः साधनम्, त्यागस्य महत्त्वम्, न्यायस्वरूपम्, सत्यम्, राजनीतिः, परोपकारः, क्षमा, अहिंसादिविषये विस्तृततया वर्णितमस्ति। अयमेव तत्र महाभारते वर्णितेषु प्रमुखपात्रेषु कर्णः सिहंरूपमावहति। अतः तस्य चरित्रपरिशीलने उपर्युक्तविषयाः तथा इतोऽपि गहनतथ्यानि ज्ञातुं शक्नुमः।

महाभारते कर्णः

महाभारते बहूनि पुरुषपात्राणि सन्ति। तेषु पुरुषपात्रेषु कर्णस्य पात्रम् अन्यतमम् अतिविशिष्टं च वर्तते। सः अद्वितीययोद्धा दानशौण्डो वचनबद्धादर्शव्यक्तिः च आसीत्। तदीयम् असाधारणं रूपं भव्यं संस्थानमाकर्षकञ्च तेजः सर्वदा सर्वलोकादृतम् आसीत्। अतः लोकास्तं सूर्यतनयमपि प्रोचुः।

दुर्वासामहर्षेः वरप्रभावात् सूर्यानुग्रहेण कुन्तीदेव्यां समुत्पन्नोऽयं कर्णः जन्मतः एव नष्टजातकः अभवत्। अनन्तरकाले परशुरामस्य सुश्रूषया अस्त्रशस्त्रादिविद्यापारङ्गतोऽभूत्। अस्त्रशस्त्रविद्याया नैपुण्यप्रदर्शनसमये दुर्योधनसख्यं प्राप्य अङ्गराज्यस्य राजा अभवत्। कुरुक्षेत्रसंग्रामे यावत्पर्यन्तं भीष्मपितामहः युद्धं करोति तावत्पर्यन्तम् अहं संग्रामक्षेत्रं नागच्छामि इत्युक्त्वा भीष्मद्रोणयोः मरणानन्तरमेव कौरवसैन्याध्यक्षो भूत्वा पञ्चदिनानि युद्धमकरोत्। अस्मिन्नेव समये ब्राह्मणवेषधारिणे इन्द्राय स्वकवचकुण्डलानि दानं कृत्वा दानगुणं प्रदर्शितवान्। गुरोः शापवशात् अस्त्राणि सर्वाणि निर्वीर्याणि जातानि सत्यपि युद्धं कृत्वा स्व वीरत्वं प्रदर्शितवान्। अनन्तरं बहूनां शापानां प्रभावेण कर्णः अर्जुनस्य हस्ते मरणं प्राप्य स्वर्गस्थोऽभूत्।

एवं कर्णस्य दान-दया-वीरत्वम् इत्यादीन् गुणान् दृष्ट्वा जनाः तं दानवीरशूरवीरकर्णः इति कीर्तितवन्तः।

कुन्त्याः गर्भात् सूर्यस्यांशेन कवचकुण्डलाभ्यां सह जातः पुत्रोऽयमासीत्। आदौ अस्य नाम वसुषेणः इत्यासीत्। परन्तु यदाऽयम् इन्द्रेण प्रार्थितः सन् स्वकवचकुण्डलानि तस्मै

* शोधच्छात्रः, पुराणेतिहासविभागः, राष्ट्रियसंस्कृतविश्वविद्यालयः तिरुपतिः, आन्ध्रप्रदेशः

प्रदत्तवांस्तदाऽस्य नाम वैकर्तनः इत्यभूत्। कुन्तीम् एनं प्रसूय जले त्यक्तवती। अस्य कृते किमप्यदेयं नासीत्। इन्द्राय कवचादि दत्त्वा तस्मात् शक्तिनामकम् अस्त्रं प्राप्तवान्। गङ्गाप्रवाहे प्रवाहितोऽयं सूतेनाऽधिरथेन तद्भार्यया राधया च पालितः सन् राधेयनामाऽभूत्। द्रोणात् अस्त्रविद्याप्राप्तिकालेऽर्जुनेनाऽस्य स्पर्धाऽभूत्। रङ्गभूमौ अर्जुनेन सह युद्धोद्यतोऽयं सूतपुत्रत्वात् कृपाचार्येणाऽपमानितोऽभूत्। दुर्योधनेनाऽयम् अङ्गराजरूपेण अभिषिक्तोऽभूत्। द्रुपदेन पराजितः सन् पलायितवान्। द्रौपदीस्वयंवरे आगत्य सूतपुत्रत्वात् द्रौपद्या निराकृतो बभूव।

राजसूयदिग्विजयेऽयं भीमेन पराजितः सन् युधिष्ठिरस्य राजसूययज्ञे आगतवान्। द्यूतसभायां द्रौपद्यां वस्त्रहरणार्थं दुःशासनम् आदिष्टवान्। वनवासाय गतानां पाण्डवानां वधाय दुर्योधनः कर्णं प्रचोदयमास। श्रीकृष्णेनाऽनुरुद्धोऽपि कौरवपक्षे स्थातुं निश्चितवान्। कुन्त्यै अर्जुनव्यतिरिक्तान् चतुरः पुत्रान् नैव मारयामि इति वचनं दत्तवान्। शरशय्यायां शयानस्य भीष्मस्य समीपे गत्वा स्वस्य प्रणमाञ्जलिं समर्पितवान्। द्रोणे मृते सति दुर्योधनेन सेनापतिरूपेण अभिषिक्तोऽभूत्।

कौरवसेनायां मकरव्यूहं रचयित्वा पाण्डवसेनां विनाशितवान्। शल्यं सारथिं कृत्वा युद्धाय निर्गतः। अर्जुनेन सह द्वैरथयुद्धं कृत्वा सर्पमुखबाणोनाऽर्जुनस्य किरटीं पातयामास। रथचक्राणां भूमिप्रवेशात् हेतोस्तस्य रथादवतरणं जातम् तदाऽस्त्रप्रयोगं नैव कर्तुम् अर्जुनमनुरुद्धवान्। अर्जुनेन निहतोऽभूत्। मरणान्ते व्यासेन गङ्गाजले प्रकटितोऽभूत् यत् स्वर्गे गत्वाऽयं कर्णः सूर्ये सम्मिलितोऽभूदिति।

कर्णचरित्रस्य भारतीयसमाजस्योपरि प्रभावः

कर्णचरित्रस्य चारित्रिकगुणानाम् अध्ययनावसरे दोषान् दूरीकृत्य गुणविवेचनकरणेनैव निष्कर्षेण ज्ञायते कर्णजीवनमाहात्म्यम्, तस्य व्यक्तित्वञ्च। कर्णस्य समस्तजीवनं नवयुवकानां प्रेरणदायकं भवति । कर्णं कौरवेभ्यः पृथक्कृत्य स्वतन्त्रव्यक्तित्वधारेण शीलतां ग्रहीतुं शक्नुमः। कर्णस्थाः केचन गुणाः समाजाय शुभसन्देशकारकाः भवन्ति।

१. संयमितनियमबद्धजीवनयापनसन्देशः।

२. कर्मणि विश्वासप्रकटनसन्देशः।

३. त्यागस्य सन्देशः।

४. दुष्टसमाजात् दूरे तिष्ठत्विति सन्देशः।

५. असत्यसम्भाषणं मा कुर्विति सन्देशः।

६. आत्मप्रशंसार्थं गुरुनिन्दा न करणीयमिति सन्देशः।

७. नारीजनानाम् अवमानं न करणीयमिति सन्देशः। इत्यादिगुणैः न करणीयमिति।

संयमितनियमबद्धजीवनयापनसन्देशः

कर्णस्य नियमपूर्वकजीवनं पूर्णजीवनादर्शनमिव गोचरति। स्वनियमाचरणविरुद्धकार्याणि

कृत्वा कदापि दोषं प्राप्तुं न इच्छति। कर्णस्य जीवनप्रेरणात् युवकाः अपि अनुशासनजीवने रताः भवेयुः। दैनिकव्यवहारे सत्य-अहिंसा-अस्तेय-पूज्यानां समादरः इत्यादीनामाचरणात् जीवनं सुखमयं भविष्यतीति सन्दिशति। कर्णजीवनात् ज्ञायते यत् कदापि राजकीयलब्ध्यै स्वनियमोल्लङ्घनं न कार्यमिति । कर्णः स्वजीवनान्ते दुर्योधनेन कृत अधर्म- अनीतियुक्ताचरणं विज्ञाय खेदं अनुभूतवान्। दुष्टजनैस्संसर्गोऽपि त्यजत्विति प्रबोधयति समाजाय।

कर्मणि विश्वासप्रकटनसन्देशः

कर्णस्य चरित्रानुसारेण विज्ञायते यत् व्यक्तेः व्यक्तित्वं स्ववंशानुक्रमाधारेण नैव सम्भविति केवलं स्वयंकृतापराधात् एव जायते इति। कर्णः स्वयं वंशानुक्रमात् सूर्यस्य पुत्रः परन्तु कालवशात् सूतकुले पालितः इति कारणात् सूतसमाजानुरूपदासता, शिथिलता, क्षीणपराक्रमः, अनावश्यकविनयशीलता इत्यादि गुणैः संवर्धितोऽस्ति। परन्तु स्वसहजात लक्षणैः स्वतः सिद्धपराक्रमेण च अनितरसाध्यधनुर्विद्यामभ्यस्य अग्रगण्यरूपेण स्थितवान्। व्यक्तेः पराक्रमस्य कारणं न जातिः, न कुलञ्च केवलम् आत्मविशासेन दृढ़प्रयत्नेन यदि कार्यं कुर्मश्चेत् सर्वं साध्यतेति समाजाय कर्णः प्रबोधयामास। अस्माकं देशोऽपि शताधिकवर्षाणि दास्यशृङ्खलायां बद्धो आसीत् परन्तु कठोरपरिश्रमेण, विश्वासेन सर्वे भारतीयाः एकत्रभूय स्वराज्यसंरक्षणमकुर्वन्। कठोरपरिश्रमेण असम्भकार्यमपि सुसम्भवं भविष्यतीति कर्णचरित्रात् ज्ञायते। भारतदेशेऽपि उच्च-नीच, जातिभेदाः यदा म्रियन्ते तदैव भारतस्योन्नतिरिति अवगन्तव्यम्।

त्यागस्य सन्देशः

आत्मकेन्द्रितमनुष्यः स्वसम्पूर्णजीवनस्य सर्वान् कार्यकलापान् स्वेन निर्दिष्टमार्गेण कुर्वन्नस्मीति चिन्तयति। अनया स्वार्थ बुद्धया त्यागपदस्य अर्थमेव विस्मरति। स्वार्थसंग्रहभावना समाजे भ्रष्टाचारं, अपराधं, अनैतिकताञ्च वर्धयति। यदि व्यक्तिः स्व इति पदात् बहिरागत्य सर्वे इति पदं जानाति तर्हि परोपकारभावः समागच्छत्येव। निःस्वार्थसेवा, त्यागस्य शिक्षा कर्णजीवनात् प्राप्यते। दानवीरताविषये कर्णस्यापेक्षया अस्मिन् जगति न कोऽपि समर्थः इत्युक्ते नास्ति संशयः। स्वप्राणरक्षककवचम् अन्येभ्यः दत्त्वा कर्णः दानवीरतायाः श्रेष्ठोदाहरणरूपेण विराजते। अधुना सर्वे जनाः समाजे कर्ण इव त्यागबुद्धिं प्राप्य परेषां सहायकरणे, परोपकारकरणे च लग्नाः भवेयुः। श्रीकृष्णस्य उपदेशानुसारेण विना कर्म फलं न अपेक्षितव्यमिति ज्ञानमपि कर्णचरित्रे दृश्यते। महापुरुषाणां चारित्रिकगुणाः अस्मभ्यम् उचितमार्गे गमनं, नियमनीतिपूर्वकजीवनयापनम्, अवगुणैः जागरूकता, दुर्गुणदूरीकरणमित्यादि उपदेशाः प्रयच्छन्ति।

कर्णस्य जीवनेऽपि केचन नीतिविरुद्धदोषाः अपि उपलक्ष्यन्ते। कर्णोऽपि स्वगुणान् अङ्गीकृत्य न कुर्वन्त्विति समाजाय सन्देशं ददाति।

दुष्टसमाजात् दूरे तिष्ठत्विति सन्देशः

धर्मज्ञः, नीतिज्ञः, महान् पराक्रमशीलः कर्णः कौरवपक्षे स्थित्वा स्वनाशनमुपागमत्।

उक्तमस्ति संसर्गजा दोषगुणाः भवन्ति अर्थात् सज्जनसंसर्गात् गुणाः कुजनसंसर्गात् दोषाः भवन्तीत्यर्थः। अतः यः कोऽपि मानवः स्वजीवनं समीचीनमार्गे प्रापयितुम् उत्तमपन्था सुजनसमागम एव नास्त्यन्या इति कर्णचरित्रात् ज्ञायते।

असत्यसम्भाषणं मा करोतु इति सन्देशः

सत्यमेव जयते अयं भारतीयदर्शनस्य मूलमन्त्रः अस्ति। सृष्ट्यारम्भात् एतावत् पर्यन्तं यदाकदापि अधर्मः प्रधानरूपेण तिष्ठन्नपि अन्तिमे धर्मस्यैव विजयः इति निरूपितमस्ति। धर्मस्य मूलाधारस्तु सत्यमेव। कर्णः यद्यपि विद्यासमुपार्जनाय असत्यं उक्तवान् तथापि अवसरकाले तस्य विपरीतमेव अनुभूतवान्। अन्येषां हानिदायकासत्यमपि अन्ते नश्यतीति ज्ञातव्यम्। स्वस्वार्थसिद्ध्यै कदापि असत्यं न स्वीकुर्वितेति कर्णकृतदोषाः विज्ञायन्ते।

आत्मप्रशंसार्थं गुरुनिन्दा न करणीयमिति सन्देशः

स्ववास्तविकतामतिरिच्य अधिकात्मप्रशंसाकरणं दोषमिति धर्मशास्त्रवचनम्। आत्मप्रशंसया मानवस्य ज्ञानं नश्येत् गर्वं वर्धते च। गुरोः श्रेष्ठतां स्वकुर्वाणाः जनाः गुरुनिन्दा, अपमानञ्च दोषमिति परिगणयन्ति। स्वगुणपराक्रमा एव गुरुपराक्रमात् श्रेष्ठाः इति चिन्तनं मूर्खत्वस्य पराकाष्ठा इति कथ्यन्ते। कर्णस्य दोषोऽयं गुरुजनेषु तुच्छभावनामजनयन्। अतः कदापि गुरुनिन्दा न करणीया इति कर्णकृतदोषात् विज्ञायते।

नारीजनानाम् अवमानं न करणीयमिति सन्देशः

भारतीयधर्मशास्त्रेषु स्त्रीणां गौरवविषये महत्स्थानं विद्यते।

यत्र नार्यस्तु पूज्यन्ते रमन्ते तत्र देवताः।
यत्रैतास्तु न पूज्यन्ते सर्वास्तत्राफलाः क्रियाः।।

(मनुस्मृतिः, ३.५६)

स्त्री एव सृष्टेः मूलस्रोता वक्रदृष्या ताः पश्येम, विरुद्धाचरणम् आचराम चेत् तत्र परिणामाः स्वकुलं वंशञ्च समूलतया नाशयन्तीति कर्णचरित्रात् अवलोक्यते। सीतापमानकारणात् रामरावणयोर्युद्धं द्रोपद्याः अपमानकारणात् कौरवपाण्डयोः संवृत्तमिति इतिहासकथनम्। नारी माता पत्नी सोदरी पुत्रीरूपेण अस्माकं जीवने प्रधानपात्रपोषका भवति। निष्ठापूर्वकध्यानेन, धर्मानुसाराचरणेन श्रेष्ठताकारणेन देवीरूपेण प्रसन्नाः अपि भवन्ति। परन्तु दुःखविषयोऽयं भवति यत् अद्यतनसमाजे नारी स्वसम्मानरक्षणार्थं निरन्तरं सङ्घर्षते। मातुः संरक्षणे एव शिशुः सर्वतोमुखाभिवृद्धिः साधयिष्यतीति ज्ञातव्यम्। मातुः भयं दुःखञ्च समाजाभिवृद्धयै आटङ्कमुत्पादयति। अतः प्रयत्नेनापि स्त्रीणां रक्षणं करणीयम् नो चेत् कर्ण इव नाशः अवश्यमिति संसूज्यन्ते।

कर्णः सम्पूर्णजीवनं ज्वलन्निव ज्वालामुखीसदृशः परेषां सहायकरणे स्वजीवनमर्पितवानिति अवगम्यते। कर्णः सर्वदा भगवति विश्वासं कृत्वा दृढ़दीक्षया परिश्रमं कृत्वा स्वोन्नतिं साधयामास।

एवं रूपेण महाभारते सकलाः विद्याः समाहिताः। मूलप्रमाणात् सरसिकृत्य भविष्ये मनुष्याणां सामाजिकचरित्रे कथं सम्यक् ज्ञानं तथा व्यवहारादि अस्माकं हितसाधने सहायं भविष्यति तदेव अत्र मुख्यरूपेण मया प्रयासः कृतः।

सहायक-ग्रन्थसूची

- श्रीमद्भगवत्गीता, गीताप्रेस, गोरखपुर।
- महाभारतम्, गंगापुस्तकमाला, लखनऊ।
- मनुस्मृतिः, चौखम्बा विद्याभवन, वाराणासी।
- श्रीमन्महाभारतम्, भण्डारकर ओरिएण्टल रिसर्च इन्स्टीट्यूट, पुणे।
- महाभारत कथा, सस्ता साहित्य मण्डल प्रकाशन, नई दिल्ली, १९६०
- महाभारत, स्वाध्याय मण्डल पारडी (बलसाड), प्रथम आवृत्ति – १९६९

———————

Shodh Navneet (International Peer-Reviewed Research Journal)
ISSN : 2321-6581, IIJ Impact Factor : 5.037, Vol. XIX, July - Dec. - 2022

वाल्मीकिरामायणे धर्मस्यावधारणा

डॉ. पारमिता पण्डा*

रामायणस्य वैशिष्ट्यम्

श्रीमद्रामायणं वेदसदृशं न केवलं भारतीयवाङ्मये संस्कृतवाङ्मये वा विश्ववाङ्मयस्यापि श्रीमद्रामायणमेव आद्यं काव्यम्। प्रकृतकालेऽपि मानवजीवनस्य ये विषयाः आचरणीयाः ते सर्वेऽपि श्रीमद्रामायणे वर्णिताः। न केवलं सम्प्रदायवादिनां आधुनिक स्वभावतामपि रामायणम् आदर्शमेव। रामायणे दृष्टाः सूक्तीः अनुसृत्य जीवने अद्यापि सुखं हितं च भवत्येव। अद्यतनकाले धनाशय स्त्रीविषयक प्रेम्ना नैराश्येन दारिद्र्येण वा प्राप्त निर्वेदाः जनाः जीवितं हातुं इच्छन्ति। तानपि रामायणं सत्पथे स्थापयितुं तेभ्योऽपि हितमुपदेष्टुं प्रभवति।

रामायणस्य रचनाकालः

भारतीयं मतम्

श्रीमद्रामायणं कस्मिन्काले रचितमिति वाङ्मयचरित्रकारणां मतानि बहूनि विद्यन्ते। भारतीविश्वसस्तु रामावतारकालः रामायणरचनाकालश्च तुल्यरूपः एव। रामायणादौ बालकाण्डे सर्गत्रये एष विषयः स्पष्टं निरूपितः। त्रिलोकतत्त्वज्ञः नारदः कदाचित् लोकान् अनुगृहीतुं कृत संकल्पः वाल्मीकिं द्रष्टुमाजगाम। तदानीं ब्राह्मणः संकल्पेन वाल्मीकेः मनसि कश्चन प्रश्नः उत्पन्नः अस्मिन् लोके इदानीं को वा सर्वगुण सम्पन्नः इति। तदानीमेव नारदः तत्रागतः आगतं नारदं दृष्ट्वा वाल्मीकिः स्वसन्देहम् उक्तवान्। ततो नारदः इश्वाकुवंशे रामः एव सर्व गुणसम्पन्नः वर्तते इति सर्वान् रामगुणान् उक्तवान्। रामकथां च महता संक्षेपेण वाल्मीकिमुक्तवान् इति बालकाण्डे प्रथमसर्गे उपवर्णितम्।

धर्मशब्दार्थः

धरति विश्वं इति धर्मः। धृञ् – धारणे (स्वादि उभयपदिसेद्) इति धातोः औणादिके 'मन्' प्रत्यये धर्मः इति रूपं भवति। महाभारतेपि धर्मशब्दस्य एष एवार्थः निरुपितः –

धारणाद् धर्ममित्याहुधर्मेण विधृताः प्रजाः।
यः स्याद् धारणसंयुक्तः स धर्म इति निश्चयः।।

(महा., शान्तिपर्व १०६.११)

एवं धर्मशब्दः कर्ता अर्थे कर्मणि च प्रयोक्तव्यः। धर्मशब्देन धर्मवान् धर्मश्च वाच्यः अस्यार्थः प्रयोजनमुद्दिश्य भिन्नस्थलेषु भिन्नार्थेषु प्रयुज्यते। अयं च ऋग्वेदे ऋत इति नाम्ना प्रयुक्तः इति

* सह-आचार्यः, पुराणेतिहासविभागः, राष्ट्रियसंस्कृतविश्वविद्यालयः, तिरुपतिः, आन्ध्रप्रदेशः

प्रभाकरदीक्षितेन उदाहृतम्।

भगवद्गीतासु, वौशेषिकदर्शने, मनुस्मृतौ च धर्मः एवं निरुक्तः। येन मार्गेण भौतिकजीवने अभ्युदयः मोक्षश्च आध्यात्मिके भवति स धर्मः इति।

यतोऽभ्युदयनिःश्रेयससिद्धः स धर्मः ।

(वैशेषिकसूत्र, १.१.२)

संसारात् प्रशस्यतरः श्रेयः निर्गतं श्रेयः निश्रेयसम् मोक्षः। धर्मेण मोक्षसिद्धिः भवतीति दार्शनिकैरपि अङ्गीकृतम्। धर्मशब्दस्य अद्यतनकाले मतमिति व्यवहृतस्य शब्दस्य पर्यायतया प्रयोगोपि दृष्टः। यथा – हिन्दुधर्मः ईशवीयधर्मः इत्यादि।

वाल्मीकिरामायणे जीवतः पुरुषस्य विकासशीलविचाररूपः सामाजिकजीवने अभिव्यक्तं कर्तव्यमिति अर्थद्वये प्रयोगो दृश्यते। देशकालावनुसृत्य क्रियान्वयं चानुसृत्य व्यक्तेः पद्धतिरपि परिवृत्ता भवति एवं धर्मस्य गतिरपि निश्चेया। किन्तु मौलिकोधर्मः देशकालानुरोधेन न परिवर्तनीयः। आचार्यरूपो धर्मस्तु परिवृत्तिमर्हति।

धर्मस्यप्रमाणम्

विद्वद्भिः सेवितो धर्मः नित्यमद्वेषरागिभिः।
हृदयेनाप्यनुज्ञातः यो धर्मस्तन्निबोधत ।।

(मनुस्मृति, २.१)

वेदः स्मृतिः सदाचारः स्वस्य च प्रियमात्मनः।
एतच्चतुर्विधं प्राहुः साक्षाद्धर्मस्य लक्षणम् ।।

(मनुस्मृति, १.१२)

वेदः सर्वस्यापि धर्मस्य प्रमाणम्। वेदविदां बुद्धिः आचारश्च धर्मविषये प्रमाणं तदनुसृत्यैव धर्मशास्त्राणि रचितानि कदाचित् यत्र श्रुति स्मृत्योः विरोधोपि भवति तत्र श्रुतिरेव प्रमाणम्। श्रुत्यास्मृत्या च यत्र धर्मो न निश्चितः तत्र धर्मविदां आचारः एव प्रमाणमिति धर्म प्रमाणविषये मन्वर्थमुक्तावली व्याख्यायां कुल्लूकभट्टेन स्पष्टम् उक्तम्। वर्णधर्माः आश्रमधर्माः यागदयः चत्वारिंशत् संस्काराः इत्यादयः सर्वेऽपि लौकिकाः धर्माः।

एतान् लौकिकान् धर्मान् अतीत्य आध्यात्मिक धर्माः भिन्नाः भवन्ति। ये च आध्यात्मिक धर्मानुवर्तिनः ते क्वचित् बाह्यधर्मबहिष्कृताः अपि निःश्रेयसं प्राप्नुवन्त्येव। धर्मज्ञानानादपि धर्माचरणं श्रेयस्करं भवति।

धृतिः क्षमा दमोऽस्तेयं शौचमिन्द्रियनिग्रहः।
धीर्विद्या सत्यमक्रोधो दशकं धर्मलक्षणम्।।
दश लक्षणानि धर्मस्य ये विप्रास्समधीयते।
अधीत्य चानुवर्तन्ते ते यान्ति परमां गतिम्।।

(मनुस्मृति, ७.९२-९३)

दशविध स्वरूपो धर्णः प्रयत्नतस्सततमनुष्ठेयः धृतिरिति सन्तोषो धृतिः परेणापकारेकृते तस्य प्रत्यपकाराकरणं क्षमा। विकारहेतुविषयसन्निधानेऽप्यविक्रियत्वं दमः। मनसो दमनं दम इति सनन्दवचनात्। शीतातपादि द्वन्द सहिष्णुता दम इति गोविन्दराजः अन्यायेन धनादिग्रहणं स्तेयं च भिन्नमस्तेयं, यथाशास्त्रं मृज्जलाभ्यां देशशोधनं शौचं, विषयेभ्यश्चक्षुरादिवारणमिन्द्रियनिग्रहः शास्त्रादित्वज्ञानं धीः, आत्मज्ञानं विद्या, यथार्थाभिधानं सत्यं क्रोधहेतौ सत्यपि क्रोधानुत्पत्तिरक्रोधः एतादृशविध धर्मस्वरुपम्।

श्रीमद्रामायणे धर्मस्वरूपम्

श्रीमद्रामायणे धर्मस्वरूपं धर्मभेदाश्च बहवो निरुपिताः।

१. मौलिको धर्मः	२. वैयक्तिको धर्मः
३. वर्णधर्मः	४. आश्रमधर्मः
५. कुटुम्बधर्माः	६. समाजधर्माः
७. दाम्पत्यधर्मः	८. युद्धधर्मः

इत्यादयः बहवो धर्मभेदाः निरूपिताः। धर्मस्य स्वरुप ज्ञानार्थं क्वचिद् प्रत्युदाहरणरूपेण नास्तिक धर्मः अपि अयोध्याकाण्डे जाबालिवाक्येषु निरूपितः। एते लौकिकधर्माः मोक्षधर्मस्यापि निरूपणं वैराग्यनिरूपणं च यथावसरं तत्र तत्र श्लोकेषु दृष्टः। किन्तु मौलिकधर्मस्य वैय्यक्तिकधर्मस्य च विरोधाभासरूपा केचन सन्दर्भाः श्रीमद्रामायणे दृष्टाः। तेषां सन्दर्भाणां धर्ममीमांसा अद्यापि विद्वत्सु दृष्टः एव। ते च सन्दर्भाः –

१. बालकाण्डे – ताटकवधः

२. अयोध्याकाण्डे – दशरथेन रामाय राज्यप्रधान संकल्पः।
दशरथं प्रति लक्ष्मणस्य क्रोधः कोसल्यया अनुमोदनं च।
शृङ्गमेरुपुरे रामनिर्वेदः, दशरथनिन्दा।

३. अरण्यकाण्डे – रक्षोवध प्रतिज्ञा
शूर्पणखायाः कर्णनासच्छेदः।

४. किष्किन्धाकाण्डे – वालिवधः

५. उत्तरकाण्डे – सीतापरित्यागः

एतान् सन्दर्भान् अधिकृत्य विदुषां मतं उदाहृतम्।

धर्मस्य मूलस्थितिः

धर्मसूक्ष्मः अपि बहुधा दृष्टः सामाजिक हितार्थं वैय्यक्तिकधर्मस्य त्यागः श्रीमद्रामायणे बहुषु सन्दर्भेषु दृष्टः। क्वचित् मौलिकधर्मस्य कृतेपि वैय्यक्तिकधर्मत्यागः अपि दृष्टः। एवं विविधेषु सन्दर्भेषु बहोः कृते स्वल्पस्य त्यागः विज्ञस्य लक्षणमिति लौकिको धर्मः सर्वत्र अन्वेति एष विषयः प्रकृतानुकूलः यथा सन्दर्भं प्रतिविषयं व्याख्यातः।

एतेषां सर्वेषां धर्मभेदानां उदाहरणं साक्षात् श्रीरामः एव।

अयोध्याकाण्डे सीताहरणोद्यागे मारीचं सहायर्थं अश्यर्थयितुं रावणः प्रथमं मारीचाश्रमं आगतवान्। आगमनकारणं श्रुत्वा मारीचः रामो विग्रहवान् धर्मः तस्मै अपकारः न करणीयः स च आवयोः एव नाशाय भविष्यतीति बहुधा रावणं हितं उपदिदेश। अरण्यकाण्डे सप्तत्रिंशे सर्गे पञ्चविंशतिश्लोकैः मारीचोपदेशः विस्तरेण वर्णितः। तत्रायं मुख्यश्लोकः –

रामो विग्रहवान् धर्मः साधु सत्यपराक्रमः।
राजा सर्वस्य लोकस्य देवानां मघवानिव।।

(रामायण, अरण्यकाण्ड, ३७.१३)

रामधर्मिकत्वनिर्णये इतोप्यधिकं प्रमाणं न किञ्चिद् अपेक्षितम्। यतः मारीचरावणौ द्वावपि रामस्य शत्रू। रामपरोक्षं रामाय द्रोग्धुं रावणं आगतः मारीचोऽपि रामेण पूर्वमपकृतः। रावणरूपः बलवान् रामशत्रुः स्वयं मारीच सहायं रामद्रोहकरणे याचितुमागतः एवमुत्तमा अवकाशः प्रतिकारकरणे मारीचस्य नान्योलभ्यते। तथापि मारीचः रामगुणाभिज्ञः रावणसमक्षमेव रामं बहुधा प्रशसंसा। द्वयोः मेलने तृतीयय्य परिचितस्य निन्दा निष्कारणमेव अद्यकाले दृश्यते। पूर्वापराद्धस्य रामस्य विषये प्रतीकारकरणे अशक्तयोरपि प्रशंसाकरणे अवसरः एव न भवति तथापि मारीचः रामगुणानेव श्लाधितवान् इति तन्महत्त्वं अभिव्यक्तम्। रामस्य धर्मिकत्वं, रामास्त्रमहिमानं च बहुधा उक्त्वा रावणनिन्दां कृत्वापि रावणहस्ते वधादपि रामाद् वधः श्रेयान् इति निश्चित्य मारीचः वैय्यक्तिकं लौकिकधर्मं परित्यज्य रामाद्वधेन सुगतिः भविष्यतीति आध्यात्मिकं धर्ममिच्छन् मोक्षरूपमिच्छन् सीतापहरणे सहायकोऽभूत्। एवं विधस्य शत्रुभिरपि परोक्षेपि श्लाघ्यस्य रामस्य धर्मिकत्वं रामायण धर्मसर्वस्व निरूपकमिति राममधिकृत्य तत्पात्र निरूपणेन सकलस्य वैय्यक्तिकधर्मस्य निरूपणं भविष्यति इति रामपात्रवर्णनं क्रियते।

श्रीरामः

मर्त्यावतारः खलु मर्त्य शिक्षो। रक्षोवधायैव व केवलं विभोः।। इति।

अवतार प्रयोजनेषु भगवान् मनुष्यान् धर्माधर्मविवेकः गुरुषुगौरवं सत्यपालनम् इत्यादि सद्गुणान् शिक्षयितुं अध्यापयितुं च अवतारं निभर्तीति उदाहृतम्। भगवतः नारायणस्य एकविंशति अवतारेषु दशैव लोकविदिताः तेष्वपि श्रीकृष्णः श्रीरामः इति द्वौ मानवानामादर्श भूतौ। तयोरपि श्रीकृष्णः भगवान् तस्य लीलाः अनुकर्तुं कोऽपि न प्रभवति। भगवतः अवतारेषु केवल श्रीरामः एव मानवधर्ममनुसरन् महिमानं न कुत्रचित् प्रदर्शितवान्। अतः श्रीरामगुणाः सर्वैः मानवैः अनुसरणीयाः। न केवलमादर्शपालकः किन्तु आदर्श नायकः अपि। साधारणजीवितमपि आदर्शभूतं यापितवान्। कर्तव्यनिर्वहणे सर्वे स्वयं सप्तप्रश्नान् स्वानेव पृष्ट्वा मया किमेवं स्थीयते इति चिन्तयेयः। ते च प्रश्नाः –

१. मम कर्तव्यस्य किं वा लक्ष्यम्?

२. तत्र के वा प्रतिबन्धकाः?

३. किम् मम कृषिः अत्र पर्याप्ता?

४. प्रतिबन्धनिवृत्तये किं मया कार्यम्?

५. अतीतकालादपि किं मम सामर्थ्यं अभिवृद्धम्?

६. एतावत्पर्यन्तं किं मया कृतं करणीयं च किं वर्तते इति।

रामः स्वजीवनमार्गे इमान् प्रश्नान् सर्वथा अनुष्टितवान्। बालकाण्डादारभ्यैव एवं प्रवृत्तिः रामे दृश्यते। ताटकवधे एव एषा उदाहरणं दृश्यते। विश्वामित्रः प्रथमं ताटकां दर्शयित्वा एषा त्वया द्रष्टव्य इति राममुक्तवान् ततः ताटकवधः रामस्य कर्तव्यमासीत्। तदानीं सपदि रामः चिन्तितवान् एषा स्त्री किं मया हन्तव्या ? अस्याः हननेन दुरितं भविष्यतीति तत्र ताटकायाः स्त्रीत्वमेव तस्याः वधे प्रतिबन्धः आसीत्। तदा विश्वामित्रः तत्संशयं ज्ञात्वा तस्याः वधेऽपि दोषो न भवति एषा प्रजापीडका राज्ञा प्रजारक्षणे क्वचित् स्वदोषमपि कार्यं करणीयमेव विष्णुरपि देवरक्षार्थं भृगुपत्नीं हतवान् इति रामं कर्तव्यं बोधयामास विश्वमित्र वाक्यमेव राम सन्देशरूपं प्रतिबन्धकस्य निवर्तकमभूत्। (रामा. बा., २५.१७-२१)

नृशंसमनृशंस वा प्रजारक्षणकारणात्।
पातकं वा सदोषं वा कर्तव्यं रक्षता सदा।।
राज्यभारनियुक्तानामेष धर्मः सनातनः।
अधर्म्यां जह्नि काकुत्स्थ - धर्मोह्यस्यां न विद्यते।।

(रामा. बाल., २५.१७ एवं २१)

दशरथवाक्यम् स्मृत्वा विश्वामित्रवाक्यं अनुसृत्य। रामः ताटकां जघान। (बाल., २६.२-४)

विश्वामित्रवाक्यं सर्वथा आचरणीयमिति पितुः शासनं तदेव रामः अनुष्टितवान्। ताटकावधं दृष्ट्वा तस्य शाक्तिं कर्तव्यपरायणत्वं गुरुणामाज्ञापालकत्वं वीक्ष्या विश्वामित्रः तस्य शाक्तिं दिव्यास्त्रदानेन वर्धयामास। शताधिकानि दिव्यास्त्राणि भृशाश्र्वादागतानि विश्वामित्रः रामाय दत्तवान्। तत्प्रयोजनमपि विश्वामित्रः 'वधार्थं रक्षसां यानि दऽदाम्येतामि सर्वशः।' इत्युक्तवान्। तैरेवास्त्रैः अनन्तरं रामः सुबाहु प्रभृतीन् जघान। ताटकवधमेव रामकृत अद्भुतकर्मसु प्रथमं तत्रैव रामः स्ववैचक्षण्यं प्रदर्शितः सर्वेषु कार्येषु अनन्तरमपि एवमेव रामस्य प्रवृत्तिः श्रीमद्रामायणे दृश्यते। मनुष्यसम्बन्धेषु ये ये उत्तमाः गुणाः अभिलविताः ते सर्वे रामे वर्णिताः।

१. उत्तमः पुत्रः	२. उत्तमः भ्राता
३. उत्तमः पतिः	४. उत्तमः पालकः
५. उत्तमः सुहृद् (शरणागतरक्षकः)	६. सम्पूर्णमानवः
७. सर्वदा रक्षकश्च	८. उत्तम नायकः

एते धर्माः मनुष्यस्य वैयक्तिकाः सामाजिकहितकारकान् गुणानपि रामः बिभर्ति। अतएव रामो

विग्रहवान् धर्मः इति शतृभिः अपि कीर्तितः।

१. उत्तमः पुत्रः

जीवतोः वाक्यकरणात् प्रत्यब्धं भूरिभोजनात्।
गयायान् पिण्डदानाश्च त्रिभिः पुत्रस्य पुत्रता।।

इति लोकोक्तिः प्रसिद्धः एव। तत्र जीवतोः वाक्यकरणादित्येव पुत्रविषये पित्रोः विषये च प्रत्यक्षमुपकारकं प्रायशः पुत्रः पितुः वाक्यं परिपालयत्येव उलङ्घयितुं नेच्छति च इति न किञ्चित् अत्र चित्रमिव प्रतिभाति। लोके यदा पितुः वचनं पुत्रस्य हितकारी लाभकारी इव तदा पुत्रः पितुः वचनं पालयत्येव। किन्तु यस्य वाक्यस्य पालनेन स्वजीविते महान् अनर्थो भवति तदा पितुः वचनं पुत्रः न पालयति एषः लोकधर्मः। रामविषये एतद्विपरीतं दृश्यते चतुर्दशवर्षाणि वनं गन्तव्यमिति पितुः निर्देशः पालनीयः आसीत्। एवं पिता तं प्रत्यक्षं नोक्तवान् किन्तु कैकेय्याः मुखात् पितुराज्ञेति रामः ज्ञातवान्। दशरथः पूर्वं वरद्वयं कैकेय्यै ददौ तयोः एकेन भरतः राज्ये स्थापनीयः द्वितीयो वरस्तु चतुर्दशवर्षाणि रामः वनं रामयितव्यः इति। अपि च कैकेय्यी विवाहकाले कैकेय्याः पुत्रस्य राज्यं दास्यामीति दशरथः कन्याशुल्कं प्रति ज्ञातवान्। तं विषयं रामः जानाति –

पुरा भ्रातः पिता नः स मातरं ते समुद्वहन्।
मातामहे समाश्रौषीद्राज्यशुल्कमनुत्तमम्।।

(अयोयाकाण्ड, १०७.३)

इति भरतं स्वयमुक्तवान् च। अतः अयोध्यायाकाण्डे रामवनगमनसमये जाताशङ्का अत्र निवृत्ता भवत्येव। त्वया वनं गन्तव्यमिति दशरथः साक्षात् नोक्तवान् किं तत्र पितृवचसः पालनमिति शङ्कायाः रामोक्तिः समाधानं भवति। दशरथेनापि स्ववाक्यपालनं नकृतमिति चेत् नकृतमेव। यतः प्रजाः सर्वे राममेव राजनमिच्छन्ति अतः प्रजावाक्यं राज्ञा पालनीयमित्येषा पालकस्य प्रथमोधर्मः वाग्धान समये कौसल्या अनपत्या अतः त्वस्याः पुत्रः उत्पद्यते स ज्येष्ठो भविष्यतीति दशरथः न जनानि। अतः श्वषुराय वाचं दत्तवान् ततः रामः ज्येष्ठोभूत् अगुणेऽपि ज्येष्ठे राज्ञा राज्यं दातव्यमित्यपि परम्परागतो राजधर्मः तमपि दशरथः जानाति । अतः राजधर्मं प्रजाभिमतं च आलोच्य राममभिषेक्तुं कृतनिश्चयः। नृशंसं अनुशंसं वा इति विश्वामित्रोक्तः राजधर्मः अत्रापि अनुसन्धेयः अपि च राममपि दशरथं स्वस्य वनगमन वार्तामुक्त्वा तेन अनुज्ञात एव वनं जगाम इति अयोध्याकाण्डे स्पष्टम्। अहं वरदानेन मोहितः अतः माम् दत्वा राज्यं गृहाण इति दशरथः स्पष्टं राममुक्तवान्।

अहं राधव कैकेय्या वरदानेन मोहितः।
अयोध्यायास्त्वमेवाद्य भव राजा निगृह्यमाम्।।

(अरण्य., २.३४–२६)

तदपि पितुः वाक्यमेव किन्तु तत् विपदि उक्तं अर्थवादरूपमिति रामो जानाति अतः तथा न कृतवान्। दशरथाय कुपितः लक्ष्मणोपि 'हनिष्ये पितरं वृद्धं' इति प्रतिज्ञाय रामं राज्ये

स्थापयितुमिच्छति। कौसल्यापि लक्ष्मणवाक्यमभिनन्दति।

हनिष्ये पितरं वृद्धं कैकेय्यासक्तमानसम्।
कृपणं चास्थिरं बालं वृद्धभावेन गर्हितम्।।
भ्रातुस्ते वदतः पुत्र लक्ष्मणस्य श्रुतं त्वया।
यदत्रानन्तरं कार्यं कुरुषु यदि रोचते।।

(अरण्य., २-२१-१९-२१)

एवं मातुः वचनं श्रुत्वापि रामः नाभिनन्दति धर्मः एव मया पालनीयः सर्वथा पिता त्वयैव अवेक्षणीयः इति कौसल्यमाश्वास्य स्वयं वनं प्रस्थितः। एकविंशे सर्गे बहवः श्लोकः रामपितृभक्तिसूचकाः वर्तन्ते। एकमुदाहरणम्-

गुरुश्च राजा च पिता च वृत्क्रोधात् प्रहर्षाद्यदि वापि कामात्।
यव्यादिशेत् कार्यमवेक्ष्य धर्मं कस्तं न कुर्यादनृशंसवृत्तिः।।

(अरण्य., २-२२-५९)

दशरथ मरणानन्तरमपि प्राप्तराज्यः भरतः स्वयं रामाय राज्यं दातुं चित्रकूटमागच्छति। तदानीं महर्षयः अपि राज्यं गृहाण इति रामं बोधयन्ति। यः वाचः प्रदात सोऽपि गतः पितुः प्राप्तराज्यः भरतः एव त्वां राज्यं दातुमिच्छति इति। तथापि रामः नाङ्गीकृतवान्। भरतः अग्निं प्रवेक्ष्यामि इति यदा उक्तवान् तदा भरतात् राज्यं ग्रहीतुम् अङ्गीक्तवान्। तदानिं दशरथेन भरताय राज्यं दत्तमिति दशरथप्रतिज्ञा न वितथा बभूव। भरतः स्वयं दत्तवान् भरत प्राणरक्षणं कार्यमिति वनवासानन्तरमेव राज्यस्वीकारमङ्गीकृतवान्। एवं रामः पितृवाक्यपालकानां धुरी स्थापनीयः अभूत्। अयोध्याकाण्डे त्रिपञ्चाशे सर्गे रामशोके दशरथादीनां निन्दा शोककृता न वास्तविकी इति व्याख्यातारः बहुधा समर्थयामासुः। स सर्वोव्यत्र ग्रन्थविस्तर हेतुरिति नोदाह्रीयते। अयोध्यायकाण्डेऽपि कार्यनिर्वहणे अपेक्षितानि सप्तलक्षणानि दृश्यन्ते। प्रथमतया लक्ष्यं स्वकार्यस्य पितुराज्ञापालनम्। तत्र प्रथमतया पितुरनुमतिरेव ग्राह्य पितरमनुक्त्वा स्वयं गतोपि किं त्वां अहं एवं करणीयमिति किमुक्तवान् इति पिता पृच्छति चेत् रामः स्वयं समाधातुमपि नशक्नोति। अतः पितरं स्ववनवासनिश्चयमुक्त्वा तेनैव अनुमतः गच्छामि इति रामस्य मतिरासीत्। अयोध्याकाण्डे चतुस्त्रिंशे सर्गे दशरथः रामं वनं गन्तुं स्वयमनुमेने इति वक्तुं शक्यते। कैकेय्या आदिष्टः स्वयं वनं गन्तुमुद्यतः किन्तु यदि स्वयं गच्छामि तदा दशरथः स्वयमागत्य आह्वयति चेत् तद्वचनमपि पितुराज्ञा भवेत् अतः स्वलक्ष्यप्रतिबन्धकं रितुराज्ञेवेति निश्चित्य तन्निर्वृत्तये अनुज्ञां प्राप्तुं पितुरन्तकं गतवान्। ततो दशरथः रामलक्ष्मणौ सीता च दृष्ट्वा अतीव शोकार्तः बभूवः रामोऽपि स्वयं वनं गन्तुं अनुज्ञां ययाचो। सीतालक्ष्मणौ मया वारयितुं न शक्यो अतः तावपि अनुमान्यौ इति स्वयं प्रार्थयामास। तथा स्वकार्यलक्ष्यप्राप्त्ये वास्तविको कृषिं न्याय्यया धिया रामः कृतवानेव।

आपृच्छे त्वां महाराज सर्वेषामीश्वरोऽसि नः।
प्रस्थितं दण्डकारण्यं पश्य त्वं कुशलेन माम्।।

लक्ष्मणं चानुजार्नाहि सीता चान्वेति मां वनम्।
कारणैर्बहुभिस्तय्यैर्वार्यमाणौ न चेच्छतः।।

(अयोध्याकाण्ड, ३४-२३-२३)

लक्ष्यसिद्धौ प्रतिबन्धकत्वात्

दशरथः रामाय अनुज्ञां दातुं नेष्टवान्। अहं कैकेय्या वञ्चितः मयिजीवति मया दत्तं वाक्यं आचरणीयमेव अतः मम वाक्यं अविगणय्य माम् हत्वा राजा भव। एवं दशरथोक्तिः कार्यसिद्धौ प्रतिबन्धको बभूव।

प्रतिबन्धनिवर्तने रामस्य कृषिः

रामः पितरं प्रसादयन् एवं उवाच चतुर्दशवर्षाणि वनविहारमेवकृत्वा पुनः आगमिष्यामि चतुर्दशवर्षाणि इति न महान् कालः इति पुनः दशरथं आश्वासयमास।

भवान् वर्षसहस्त्राय पृथिव्या नृपते पतिः।
अहं त्वरण्ये वत्स्यामि न मे कार्यं त्वयानृतम्।।
नव पञ्च च वर्षाणि वनमासे विहत्य ते।
पुनः पादौ ग्रहीष्यामि प्रतिज्ञान्ते नराधिप।।

(अयोध्याकाण्ड, ३५/२८-२९)

तत्र चतुर्दशवर्षाणि इति महान्तं कालं अनुक्त्वा अल्पावधिदर्शनार्थं नवपञ्च इति रामः साभिप्रायं उक्तवान्। भवान् वर्षसहस्त्रायपतिः इत्युक्तेः भवतः आयुषः प्रमाणे अयं कालः अल्पाल्पः इति द्योतयामास। वनवासं कृत्वा इति रामः नोक्तवान् वनवासे विहत्य इत्युक्तवान् राज्ञां यूनां च वनविहारः ज्योत्स्ना जागरः विनोदहेतुः शृङ्गारवृद्धि हेतुरिति रसविधः जानत्येव। सीतासमेतः रामः वनविहारार्थं गच्छति इति दशरथः यथा मन्यते तथा रामः उक्तवान् लक्ष्मणस्तु रामस्य प्राणेभ्योऽपि गरीयान् न च तेन विना निद्रां लभते पुरुषोत्तमः। इत्यादि बालकाण्डश्लोकेषु एष विषयः विस्तरेण वर्णितः।

लक्ष्मणो लक्ष्मिसंपन्नो बन्हिः प्राण इवापरः।
न च तेन विना निद्रां लभते पुरुषोत्तमः।।

(बालकाण्ड, १८.३०)

एवं लक्ष्मणवियोग शोलोऽपि लक्ष्मणानुगमने रामस्य न भवतीति रामवचनेषु स्पष्टम्। सीतारामयोः परिचयार्थं अपि लक्ष्मणः पर्याप्तः। एवं प्रतिबन्ध निर्वृत्तिरपि रामः स्वयं निर्वित्तयामास।

नैपुण्याभिवृद्धिः

पुनः प्रतिबन्धकं अपि अयोध्याकाण्डे भरतागमने उपस्थितः। भरतः पुनः पुनः रामं प्रार्थयामास। जाबाली प्रभृतयः महर्षयः अपि रामं राज्यग्रहणार्थं चोदयामासुः। स च संवादः राम प्रतिवचनं च अयोध्याकाण्डे चतुरधिकशततम सर्गादारभ्य त्रयोदशशतकतमसर्ग पार्यय भागे

द्रष्टव्यः। कश्चित् सर्गः रामस्य राजनीति प्रकाशकः। भरतमुद्धिश्च रामोपदेशरूपः अयोध्याकाण्डे शततमे सर्गे निबद्धः।

किं मया कृतं कर्तव्यमित्यपि रामः स्पष्टं जानाति। पितुः दृष्टान्तं श्रुत्वा प्रथमं पित्रे निवाताञ्जलिं दत्तवान्। पुनः पितुरेव शासनं पालयिष्यामि इति कृत निश्चयः।

यत्राहमपि तेनैव नियुक्तः पुण्यकर्मणा।
तत्रैवाहं करिष्यामि पितुरार्यस्य शासनम्।।
न मया शासनं तस्य त्यक्तुं न्याय्यमरिंदम्।
तत् त्वयापि सदा मान्यं सर्वै बन्धुः स नः पिता।
तद्वचः पितुरेवाहं संमतं धर्मचारिणाम्।।
कर्मणा पालयिष्यामि वनवासेन राघव।
धार्मिकेणानृशंसेन नरेण गुरुवर्तिना।।
भवितव्यं नरव्याघ्र परलोकं जिगीषता।।
आत्मानमनुतिष्ठ त्वं स्वभावेन नरर्षभस।
निशाम्य तु शुभं वृत्तं पितुर्दशरथस्य नः।।

(अयोध्याकाण्ड,१०५.४१-४५)

उत्तमः भ्राता

राजपुत्राः राज्यप्राप्तये अन्योन्यं कलहायमानाः अन्योन्यं जिघांसवश्च भवन्ति। किन्तु राम (जिघांसवः इन्तुमिच्छन्तः हनने कृतोद्यमाः च) - भ्रातृणां चतुर्णां मध्ये महान् अनुरागः एवासीत्। रामशतृज्ञयोः अन्योन्यसम्बन्धः केवलं उत्तरकाण्डे एव दृश्यते किन्तु रामलक्ष्मणयोः रामभरतयोः च अनुरागः सौभात्रं च रामायणे सर्वत्र वर्णितः।

रामलक्ष्मणसम्बन्धः - बालकाण्डे बाल्ये रामलक्ष्मणौ भरतरात्रृज्ञौ अन्योन्यं सहचारिणौ बभूवतुः। रामः सर्वान् भोगान् लक्ष्यणाय संविभज्य स्वयं अनुभवतिस्म। एवं भरतशत्रज्ञयोः अपि सम्बद्धः आसीत्।

बाल्यात्प्रभ-ति सुस्निग्धः लक्ष्मणो लक्ष्मीवर्धनः।
रामस्यलोकरामस्य भ्रातुः ज्योष्टस्य नित्यशः।।

(बालकाण्ड, २८.१९)

भरतः विवाह समनन्तरमेव अयोध्यायाः दुरं गतः अतः रामभरतयोः नित्यसंयोगः न दृश्यते। स्वस्यपट्टाभिषेकवार्तां श्रुत्वा रामः राज्यभोगान् संविभज्य लक्ष्मणाय दास्यामि इति प्रथमं उक्तवान्। एष विषयः अयोध्यकाण्डे चतुर्थसर्गे विस्तरेण वर्णितः।

लक्ष्मणेमां मया सार्धं प्रशाधित्वं वसुन्धराम्।
द्वितीयमेऽतरात्मानं त्वामियं श्रीरुपस्थिता।।

(अयोध्याकाण्ड, ४.४३)

अस्मिन् काले त्यागि, क्रोधनः, कामि क्वचित् भीतश्च भूत्वा उत्तमः शासकः सुखभाक् भवति। भीतिः तावत् धर्मादन्यत्र न कार्य यत् धर्मात् भीत एव रामः सत्यं पालयितुं वनं जगाम क्षत्र धर्मात् भीतः इव रक्षोनध प्रतिज्ञां अङ्गीकृतवान्। रावणस्तु परदारापहरणरूपात् अधर्मात् न भीतः स्वनाशं स्वयमेव अङ्गीकृतवान्। रामायण सारांशः पालनविषये, वैय्यक्तिकधर्मविषये, स्त्रीविषये, भोगविषये, त्यागविषये वा सर्वत्र संक्षेपेण एवं रामायणवचनैरेव ग्राह्यः।

सन्दर्भग्रन्थसूची

- श्रीमद्रामायणम् – वाल्मीकिः (8^{th} Parts), व्याख्यात्रयोपेतम् (तिलक, गोविन्दराजीय, रामायणशिरोमणि) परिमल पब्लिकेशन् दिल्ली, २०००
- श्रीमद्रामायणम् (मूलमात्रम्), यम्. यल्. – जे प्रेस् मौलापुर मद्रास, १९५६
- श्रीमद्रामायणतत्वकथनम्, वारणासिसुब्रह्मण्यशास्त्री, पिठापुरम् तूर्पूगोदावरी, १९६१
- महाभारतम्, स्वाध्यायमण्डल् लिमिटेड् बलार्षा गुजरात्, १९८१
- मनुस्मृति, व्या. शिवराज आचार्यः कौण्डिन्न्यायनः, चौखम्भा संस्कृत संस्थान, वारणासी २०१२

Shodh Navneet (International Peer-Reviewed Research Journal)
ISSN : 2321-6581, IIJ Impact Factor : 5.037, Vol. XIX, July - Dec. - 2022

पद्मपुराणे द्वादशीव्रतमाहात्म्यम्

दीपिका बेहेरा*

उपोद्घातः

भारतीयसंस्कृतिसम्प्रदायपरम्पराग्रन्थेषु पुराणानि मुख्यतमानि विद्यन्ते। तत्र पुराणवाङ्मयं भारतीयजीवनसाहित्यस्यास्ति, अमूल्यं रत्नं तथाऽतीतं वर्तमानेन सह संयोजयितुं सर्वमयी शृङ्खला च भवति। विश्वसाहित्यस्याक्षयभण्डारे अष्टादशमहापुराणानि सर्वश्रेष्ठानि अद्वितीयरत्नानि च सन्ति। भारतीयवाङ्मये पुराणसाहित्यस्य कृते एकं विशिष्टं महत्त्वपूर्णञ्च स्थानं विद्यते।

समस्तेऽस्मिन् संसारे मानवजन्मस्य सफलोपायाः बहवः पुराणग्रन्थेषु उपदिष्टावर्तन्ते। तत्र आश्रमधर्माः भगवद्दर्शनं उत्सवाः व्रतानुष्ठानं जपध्यानचिन्तनादीनि वर्तन्ते। भारतीयविज्ञानपरम्परायां सर्वेषां आस्तिकानां धार्मिकचिन्तनं अत्यन्तमावश्यकमिति ज्ञायते च।

आर्यजाते जीवनं धर्मसमयमस्ति। धर्मस्य यज्ञदानतपांसि त्रीणि प्रधानान्यङ्गानि आवश्यकं कर्तव्यत्वेन शास्त्रेषु निर्दिष्टानि सन्ति। एषां त्यागः कदापि नोचितः। यत् एतानि त्रीणि मनीषिणामपि पावनानि सन्ति। अत एवोक्तं गीतायां भगवता श्रीकृष्णेनार्जुनं प्रति उक्तं यत् –

यज्ञदानतपः कर्म न त्याज्यं कार्यमेव तत्।
यज्ञो दानं तपश्चैव पावनानि मनीषिणाम्।।[१]

यज्ञ–दान–तप इति त्रयाणामेव वैशिष्ट्यमत्र उपदिश्यते। अतो नियमितरूपेण व्रतोत्सवस्य तपोधर्ममूलकत्वेऽपि तत्र दानधर्मयज्ञा अपि समावेशः विद्यते। पुराणसाहित्येषु तिथि–वार–नक्षत्रादि नानाविधानि व्रतानि परिलक्ष्यन्ते। तिथिव्रते प्रतिपदादारभ्य पूर्णिमां यावत् विभिन्नानि व्रतानि दृश्यन्ते। अग्नि–नारद–भविष्य–पद्म–स्कन्दादिषु पुराणेषु एतेषां तिथिव्रतानां स्वरूपं लक्षणञ्च समुपलभ्यन्ते। तत्रत्यागानामादर्शचरित्राणामनुशीलनेन मनसः समुन्नतौ चरित्रसङ्गठने च महत् साहाय्यमवाप्यते। व्रतोत्सवानामानुष्ठानेन आरोग्यलाभो भवति।

पद्मपुराणे द्वादशीव्रतम्

श्रीपद्ममहापुराणे सृष्टिखण्डे उत्तरखण्डे च द्वादशीव्रतानां वर्णनमुपलभ्यते। भाद्रपदमासे श्रवणनक्षत्रयुक्तद्वादशी अत्यन्तं पुण्यप्रदायिका वर्तते। सरितसङ्गमे स्नानं समाप्य द्वादशीव्रतं करणीयम्। अस्मिन् दिने निराहारेण व्रतं क्रियते चेत् महत् फलं प्राप्यते। बुधवासरे तथा

* शोधच्छात्रा, पुराणेतिहासविभागः, राष्ट्रियसंस्कृतविश्वविद्यालयः तिरुपतिः, आन्ध्रप्रदेशः

श्रवणनक्षत्रयुक्ता द्वादशी महत् फलं ददाति तथा तस्मिन् दिने अखिलफलम् अक्षयपुण्यप्रदं भवति। यथा पद्मपुराणे उक्तम् –

मासि भाद्रपदे शुक्ले द्वादशी श्रवणान्विता।
सा वै सर्वदा पुण्या ह्युपवासे महाफला।।[२]
सङ्गमे सरितां स्नात्वा द्वादशीं समुपोषितः।
अयत्नात्समवाप्नोति द्वादशद्वादशीफलम्।।[३]

व्रती तस्मिन् दिने जलपूर्णं कुम्भोपरि एकं पात्रं संस्थाप्य तस्योपरि भगवन्तं जनार्दनं संस्थापयेत्। अनन्तरं घृतयुक्तं नैवेद्येन भगवन्तं जनार्दनाय समर्पयेत्। स्वशक्त्यानुसारेण नवकुम्भान् प्रदाय भगवतः जनार्दनस्य अर्चनं करणीयम्। अतः पद्मपुराणे उच्यते यथा –

जलपूर्णं तदा कुम्भं स्थापयित्वा विचक्षणः।
तस्योपरि न्यसेत्पात्रं स्थापयित्वा जनार्दनम्।।[४]
ततस्तस्याग्रतो देयं नैवेद्यं घृतपाचितम्।
नवकुम्भान्सोदकांश्च दद्याच्छत्तया विचक्षणः।।[५]
एवं सम्पूज्य गोविन्दं जागरणं तत्र कारयेत्।
प्रभाते विमले स्नात्वा सम्पूज्य गरुडध्वजम्।।[६]

अनन्तरं पुष्प-धूप-नैवेद्येन मन्त्रपाठेन च पुष्पाञ्जलिं समर्पयेत्। **हे गोविन्द, मम सर्वपापं विनश्य मह्यं सर्वं सुखम् अक्षयं च प्रददातु।** विशेषरूपेण वेदज्ञः तथा पुराणविशेषज्ञः ब्राह्मणाय विधिपूर्वकं अन्नदानं विधातव्यम्। व्रतमिदं नदीतीरे विधिपूर्वकं करणीयम्। तद्यथा –

अन्नं तु ब्राह्मणे पूतं वेदवेदाङ्गपारगे।
पुराणज्ञे विशेषण विधिवत्संप्रदापयेत्।।[७]
अनेन विधिना चैव नद्यास्तीरे नरोत्तमः।
सर्वं निवर्तयेत्सम्यगेकचित्तरतोऽपि सन्।।[८]

अस्मिन् व्रतविषये पद्मपुराणे वणिजः उपाख्यानं दृश्यते। यत् वणिक् अपि नदीनां सङ्गमस्थले श्रवणद्वादशीव्रतं सम्पाद्य मरणानन्तरं वैकुण्ठं प्राप्तवान् इति। अतः इदं श्रवणद्वादशीव्रतं सर्वसौभाग्यप्रदं सर्वपापविनाशकञ्च अस्ति। अनेन व्रताचरणेन मनुष्यः विष्णुलोकं प्राप्नोति। तथैव माघमासे शुक्लपक्षे द्वादशीतिथौ घृततिलमिश्रित जले स्नानं सम्पाद्य **ॐ नमो नारायणाय** इति मन्त्रेण श्री विष्णुः अर्चनीयः। कृष्णाय नमः इति चरणस्य, कृष्णात्मने नमः इति शिरसः, श्रीवत्सधारिणे नमः इति वक्षस्थलस्य, शङ्खिने नमः, गदिने नमः, वरदाय नमः, इति मन्त्रैः आहूय अर्चनं करणीयम्। दामोदराय नमः उदरस्य, पद्मनाभाय नमः कटिप्रदेशस्य इति मन्त्रेण पूजा

करणीया। यथा श्रीपद्मपुराणे –

माघमासस्य दशमी यदाशुक्ला भवेत्तदा।
घृतेनाभ्यंञ्जनं कृत्वा तिलैः स्नानं समाचरेत्।।[९]
तथैव विष्णुमभ्यर्चेन्नमो नारायणाय च।
कृष्णाय पादौ सम्पूज्य शिरः कृष्णात्मनेति च।।[१०]

अनेन प्रकारेण श्रीगोविन्दस्य पूजां क्रियते। सूर्यास्तमयानन्तरं सायङ्काले नारायणाय नमः, भवतः शरणं अहं ब्रजामि। अथान्तरे अनेन विधानेन एकादश्यानन्तरं द्वादशीव्रतं सम्पाद्यते। अस्मिन् द्वादशीव्रते विष्णोः भगवतः अर्चनं कृत्वा ब्राह्मणाय दक्षिणा दातव्या। प्राचीनकाले व्रतमिदं स्वयं भीमः समाचरितवान्। अतः अस्य व्रतस्य नाम भीमद्वादशीव्रतम् इत्युच्यते।

अनन्तरं कार्तिकमासे विशोकद्वादशीव्रतमनुष्ठीयते। दशमीतिथौ व्रतस्यारम्भः भवति। स्वल्पाहारपूर्वकमिन्द्रियनियन्त्रणैः मानवः व्रतं कुर्यात्। एकदश्यां निराहारेण केशवदेवमर्चयेत्। द्वादशीतिथौ विशोकाय नमः इति मन्त्रेण भगवन्तमर्चयेत्। अथ श्रीपद्मपुराणे उच्यते। यथा –

पुण्यमाश्वयुजे मासि विशोकद्वादशीव्रतम्।
दशम्यां लघुभुग्विद्वान्प्रारभेत यमेन तु।।[११]
उदङ्मुखः प्राङ्मुखो वा दन्तधावनपूर्वकम्।
एकादश्यां निराहारः सम्यगभ्यर्च्य केशवम्।।[१२]

उपसंहारः

इदं द्वादशीव्रतमाध्यमेन अनेकजीवानां विशेषरूपेण मानवानां बहवः उपकारं भवति। द्वादशीव्रताचरणेन सप्तजन्मार्जितं पापस्य क्षयः भवति। द्वादशीव्रतं मानवाय धर्मार्थकाममोक्षरूपपुरुषार्थचतुष्टयं प्रददाति। द्वादशीव्रतं सर्वेषां कामनां पूर्णं करोति। यः पुरुषः द्वादश्यां विष्णुं पूजयति तस्मै विष्णुदेवः अभीष्टफलं प्रददाति इति पद्मपुराणे वर्णितम्।

सन्दर्भाः

१. श्रीमद्भगवद्गीता, १८.४
२. पद्मपुराणम्, उत्तरखण्डम्, ६९.२
३. पद्मपुराणम्, उत्तरखण्डम्, ६९.३
४. पद्मपुराणम्, उत्तरखण्डम्, ६९.६
५. पद्मपुराणम्, उत्तरखण्डम्, ६९.७
६. पद्मपुराणम्, उत्तरखण्डम्, ६९.८
७. पद्मपुराणम्, उत्तरखण्डम्, ६९.११
८. पद्मपुराणम्, उत्तरखण्डम्, ६९.१२

९. पद्मपुराणम्, उत्तरखण्डम्, २३.१२

१०. पद्मपुराणम्, उत्तरखण्डम्, २३.२३

११. पद्मपुराणम्, सृष्टिखण्डम्, २१.२३

१२. पद्मपुराणम्, सृष्टिखण्डम्, २१.२४

सहायकग्रन्थसूची

- श्रीपद्ममहापुराणम्, आचार्य शिवप्रसाद द्विवेदी, चौखम्बा सुरभारती प्रकाशन, वाराणसी, २०१५
- पद्मपुराणम्, गीताप्रेस, गोरखपुर, २०१५
- पद्मपुराण एक समीक्षात्मक अध्ययन, डॉ. हरेराम त्रिपाठी, प्रभा प्रकाशन, वाराणसी, १९९५
- श्रीमद्भगवद्गीता, स्वामी श्रीसनातनदेवजी महाराज, चौखम्बा संस्कृत भवन, वाराणसी, वि. सं. २०७०
- श्रीमद्भगवद्गीता, डॉ. राजकुमार उपाध्याय, चौखम्बा प्रकाशन, वाराणसी, २०१५

Shodh Navneet (International Peer-Reviewed Research Journal)
ISSN : 2321-6581, IIJ Impact Factor : 5.037, Vol. XIX, July - Dec. - 2022

पुराणेषु उद्भिदानामुपयोगिता

मधुमिता साहु*

'परोपकाराय फलन्ति वृक्षाः' इति वृक्षानधिकृत्य सुप्रसिद्धं सुभाषितं सर्वैरपि सुविदितमेव। वृक्षाणां परोपकारित्वं सर्वप्राणिहितकारित्वं च पुराणेषु तत्र तत्र नानप्रकारैः सुव्यक्तं प्रतिपादितमस्ति। न केवलं जीवितावधौ अपि तु मरणानन्तरमपि वृक्षाः सकलजीवजातमुपकुर्वन्ति। भागवतपुराणे यमुनां प्रति प्रस्थितः श्रीकृष्णो गोपबालानुद्दिश्य 'परार्थैकान्तजीवितान् वृक्षान्' वर्णयति। मार्गे सूर्यकिरणानां प्रकाश आसीत्। परन्तु दाहो नासीत्। पार्श्वयोस्वस्थिता वृक्षा 'आतपत्रायिता' आसन्। तेषां तथा विधमुषकारित्वं दृष्ट्वा श्रीकृष्णास्तदेवोपदारित्वं निवेदयति। वृक्षाः स्वयं वातवर्षातपहिमान् सहन्ते। तथैव तेभ्यो मानवान् सर्वप्रकारेण रक्षित्वा सुखं प्रयच्छन्ति। अतो वृक्षाणां जन्मसार्थकं यतः सर्वप्राणिनस्तानुपजीवन्ति। अर्थिनो वृक्षेभ्यो स्वेच्छितमलब्ध्वा कदापि विमुखा न प्रयान्ति। वृक्षसदृशो भूत्वा प्रणैरर्थैर्धिया वाचा च श्रेय एवाचरेत्सदा इति श्रीकृष्णो मानवजन्मसाफल्यस्य मार्गमुपदिशति निर्दिशति च। शृण्वन्तु श्रीकृष्णवचनानि –

पश्यतैतान् महाभागान् परार्थैकान्तजीवितान्।
वातवर्षातपहिमान् सहन्तो वारयन्ति नः।
अहो एषां वरं जन्म सर्वप्राण्युपजीवनम्।
सुजनस्येव येषां वै विमुखां यान्ति नाथिनः।।
पत्रपुष्पफलच्छायामूलवलकलदारुभिः ।
गन्धनिर्यासभस्मास्थिनोकमैः कामान् वितन्वते।।
एतावज्जन्मसाफल्यं देहिनामिहदेहिषु।
प्राणैरर्थैधिया वाचा श्रेय एवाचरेत् सदा।। इति।।

(भागवतपुराण, १०,२२,३२–३९)

वृक्षाणां स्वार्थत्यागः परार्थमेव च जीवनं भविष्यपुराणेऽपि श्रीकृष्णवचनद्वारा उक्तम् –

छायामन्यस्य कुर्वन्ति तिष्ठन्ति स्वयमातपे।
फलन्ति च परार्येषु न स्वार्थेषु महाद्रुमाः।। इति।

(म.उत्तर.अ.१२८ श्लो.१५)

घनच्छायावन्तो वृक्षा न केवलं मानवानां सुखदायकाः, सर्वेषामपि भूमण्डलस्थानां

* शोधच्छात्रा, पुराणेतिहासविभागः, राष्ट्रियसंस्कृतविश्वविद्यालयः, तिरुपतिः, आन्ध्रप्रदेशः

प्राणिनामानन्दप्रदाः सन्ति। एतदेव न, सुतरवः पुष्पैदैवान्, फलैः पितृन् च सुष्ठु तोषयन्ति। अतः सर्वानन्दकराणां तरुणां जिवानं धन्यमेव, प्रशंसनीयमेव, तथैवानुकरणीयमेवेति श्रीकृष्णः सम्यक् प्रतिपादयति।

प्राणिनः प्रीणयन्ति स्म च्छायावल्कलपल्लवैः।
धनच्छेदा सुतरवः पुष्पैर्दवान्फलैः पितृन्।।
पुष्पपत्रफलच्छायामूलवल्कलदारुभिः।
धन्या महीरुहा येषां विफला यान्ति नार्थिनः।। इति। (म.उ.रलो. ४-५)

एतदेव मानवानां जन्मसाफल्यं यत्र स्वार्थत्यामद्वाय परार्थसाधनं दरीदृश्यते। एते सप्तपुरुषाः परार्थघटकाः स्वार्थान् परित्यज्य ये इत्युक्तदिशा मानवोन्तमाः स्वार्थाय न प्रयतन्ते, किन्तु परार्थाय वारं वारं परिश्राम्यन्ति, सफला भवन्ति, धन्यतामनुभवन्ति, अन्तस्मुखं च आस्वादयन्ति, इहलोके कीतिं परलोके शाश्वतसुखं च प्राप्नुवन्ति। नदीतीरे वृक्षारोपणद्वारा मानवानां पितृतर्पणं भवतीति पद्मपुराणे निरूपितं वर्तते। यथा –

पतन्ति यानि पत्राणि जले पर्वाणि पर्वाणि।
तानि पिण्डसमानिह पितृणामक्षयं ययुः।। इति। (पद्मपुराण (सृष्टि) ५५-६)

पुराणेषु वृक्षाणां दिन्यत्वमपि प्रतिपादितमस्ति। अतिप्राचीनकाले देवदानवोर्युद्धं समभवत्। तस्मिन् दानवैर्देवाः पराजिताः। भयभीता देवाः प्राणान् रक्षितुं जङ्घाबलमेवाश्रितवन्तः। प्रपलायनं कुर्वन्तो देवाः कुत्रापि प्राणरक्षणोपायं न लेभिरे। तदा ते सूक्ष्मरूपैः वृक्षेषु प्रविदिशुस्य च सुरक्षिता बभूवुरिति आसमहर्षिणा निरूपितमस्ति।

पुरा कोलाहले युद्धे दानवैर्निजताः सुराः।
वृक्षेषु विदिशुस्तत्र सूक्ष्माः प्राणपरीप्सया।। (प.पु.उ. १५१-२)

भगवता श्रीकृष्णेन गीतायां दशमाध्याये वक्षिते विभूतियोगे "अश्वत्थः सर्ववृक्षाणामि" ति अश्वत्थवृक्षस्य दित्वं निदिष्टं दृश्यते। तदेव दिव्यत्वमश्वत्थस्य पुराणेष्वपि प्रतिपादितमस्ति। अश्वत्थवृक्षस्य सर्वावयवेषु भगवान्विष्णुरेव वसतीति स्कन्दपुराणे सविवरं स्पष्टी कृतमस्ति। यथा –

मूले विष्णुः स्थितो नित्यं स्कन्धे केशव एव च।
नारायणस्तु शाखासु पुत्रेषु भगवान् हरिः।।
फलेऽच्युतो न सन्देहः सर्वदेवैः समन्वितः।
स एव विष्णुर्द्रुम एव मूर्तौ महात्मभिः सेवितपुण्यमूलः।
यस्याश्रयः पापसहस्त्रहन्ता भवेन्नृणां कामदुधो गुणादयः।।

(प.पु.ना.२४७.४१,४२,४४)

एतत्तु स्मरणीयं यद्विष्णुरूपतया विष्णुसहशोऽश्वत्थः सकलपापहन्ता सर्वाभीष्टप्रदायकोऽपि।

अतः स एव भूमिस्थः कल्पवृक्षः भूमण्डलगता कामधेनुश्च। अश्वत्थस्य विष्णुरूपत्वं तथैव वटस्य शिवरूपत्वं स्कान्दे स्पष्टीकृतम्। तत्रोकतम् –

सूर्यभावे पूजनीयोऽश्वत्थो वाथ वटोऽथ वा।
अश्वत्थरूपी विष्णुः स्याव्दटरूपी शिवो यतः।। इति।

(वैष्णवखण्डे, ४.३.३८)

अतोऽश्वत्थः पुत्रवत्परिपालनीयः। तत्रैवस्कान्द उक्तम् –

पितृणां मुत्पये तेन स्याप्योऽश्वत्थः समाधिना।
पुत्रवत्परिपाल्यश्च निर्विशेषं नराधिप।।

(प.पु.ना.२४५–४३)

अस्माकं भारतीयानां गृहाणामग्रभागे तुलसीवृन्दावनं प्रधानतया विराजते। तुलसीमाहात्म्यं च सर्वेश्वगतं वर्तते। दामादर रूपिणा विष्णोपरमात्मना सह तुलस्या दिवाहः प्रतिवर्ष सम्पन्नो भवति। तुलस्या महिमा गरिमा च देवीभागवते सुयुक्तं प्रतिपादितौ। यथा –

तुलसीं पुष्णसारां च सतीं पूतां मनोहराम्।
कृतपापेध्मदाहाय ज्वलदग्निथिरवोपमाम्।।
पुष्पेषु तुलना यस्या नास्ति वेदेषु भाषितम्।
पवित्ररूपा सर्वासु तुलसी सा च कीर्तिता।।
शिरोधार्या च सर्वेषामीप्सितां विश्वपावनीम्।
जीवन्मुक्तां मुक्तिदां च भज तां हरिभक्तिदाम्।।

(दे.भा. ९.२४.४१–४३)

वृक्षाणां महत्त्वं हितकारित्वं चाधिकत्य विचारो यदि क्रियते तदैतदेवावगन्तव्यं यद् वृक्षाः पुत्रसदृशा इति नानाप्रकारेण पुराणेषु वक्षिताः सन्ति। भविष्यपुराणोकतान्येतानि वचनानि श्रोतन्यानि, मन्तव्यानि, चिन्तनीयानि च।

पत्रपुष्पफलानां च रजोरेणुसमागमाः।
पोषयन्ति च पितरं प्रत्यहं प्रतिकर्मणि।।
यस्तु वृक्षं प्रकुरुतेच्छायापुष्पफलोपगम्।
पथि देवालये चापि पापत्तारयते पितृन्।।
कितिरुच मानुषे लोके प्रत्यश्येति शुभं फलम्।
अतीतानागताश्चातः पितृन्सस्वगतोद्विजाः।
तारयेद् वृक्षरोपी च तस्माद्वृक्षं प्ररोपयेत्।।
अपुत्रस्य हि पुत्रत्वं पादपा इह कुर्वते।

यत्नेनापि च विप्रेन्द्र अश्वत्थारोपणं कुरु।।
शतैः पुत्रसहस्त्राणामकं एव विथिष्यते।
कामेन रोपयेद्विप्रा एकद्विविप्रसंख्यया।।

(भ.पु.मध्यमपर्वणि, अ.१०)

अपि च पुत्राणामुपरि कथं सर्वथा विश्वासः कार्यः। सुपुत्रा जायन्ते, दुष्पुत्रा अपि संभवन्ति। स्वजनकानां मरणानन्तरं प्रतिवर्षे विधिवत् श्रादूं कृत्वा पितृतोषणं कर्तारोऽल्पसंख्यका एव। वृक्षाणां व्यवहारस्तु न तादृशः। ते सदा सर्वदा पितृतोषणं कुर्वन्त एव जीवन्ति। अतो भविष्यपुराणे अकतीकृतमस्ति। यथा –

पुत्राः संवत्सरस्यान्ते श्रादूं कुर्वन्ति वा न वा।
प्रत्यहं पादपाः पुष्टिः श्रेयोऽर्थं जनयन्ति हि।।

(भ.पु. उत्तरपर्वणि,१२८-६)

अन्यच्च

पुत्रैर्विना शुभगतिर्न भवेन्नराणां
दुष्पुत्रकैयिति तथोभयलोकनाशः।
एतद्विचार्य सुधिया परिपाल्य वृक्षान्।
पुत्राः पुराणविधिना परिकल्पनीया।।

(भ.पु.उत्तर- ४५)

एतदपि स्मर्तव्यं यत् अपुत्रया शिवकन्तया देव्या पार्वत्योऽशोकवृक्षः पुत्रत्वेन परिकल्पितं आसीत् –

अपुत्रया पुरा पार्थ पार्वत्या मन्दराचले।
अशोकः शोकशमनः पुत्रत्वे परिकल्पितः।।

(भा.पु. उत्तर - १७)

एतदप्यवधेयं यद् वृक्षः पुत्रादप्यधिकः सदा सर्वदा सर्वविधैरच श्रेयस्करश्चेत्यपि पुराणेषु घोषितमस्ति। यथा –

दशकूपसमा वापी दशावापी समसरः।
दशसरः समा कन्या दशकन्यासमः क्रतुः।।
दशक्रतुसमः पुत्री दशपुत्रसमो द्रुमः।।

(स्कन्द. महा. २.२७-२१-२)

वृक्षस्य सुरवदायकत्वं हितकारित्वं च प्रकारेणान्येन निवेदितमस्ति भविष्यपुराणे। अग्निद्येत्रद्रतपालकात्पुत्रादप्याधिव्येन पथि रिपितो घनच्छायो वृक्षः पुण्यकारकः। पतिव्रता व्रतनिष्ठा

कालेव इति वहाच्छायापूर्णा पुष्पफलांकृता वृक्षावाटिका। तथाविधा वृक्षवाटिका कामातुरवारांमनेव प्रयुरसुखप्रदा। शृण्वन्वेतान् श्लोकान् –

न तत्करोव्यग्निद्योत्रं सुखं यद्योषितः सुतः।
यत्करोति धनच्छायः पादपः पथि रोपितः।।
सच्छाया च सपुष्पा च सफला वृक्षवाटिका।
कुलायोषेव भवति भर्तुलोकव्दयानुगा।।
अशोकफलावकरा तिलकालंकृतानना।
सर्वोपभोगवेश्येव वाटिका रसिका सहा।।

(भ.पु. उत्तरपर्वणि–१२८)

शिवपुराणोक्तानि वचनान्येतान्यपि अत्र मनसि धारणीयानि –

अतीतानागतान्सर्वान्पितृवंशांस्तु तारयेत्।
कान्तारे वृक्षारोपी यस्तस्माद् वृक्षांस्तु रोपयेत्।।
तत्र पुत्रा भवन्त्येने पादपा नात्र संशयः।
परं लोकं गतः सोऽपि लोकानान्पोति चाक्षयान्।।
पुष्पैः सुरगणान्सर्वान् फलैश्चापि तथा पितृन्।
ळाययोऽतिथीन् सर्वान् पूजयन्ति महीरुहाः।।
किन्नरोरगरक्षांसि देवगन्धर्वमानवाः।
तथा ऋषिगणाश्चैव संश्रयन्ति महीरुहान्।।
पुष्पिताः फलवन्तश्च तर्पयन्तीह मानवान्।
इहलोके परे चैव पुत्रास्ते धर्मतः स्मृताः।।

(शि. पु . ५.२१.१७.२)

अतो व्यासमहर्षिर्भविष्यपुराणे सुस्पष्टमुपदिशति। यथा –

तडागं देवभवनं वापी वृक्षो धनच्छदः।
चतुर्थकं फलं प्राप्तं कारितेऽस्मिंरचतुष्टये।।

(भ.पु – उत्तर. १२७–७१–२)

अपि च –

बहुभिर्वत किजातैः पुत्रैर्धर्मार्थवर्जितैः।
वरमेकं पथि तरुर्यत्र विश्रमते जनः।।

(भ.पु. उत्तर. १२८–३)

वृक्षाणां पुत्रत्वविषये एतान्यपि विष्णुधर्मोत्तरपुराणोक्तानि वचनानि वेदितन्यानि –

एकोऽपि शेपितो वृक्षः पुत्रकार्यकरा भवेत्।
देवान्प्रसूनैः प्रीणानि छायया चातिथींस्तथा।।
फलैर्मनुष्यान्प्रीणाति नारकयं नास्ति पादपे।
अपि पुष्पफलैर्हीने द्रुमे पान्थस्य विश्रमः।।
सेचनादपि वृक्षस्य शेपितस्य परेणतु।
महत्फलमदान्योति नात्र कार्या विचारणा।।
वृक्षायुर्वेदविधिनां व्याधितं तु यथाक्रमम्।
नीरजः मानवः कृत्वा स्वर्गलोकमवान्पुयात्।।

(विष्णुधर्मोत्तर. पु. ३-२९७)

वृक्षारोपणं वृक्षरक्षणं च मानवानां परमकर्तव्यमिति पुराणेषु बहुप्रकारेण विहितमस्ति। कदापि वृक्षच्छेदनं न कार्यम्। वृक्षनाशस्य विचारोऽपि न करणीयः । वृक्षच्छेदनं महापापकरमिनि भविष्यपुराणे सुस्पष्टमनुरासितं वर्तते। तत्रापि वटाखत्थयोः च्छेदनेन नरो ब्रह्महत्यापापं लभत हति पौराणिकं मतम् -

किंचिच्छेदं च यः कुर्यादश्वत्थस्य वटस्य च।
श्रीवृक्षस्य च विप्रेन्द्राः स भवेद् ब्रह्मघातकः।।
मूलच्छेदेन विप्रेन्द्राः कुलपातो भवेदनु।
वृक्षच्छेदी भवेन्मूक् आधिव्याधिशतं भजेत्।।

(भ.पु . मध्यमपर्वणि. ५९-६०)

वासार्थं गृहनिर्माणावसरे परितः वृक्षारोपणं विधिपूर्वकं करणीयमेवेति सुस्पष्टं मत्स्यपुराणे उपदिष्टमस्ति -

भवनस्य वटः पूर्वे दिग्भागे सर्वकामिकः।
उदुम्बरस्तथा याम्ये वारुण्यां पिप्पलः शुभः।।
प्लक्षश्चोत्तरतो धन्या विपरीतास्त्वसिद्धये।।
पुन्नागशोकबकुलशमीतिलकचम्पकान् ।
दाडिमीपिप्पलीद्राक्षा तथा कुसुममण्डपान्।।
जम्बीरपूमपनसद्रुमकेतकी अभिर्जातीसरोजशतपत्रिकमल्लिकाभिः।
यन्नालिकेरकदलीदलपाटलाभिर्युक्तं तदत्र भवनं श्रियमातनोति।।

(भ.पु . २५५-२०.२१.२३.२९)

अन्तत्वोगत्वेदमवगन्तव्यं यद् वृक्षाः पूर्णरूपेण परोपकाराः यैव जीवन्ति। परार्थायैव ते रोहन्ति, विकसन्ति, पुष्यन्ति, फलन्तिच। न तु स्वार्थाय। तेषां सर्वावस्याः प्राणिमात्रहितार्थाय। मृता

अपि वृक्षा हितकारिण एवेति सर्वैः सुष्ठू ज्ञातम्। अतः स्वपरहितैषिभिर्मानवैः सर्वथा वृक्षाणामारोपणं कर्तव्यबुध्द्या करणीयम्। तेषां रक्षणं च धर्मबुध्द्या कार्यम्। अतएव पुराणेषूपदिष्टमस्ति –

सदा स तीर्थो भवति सदा दानं प्रयच्छति।
सदा यज्ञं स यजते यो रोपयति पादपम्।।
न खानिताः पुष्करिण्यो रोपिता न महीरुहाः।
मातुर्यैवनचौर्येण तेन जातेन किं कृतम्।।

(भविष्यपुराणे, उत्तरपर्वणि, १२८.१०,१९)

''वृक्षमयं भवतु जगत्। वृक्षरक्षणं भवतु मानवधर्मः।''

सहायक-ग्रन्थसूची

- अमरकोष, चौखम्बा संस्कृत संस्थान, वाराणासी, १९६८
- भागवतमहापुराणम्, चौखम्बा संस्कृत संस्थान, वाराणासी, १९८८
- भविष्यपुराणम्, गीताप्रेस, गोरखपुर, सं. २०३७
- मत्स्यपुराणम्, नागपब्लिसर्स, दिल्ली, १९८४
- स्कन्दपुराणम्, वङ्गवासिप्रेस, कोलकाता।

Shodh Navneet (International Peer-Reviewed Research Journal)
ISSN : 2321-6581, IIJ Impact Factor : 5.037, Vol. XIX, July - Dec. - 2022

अद्वैतसिद्धान्तः सूफिसिद्धान्तः च किञ्चित् दार्शनिकविचिन्तनम्

सौम्या. के *

यदाप्रभृति मानवः, स्वस्य मनुष्यः इति नाम्नः अर्हतां लब्धवान् तदाप्रभृति सः परितः विद्यमानानां वैविध्यानां कारणानि, तथा विविधसृष्टीः अधिकृत्य सृष्टिकर्तारं प्रति च जिज्ञासुः भूत्वा अस्वस्थः अभवत्। एवं कार्यकारणानि अधिकृत्य चिन्तया परिश्रमेण च मनुष्यैः अनेकानि दर्शनानि रूपीकृतानि। तेषु दर्शनेषु कानिचित् परिणामसिद्धान्तरूपेण, अपराणि कानिचित् कणिकासिद्धान्तरूपेण, अपराणि कानिचन अद्वैतवादः एकेश्वरवादः एवमादिभिः नामभिः आत्यन्तिकसत्यस्य मनुष्यप्रपञ्चबन्धस्य च आशयाः मनीषिभिः (स्वेषां युक्ति युक्तरीत्या) उल्लिखिताः। विभिन्नानि प्रपञ्चव्याख्यानानि तथा एकस्य व्याख्यानस्य सूक्ष्मांशे व्यत्यस्तानि, विभिन्नरूपाणि च आविष्कृतानि इति कारणात् पुरातनत्वचिन्ता कदापि एकशिलारूपा नासीत्।

तत्त्वचिन्ता इति पदं विविधशास्त्रशाखानां सम्बन्धस्य सूचनारूपेण विवादरूपेण च प्रयुज्यते। धर्मः तत्त्वचिन्ता च सत्यान्वेषणपरा यात्रा एव। किन्तु तत्त्वचिन्तायां तादृशं समिपनं पूर्णतया सैद्धान्तिकं, भौतिकं विमर्शनात्मकं च भवति। एवमपि धर्मस्य पश्चात्तले तत्र विकारस्य विचारस्य दैविकतयाः च प्राधान्यं संजायते।

तत्त्वचिन्तापद्धतीनां चरित्रपरं निरीक्षणं करोति चेत् भौतिकवादस्य आशयवादस्य च संयोजनस्य चरित्रं द्रष्टुं शक्नुमः। अत एव अत्र विभिन्नविभागानां योगात्मकधाराणां अवलोकनं करणीयं इति चिन्ता संजाता। विभिन्नमार्गैः सत्यस्य अन्वेषणं सूफिपण्डितैः (सूफिसिद्धान्तिनः) अद्वैतवेदान्तिभिः च कृतमस्ति। तादृशदार्शनिकतुलनात्मकचिन्तायाः सत्तां प्रति अन्वेषणं अनुयोज्यं इति प्रतीयते। नामभिः रूपैः च अस्माभिः दृश्यमानस्य अनुभूयमानस्य च सूक्ष्मरूपं मूलतत्त्वं च एकमेव इति चिन्तयन्तः अद्वैदवेदान्तिनः तस्य मूलतत्त्वस्य ब्रह्म इति नाम कृतवन्तः। तादृशं मूलतत्त्वं एव सर्वेषु प्राणिषु अन्तर्यामी भूत्वा स्फुरन्ति इति अवबुध्य तत् तत्त्वमेव अनल्हख् इति प्रख्यापनं कृतवन्तः आसन् सूफिगुरवः। वस्तुतः अद्वैतिनः सूफिवर्याः च एकमेव सत्तां अनुभवन्ति।

यागादिकर्मणां उपासनानां च प्राधान्यं कल्पितवतां जनानां समूहे सर्वेषु मानवेषु आत्यन्तिकरूपेण तिष्ठन्ती सत्ता एकैवेति शङ्कराचार्यस्वामिना स्वस्य ग्रन्थैः, वादप्रतिवादैः च

* Assistant Professor, Department of Languages & Linguistic School, Chinmaya Vidyapeeth, Ernakulam, Kerala

स्थापिता। तदा एव शङ्करवेदान्तयुगस्य उत्पत्तिः समजायत।

स्वस्य स्वत्वं नष्टीभूय अनश्वरं आत्यन्तिकं च परं ब्रह्म एव अवशिष्यते इति अनुभूतिः स्वयं अनुभूतवान् मन्सूर्हल्लाज् इति सूफिवर्यः शङ्कराचार्यस्य तत्त्वमसि इति अनुभववाक्यं एव अनल्हख् इति प्रख्यापनेन स्थापयितुं परिश्रमं कृतवान्। अत्रैव एतत् तत्त्वचिन्ताद्वयं (अद्वैतं, सूफिसं च) बाह्याचारानुष्ठानैः विभिन्नतायाः अधित्यकायां स्थितमपि आन्तर्दर्शनविषये समानतायाः समतलं सृजति।

सूफिवर्याणां दार्शनिकचिन्तासु केचन सिद्धान्ताः, भारतीयानां संस्कारैः तत्त्वचिन्ताभिः च सह साम्यं वहन्ति। सूफिसिद्धान्तेषु पेर्ष्यन् संस्कारः प्राधान्येन द्रष्टुं शक्नुमः। आर्यसंस्कारसम्पन्नयुक्तस्य सौराष्ट्रधर्मस्य परिणतरूप एव पेर्ष्यन् संस्कारः। अत एव भक्तेः अद्वैतस्य च समन्वयं सूफिसिद्धान्ते प्रकटरूपेण दृश्यते।

सूफिसिद्धान्त कश्चिदनुभवः

इस्लामिकदार्शनिकधारायाः विकसितं मनोहरं च पाटलपुष्पं भवति सूफिसिद्धान्तः। सूफिपण्डिताः (सूफिसिद्धान्तिनः) अल्लाहोः सुहृदः (मित्राणि) इति चरित्रकाराणां अभिप्रायोऽस्ति।

कम्बलं इत्यर्थे प्रयुक्तवान् सूफ् इति पदात् एव सूफि इति पदं संजातम्। आत्मनियन्त्रणस्य चिह्नं इति रूपेण प्राथमिककाले सूफिवर्याः कम्बलमेव धरन्ति स्म। अत एव सूफिः इति नाम संजातम् इति अभिप्रायोऽपि अस्ति।

निगूढता, निगूढज्ञानी इत्यादिषु अर्थेषु प्रयुज्यमानस्य तसभुव् इति पदस्य समानार्थपदं भवति सूफिसम्। परम्परागतरीतेः विभिन्ना दार्शनिकता एव सूफिषु (सूफिपण्डितेषु) द्रष्टुं शक्नुमः। ईश्वरः मनुष्यमनसु एव द्रष्टव्यः, न स्वर्गे इति सूफिनां अभिप्रायः। परितः प्रसार्यमाणः ईश्वरानुभवः तथा ध्यानं च एव सूफिपण्डिताः अङ्गीकुर्वन्ति। अत एव ईश्वरस्नेहेन युक्ताः आचाररीतयः देशकालरीतीनां अनुरूपमेव सूफिपण्डिताः समानतां वहन्ति।

प्रवाचकात् मुहम्मद आरभ्य अलिं प्रति ताभ्यां द्वाभ्यां हसन्वस्वारिं प्ति, तेभ्यः अबुहाशिं प्रति च सूफिधारा प्रसृता इति इतिहासकारैः (चरित्रकारैः) समर्थ्यते। किञ्चइमांमलिक्, राम्पिया–अल्अदविया जुनैद् बाग्दादि इमांगसलि रूमि ओमर्खय्याम् कबीर इत्यादयः सूफिवर्याः च तेषां जीवनकाले सूफिसिद्धान्तानां अभिवृद्धये प्रयत्नं कृतवन्तः आसन्।

अद्वैतं नाम अमृतम्

अद्वैतदर्शनं जीवब्रह्मैक्यम् इति सिद्धान्तमेव अवतारयति। वर्णाश्रमधर्माणां दुर्व्याख्यानं कृत्वा धर्मस्य नामनि मनुष्यैः एव अधः कृतानां मनुष्याणां समूहे एव स्थित्वा शङ्कराचार्यः अद्वैतदर्शनं अवतारितवान्। एतत् दर्शनं तु वेदरूपात् क्षीरसमुद्रात् मथनं कृत्वा लब्धं अमृतं आसीत्। किञ्च एतत् वेदेषु गुप्तरूपेण संरक्षितं चासीत्। एतादृशं अमूल्यं अनर्घं च अद्वैतदर्शनं आचार्यस्वामिनः कालस्य परिणामानुसारं अवतारितवान् व्यवस्थापितवान् च।

यदा प्रपञ्चवस्तूनि सूक्ष्मरूपेण विशकलनं करोति तदा तानि सर्वाणि ब्रह्मणः मायाकल्पिताः अवस्थाभेदाः एव इति अद्वैतदर्शनं व्यक्ततया प्रतिपादयति। देशकालविच्छिन्नम् निरूपाधिकं सच्चिदानन्दस्वरूपं एव ब्रह्मतत्त्वम्। यावत् तस्य अप्रमेयप्रभावः अनुभूतः भवति तावत् द्वैतभावः स्थीयते। शरीरेण तादात्म्यभावात् अनेकधा ज्ञायमानेषु जीवजालेषु सूक्ष्मकीटात् प्रभृति महानुभावमानवपर्यन्तं सर्वेषु दृश्यमानं (स्फुरत्) तत्त्वं तस्मात् (मानवात्) अभिन्नं नेति, तथा तत् तत्त्वं ब्रह्मसाक्षात्कारेण अनुभूयमानं भविष्यति इति च शङ्कराचार्यः अद्वैतदर्शनेन स्थापितवान्।

अद्वैतं सूफिसं च समानधारायाम् यद्यपि स्थूलानि आचारानुष्ठानानि विभिन्नसांस्कारिकतले उत्भूतानि तथापि सूक्ष्मरूपेण निरीक्ष्यते चेत् तेषां धाराः प्रवाहाः एकस्मात् सूक्ष्मत्वात् एव उत्भूताः इति द्रष्टुं शक्नुमः।

अत एव येशुदेवेन (क्रिस्तुदेवेन) तथा कबीर्महाशयेन च समानतया उक्तं, यत् ईश्वरहृदये एव तिष्ठति इति। स्थूलतायाः (स्थूलात्) सूक्ष्मतां प्रति सञ्चरन् व्यक्तिः एव सूफिवर्यः संजायते। तावता कालेन सतायं इति चिन्तितं सर्वं (किमपि) सत्यं न इति प्रबुद्धता (बोध्यम्) एव सूफिवर्याणां सञ्चारपथं नयति। परमसत्तारूपं एकसत्यं अनुभवेन ज्ञातवन्तः सूफिवर्याः स्वेषां सञ्चारपथे कालेषु देशेषु च द्रष्टुं साधुभूतं सर्वं स्वायत्तीकृतवन्तः। अत एव अद्वैतदर्शनमपि ते स्वीकृतवन्तः इति विषये न सन्देहः।

भक्तेः उत्कृष्टं ईश्वराधिष्ठितं प्रणयम् इति अनुभूतिरूपेण जलालुद्दीन् रूमिमहाशयः स्वस्य मस्नवि इति रचनायां इश्वे इवाहि इति उद्घोषितवान्। ईश्वरे प्रणेयेन द्वैतभावं त्यक्त्वा एकतां अनुभवेन साक्षात्कर्तुं रूमि महाशयः स्वजीवितं ईश्वरे समर्पयामास। सूफिचिन्तामार्गः एव रूमिमहाशयस्य इदं तत्त्वं प्रति चिन्तितुं प्रेरणादायकः अभवत्।

युक्तिचिन्ता भक्तिभावे विलयं प्राप्य समर्पणस्य भूमिकां प्रविष्ठमाना अवस्था एव अत्र रूमिमहाशये द्रष्टुं शक्नुमः।

वहदत्तुल् वुजुद् हुलूल् इत्तिहाद् इति तिस्रः संज्ञाः साधारणतया अद्वैतवेदान्तस्य सूफिचिन्ताधारायाः च समानाशयाः इति अवगन्तुं शक्नुमः। केवलं परमस्वत्वं एव कालदेशापरिछिन्नशासावतरूपेण स्थीयते इत्यनेन, अपरं सर्वमपि तेन स्वत्वेन योजयित्वा यदि पश्यति चेत् असतः (असत्वस्य) समानम् इति दर्शनमेव वहदत्तुल् वुजुद् इति नाम्ना ज्ञायते। अनादिरूपं ईश्वरास्तित्वं पूर्णचन्द्रेण उपमीयते। तत् दर्शनं बहुक्रोशदूरात् यदा वयं दृष्ट्या साक्षात्कुर्मः तदा सूक्ष्मरूपेण अनुभवति च। वस्तुतः तस्य परिणामः न सम्भवति। तादृशपरमसत्तायाः सत्त्वं एव सर्वचराचराणां सृष्टेः कारणभूतं जायते। यदि पात्रे स्थिते जले मषिः पतति चेत् मषेः सविशेषास्तित्वं नास्ति। जले सर्वत्र मषिः व्याप्नोति। वस्तुतः सृष्टिकर्तुः सृष्टिकर्मणः प्रकटनेन सह प्रपञ्चस्य अस्तित्वं च स्थीयते इति सारः। एतदेव अद्वैतसिद्धान्ते ब्रह्म सत्यं, जगन्मिथ्या जीवो ब्रह्मैव नापरः इति शङ्करवचनम्।

अत्र आचार्यस्वामिनः (शङ्कराचार्यः) प्रपञ्चस्य नश्वरतामेव निभावनं करोति। तदा सैद्धान्तिकतया वह्दत्तूल् वुजुद् अद्वैदसिद्धान्ते परामृष्टां (विशदीकृताम्) प्रकृतिनश्वरतामेव अनुगच्छति। अस्य नश्वरप्रपञ्चस्य मायिकतां अवगन्तुं सूफिवर्याणां मार्गः हखीखत् इत्यपि ज्ञायते।

स्वसृष्टिं प्रति ईश्वरस्य अवरोहणम् इति भावना हुलूल् इति नाम्ना सूफिवर्यैः कथ्यते। ईश्वरः जीवात्मरूपेण अस्माकं शरीरस्यान्तः प्रत्यक्षी भवति इति, किञ्च तस्य तत्त्वस्य (ईश्वरतत्त्वस्य) ज्ञानमेव मुक्तिमार्गः इति च अद्वैतवेदान्तिनः अङ्गीकुर्वन्ति। एवं सूफिवर्याः अपि ईश्वरस्य प्राणिशरीरान्तप्रवेशनरूपां (मनुष्यशरीरान्तः प्रवेशनम्) भावनां अवतारयन्ति। अत्रापि अद्वैतवेदान्तस्य सूफिसिद्धान्तस्य च समानतां द्रष्टुं शक्नुमः।

ईश्वरस्य मनुष्यस्य च एकीभावः एव इत्तिहाद् इति संज्ञया सूफिपण्डिताः सूचयन्ति। अत्रापि अद्वैतवेदान्तिनां जीवब्रह्मैक्यतत्त्वस्य छायां द्रष्टुं शक्नुमः।

अद्वैतवेदान्तः वह्दत्तुल् वुजुद् च आशयपरतया एक एव इति विभिन्न इति च अभिप्रायद्वयं (मतद्वयं) अस्ति। दार्शनिकेषु अयं विषयः गवेषणाय मार्गः च भवति। तथापि अद्वैतवेदान्तिनां सूफिपण्डितानां च सगुणोपासनाः केवलं परत्वं (परमतत्त्वं) प्रति मार्गः एव इति तेषां दर्शनपन्थानं वीक्ष्य अवगन्तुं शक्नुमः। सूफिपरिषत्सु संचाल्यमानाः दिक् रवः उपासनारीतयः च अस्य उदाहरणत्वेन वक्तुं शक्नुमः।

ईश्वरस्य याथार्थ्यं (दैविकयाथार्थ्यं) अन्विष्य सूफिवर्याणां गवेषणं प्रति मौलाना जलालुद्दीन् रूमि महाशयः एवं वदति –मार्गदार्शिका वर्तिका भवति अनुशासनानि, एतां वर्तिकां विना यात्रा असाध्या तथा एषा (एतादृशी) यात्रा एव त्वरिखत् इतिज् ज्ञायते। यदा परमसत्तायाः अनुभूतिः जायते तदा यात्रा पर्यवस्यति। सा अवस्था एव हखीखत्। अत्र शरियत् शासनानां प्राधान्यं नास्ति। अयं (हखीखत्) कश्चित् मार्गः। अस्मात् मार्गात् अनेके उपमार्गाः संजाताः। एते उपमार्गाः विविधसंस्कारेषु विविधरूपेषु संजाताः। किन्तु सर्वेषां मार्गाणां अन्तर्धारा केवलं परमसत्तायां लयनमेव इति चिन्तयामः।

अद्वैतवेदान्ते अपि कर्माणि, सगुणोपासनां च तत्त्वशुद्धये मार्गरूपेण स्वीकुर्वन्ति। एतैः (एतादृशैः) मार्गैः यदा चित्तशुद्धिः प्राप्यते तदा त्वरीखत् इव उपासनाः अप्रधानाः भविष्यन्ति। तथापि साधारणजनेषु अद्वैतं भक्तिमार्गः एव। अत एव शङ्कराचार्यैः सौन्दर्यलहरीत्यादीनि अनेकानि भक्तिसूक्तानि रचितानि। गिबरिसं समाधिः च।

सूफितत्त्वचिन्तायां गिबरिष् इति कश्चित् संप्रदायोऽस्ति। गिबर् इति नाम्ना सूफिवर्येण आविष्कृतत्वात् एव गिबरिसं इति नाम संजातम्। सूफिपण्डिताः सविशेषरीत्या स्वेषां आराध्यदेवस्य नामानि प्रार्थयन्ति। योगात्मकरीत्या मनः ध्यानमग्नं कुर्वन्ति इत्येव सारीतिः। तादृशरीत्या एव समाधेः तलं प्राप्नोति। सर्वमपि समावस्थायाम् इति स्थितिः खलु समाधिः। यथार्थतत्त्वे विलयं प्राप्नोति इति अवस्था एव समाधिः इति शब्देन विवक्षते। एतादृशरीत्या यथार्थतत्त्वे निलयं प्राप्तुं

मार्गः एव गिबरिस् इति कथ्यते। गिबरिसे निर्विकल्पसमाधेः रहस्यं गुप्तं (गोपनं कृतम्) भवति। यदा वयं अर्थयुक्तानां नामानां उच्चारणं कृत्वा भजनं कुर्मः तदा मनसि सर्वत्र ईश्वरस्वरूपं प्रसरति। तादृशी अवस्था एव सविकल्पकसमाधिः। सविकल्पकसमाधेः अनन्तरदशा भवति निर्विकल्पसमाधिः। तस्यां अवस्थायां मनः रूपं च विहाय निर्गुणावस्थायां मनोनाशस्य अवस्था संजायते। एषा अवस्था एव सूफिपण्डितैः फन इति अवस्थायां अनुभूयते। आध्यात्मिकचिन्तायां निमग्नाः भूत्वा दिव्यप्रेम्णि निलयं प्राप्य असदवस्थायां ब्रह्मप्राप्तिः अथवा मोक्षः संभवति। मोक्षप्राप्तये एव सूफिपण्डिताः गिवरिसं स्वीकुर्वन्ति। अस्यां अवस्थायामेव अनल् हरव् ब्रह्मास्मि च अनुभूयते।

समूहे चिरप्रतिष्ठिताः भवितुं आरब्धाः चिन्तापद्धतयः अनेकाः समस्याः अभिमुखीकुर्वन्ति। तादृशाः समस्याः अद्वैतवेदान्ते सूफिसिद्धान्ते च द्रष्टुं शक्नुमः। साधारणजनानां मध्ये अद्वैतदर्शनं सूफिसिद्धान्तः च स्वीकार्यताविषये स्वधीनतायां च सामूहिकाङ्गीकरणरूपां समस्यां अभिमुखीकुरुतः एवं सत्यपि एकविंशति शताब्द्याः मुख्यधारापण्डिताः सूफिसं, अद्वैतं तथा उभयोः दर्शनयोः दार्शनिकाः आशयाः च कालात् पूर्वमेव सञ्चरन्तः आसन्निति अभिप्रायाः प्रसरन्ति। किञ्च द्वयोरपि सिद्धान्तयोः मानविकां स्वीकार्यतां च जनाः अङ्गीकुर्वन्ति। अस्मिन् लोके यदा यन्त्राणां मनुष्याणां च संकररूपाणि सैवोर्ष्यन् रूपाणि प्रबलानि संजायन्ते तदा मानवाः परस्परं मूलरूपेण एक एव इति मानविकतायाः मुद्राघटितं दर्शनद्वयं भवति सूफिसं तथा अद्वैतवेदान्तः च इति विषये न विवादः। द्विप्रकारयोः वेदनयोः सङ्कुचितं किञ्चित् स्थलं भवति आनन्तः इति प्रशस्तकविना सच्चिदानन्देन स्वस्य वृत्तम् इति कवितायां उक्तमस्ति। किन्तु तादृशस्य आनन्दस्य मानदण्डः कियान् इति निश्चिनोतुं तादृशं आनन्दं अनुभवन् मानवः एव (व्यक्तिः एव) शक्तः भवति।

अद्वैतिनः ब्रह्मज्ञानेन वैराग्येण च शमदमादीनां परिशीलनं कृत्वा आत्मसंस्कारस्य पथा (मार्गेण) आत्मसाक्षात्कारं लब्ध्वा आनन्दं अनुभवति। किन्तु सूफिवर्याः खप्वालिभिः सूफिनृत्तपदैः च भक्तिमार्गे विलयं प्राप्य स्वयं आनन्दं अनुभवति। सत्यस्य (परब्रह्मणः) अन्वेषणमेव द्वयोरपि लक्ष्यं इति विषये न विवादः। भिन्नमार्गेण अपि एकामेव आत्यन्तिकसत्तां अन्विष्य, प्राप्य परब्रह्मणि विलयं प्राप्ताः इव आनन्दमनुभवन्ति अद्वैतवेदान्तिनः सूफिवर्याः च। तादृशस्य आनन्दानुभवस्य सुखमेव अहं ब्रह्मास्मि इति चिन्तायाः आधारः।

सङ्केतः

अनल्हख् – अहमेव सत्यम्।

त्वरिखत् – मार्गः आत्मीयान्वेषणम्।

फना – विलयनम्, नाशनम्।

शरियत् – धार्मिकान्वेषणानुशासनम्।

इश्वे इवाहि – सर्वमपि मायिकम्।

सहायकग्रन्थाः

- मिस्टिसिसम् किञ्चित् आमुखम्, इहं हाषिं अकंबुक्स् कोषिक्कोट् – २०११
- सूफिसम् प्रणयस्य बीजम्, इहं हाषिं अकंबुक्स् कोषिक्कोट् – २०११
- शैख्हुज्विरि – सूफिसं तत्त्वं, प्रयोगः, चरित्रं च। ए. के. अब्दुल् मजिद्, विचारं बुक्स्, तृश्शूर् – २०१२
- मृगीयनिष्कलङ्कता कशचित् सूफिभावः, पि. अब्दुल् गर्फू, विज्ञानकैरली, ७–२०१३
- Ragstogi Islamic mysticism T.C., New Delhi, Sterting Publications, 1982
- Godlas, Sufi Ilhuminations, Vol.1.1996 August.
- Krishna P. Bahadur, Sufi mysticism, E S S Publications.
- John A Sbhan, Sufism its Saints and shrines, Cosmo Publications 1999.
- Al. Qushayri, Principles of Sufism , Cosmo Publications 1999.

———————

Shodh Navneet (International Peer-Reviewed Research Journal)
ISSN : 2321-6581, IIJ Impact Factor : 5.037, Vol. XIX, July - Dec. - 2022

धर्म एवं दर्शन : एक विश्लेषण

डॉ. अवधेश प्रताप सिंह*

शास्त्रों[१] में प्रतिपादित विभिन्न विचारों एवं सिद्धान्तों का केन्द्रबिन्दु 'लोकव्यवहार' होता है। इस लोकव्यवहार में हमें द्विविध सत्ताएं दृष्टिगोचर होती हैं – चेतन एवं अचेतन। इन दोनों के पारस्परिक समन्वय से ही समस्त जागतिक क्रियाकलापों का सञ्चालन होता है। चेतन सृष्टि को स्थूलता से मनुष्य एवं पशु, इन दो कोटियों में विभाजित किया जा सकता है। चेतन सृष्टि में मनुष्य श्रेष्ठ स्वीकार किया जाता है जिसका सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण कारण उसकी चेतना या ज्ञानशक्ति है। मनुष्य अपनी इसी ज्ञानशक्ति के उत्कर्ष से स्व के उत्थान का मार्ग प्रशस्त करता है। यदि हम मनुष्य और पशुओं के सामान्य एवं दैनन्दिन व्यवहार की तुलना करें तो यह पाते हैं कि उनका व्यवहार अनेक स्तरों पर एक जैसा होता है। आहार, निद्रा, मैथुन, भय आदि प्रवृत्तियाँ मनुष्यों एवं पशुओं में समान प्रकार से घटित और दृष्टिगोचर होती हैं।[२] शंकर के अनुसार व्युत्पन्न चित्त मनुष्यों का भी प्रमाण–प्रमेयादि व्यवहार पशुओं के तुल्य होता है।[३] ऐसी स्थिति में यह स्वाभाविक प्रश्न उपस्थित होता है कि वह कौन सा तत्त्व है जिसके कारण मनुष्य पशुओं से विभेदित होता है। भारतीय चिन्तन परम्परा में उस तत्त्व को 'धर्म' नाम से अभिहित किया गया है जिसको सम्यक्तया धारण कर लेने पर प्राणी श्रेष्ठत्व को प्राप्त कर लेता है। धर्म ही वह प्रवृत्ति है जो मनुष्य को मनुष्य बनने हेतु प्रेरित करती है; क्योंकि धर्म से हीन होने पर मनुष्य पशु तुल्य हो जाता है।

धर्म एक व्यापक अवधारणा है जिसमें मानव जीवन के विविध पक्षों का सन्तुलित समन्वय दृष्टिगोचर होता है। धर्म संस्कृत की धृञ् धारणे धातु से निष्पन्न होता है जिसका अर्थ है – धारण करना, आलम्बन देना, पालन करना (ध्रियते धार्यते वेति धर्मः)। महाभारत के 'धारणाद् धर्ममित्याहुः' इस वचन के अनुसार 'धर्म' वह है जो सबको धारण करता है, अधोगति में जाने से बचाता है और जीवन की रक्षा करता है।[४] धर्म हमारे जीवन को सन्तुलित रखता है। इस तरह धर्म प्राकृतिक नियम, कर्तव्य, नैतिकता और जीवन की गुणवत्ता आदि विविध अर्थों को समाहित करता है। नैतिक दृष्टि से क्या उचित है, क्या अनुचित है; क्या करणीय है, क्या अकरणीय है; इस पर विचार करना धर्म के अन्तर्गत आता है ।

भारतीय चिन्तन की विभिन्न शाखाओं एवं परम्पराओं में 'धर्म' शब्द के अनेक अर्थ हैं। वैदिक संहिताओं में 'ऋत' की अवधारणा प्राप्त होती है जो नैतिक विधियों और याज्ञिक क्रियाओं से सम्बन्धित है।[५] ऋग्वेद में विशेषण या संज्ञा के रूप में धर्म शब्द का उल्लेख प्राप्त होता है[६] तथा

* सहायक आचार्य, संस्कृत विभाग, दिल्ली विश्वविद्यालय, दिल्ली

इसका अभिप्राय 'विधियों, निश्चित नियमों तथा आचरण-नियमों' से लिया जाता है।[७] धार्मिक क्रियारूपी संस्कारों की क्रियमाणता से अर्जित होने वाले गुण के अर्थ में भी धर्म शब्द का प्रयोग हुआ है ।[८] यह 'ऋत' ही कालान्तर में धर्म के रूप में विस्तृत हो गया जिसका अभिप्राय जीवन की वह विधि है, जो नैतिक और सात्विक आचरण से सम्बद्ध है। छान्दोग्योपनिषद् के अनुसार धर्म के तीन स्कन्ध हैं - यज्ञ, अध्ययन और दान। जिसका अनुगमन करने से पुण्यलोक की प्राप्ति होती है।[९] **'आचारः परमो धर्मः'** इस वचन के अनुसार सम्यक् आचरण ही धर्म है।[१०] महाभारत के अनुसार आचार ही धर्म का लक्षण है। सज्जनों एवं महापुरुषों के द्वारा किया जाने वाला आचरण एवं उनका चरित्र धर्म के स्वरूप को व्याख्यायित करता है।[११] **'अहिंसा परमो धर्मः'** के अनुसार अहिंसा परम धर्म है।[१२]

दार्शनिक परम्परा का अनुशीलन करें तो हमें ज्ञात होता है कि न्यायदर्शन के अनुसार जो रहता है, धारित किया जाता है; वह धर्म है।[१३] वैशेषिक दर्शन के अनुसार **'यतोऽभ्युदयनिःश्रेयससिद्धिः स धर्मः'**[१४] अर्थात् जिससे अभ्युदय (लौकिक कल्याण) एवं निःश्रेयस (पारलौकिक कल्याण) की प्राप्ति होती है, वह धर्म है। पूर्वमीमांसा दर्शन के अनुसार धर्म वह निःश्रेयस है, जो स्वर्गादि शुभ फलों के कारणभूत यागादि कर्मों से उत्पन्न होता है। यागक्रिया के प्रवर्तक वाक्य भी धर्म हैं।[१५] योगदर्शन में चित्त की पञ्चभूमियों (क्षिप्त, मूढ़, विक्षिप्त, एकाग्र एवं निरुद्ध) में रहने वाले धर्म को समाधि कहते हैं। यहाँ चित्त के व्यापार को धर्म कहा गया है।[१६] जैनदर्शन में धर्म एवं अधर्म का एक विशिष्ट स्वरूप प्राप्त होता है जिसके अनुसार जीवों की गति में सहायक उदासीन द्रव्य को धर्म तथा स्थिति में सहायक उदासीन द्रव्य को अधर्म कहा जाता है। भारतीय परम्परा में जीवन के सर्वांगीण विकास के लिए पुरुषार्थ चतुष्टय का विचार प्रतिपादित किया गया है। इन पुरुषार्थों में 'धर्म' सर्वप्रथम एवं सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण है। यहाँ यह बताया गया है कि अन्य दो पुरुषार्थों अर्थ और काम को धर्म संवलित होना चाहिए। मूल रूप में धर्म कर्तव्यों की एक व्यवस्था की अभिव्यक्ति करता है, जिसमें व्यक्ति स्वयं ही अपने अन्तस् में आध्यात्मिक अनुभूति करता है तथा नैतिकता को जीवन में आचरित करता है। धर्म का सम्बन्ध मनुष्य के विश्वास, नैतिक आचरण, व्यवहार और उसकी आस्तिकता से है जिसमें मनुष्य का दैनन्दिन और सामाजिक जीवन नियन्त्रित और विकसित होता है।

मनुस्मृति में श्रुति, स्मृति, सदाचार एवं आत्मतुष्टि को धर्म के साक्षात् लक्षण कहा गया है।[१७] याज्ञवल्क्य ने श्रुति, स्मृति और सदाचार के साथ सम्यक् संकल्पजन्य इच्छा को धर्म के लक्षण रूप में स्वीकृत किया है।[१८] मनुस्मृति में ही धर्म के दश लक्षण ख्यापित किये गए हैं जिनका अनुपालन करके प्राणी अपने अस्तित्व की सार्थकता को बनाये रख सकते हैं -

धृतिः क्षमा दमोऽस्तेयं शौचमिन्द्रियनिग्रहः।
धीर्विद्या सत्यमक्रोधो दशकं धर्मलक्षणम्।।

(मनुस्मृति, २.९४)

भारतीय परम्परा में सामान्यधर्म, विशिष्टधर्म और आपद्धर्म के रूप से धर्म को विभेदित किया गया है। सत्य, तप, शुचिता, दया, त्याग, अहिंसा, शील, स्वाध्याय, सन्तोष, सेवा, संयम आदि मनुष्य के साधारण धर्म हैं। प्रत्येक मनुष्य को इन साधारण धर्मों का अनुपालन करना चाहिए। वर्ण-धर्म, आश्रम-धर्म, वर्णाश्रम-धर्म, गुण-धर्म, नैमित्तिक धर्म और साधारण धर्म, विशिष्ट धर्म के अन्तर्गत आते हैं।[१९] ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य एवं शूद्र इन चार वर्णों के लिए भिन्न-भिन्न कर्त्तव्यों एवं नियमों का प्रतिपादन किया गया है, जिन्हें 'वर्ण-धर्म' कहा जाता है। यथा- ब्राह्मण का कर्त्तव्य - अध्ययन, अध्यापन, यजन, याजन, दान और प्रतिग्रह , क्षत्रिय का कर्त्तव्य है - प्रजारक्षण, दान, इज्या, अध्ययन एवं विषयों में अनासक्ति, वैश्य का कर्त्तव्य है- पशुरक्षण, इज्या, दान, अध्ययन, वाणिज्य एवं कुसीद तथा शूद्र का कर्त्तव्य है - सेवा करना। ब्रह्मचर्य, गृहस्थ, वानप्रस्थ एवं संन्यास इन चतुर्विध आश्रमों में पालन किये जाने वाले धर्म ही 'आश्रम-धर्म' कहलाता है। यज्ञ में ब्राह्मण पालाश का दण्ड धारण करे, इस प्रकार का निर्देश 'वर्णाश्रम-धर्म', राजा के द्वारा प्रजापालन को 'गुणधर्म', शास्त्रविहित कर्मों का आचरण न किये जाने पर विहित प्रायश्चित्त कर्म को 'निमित्त कर्म' तथा सत्य, अहिंसादि को 'साधारण धर्म' कहा जाता है। इसके अतिरिक्त कुल-धर्म, युग-धर्म,[२०] राज-धर्म तथा स्वधर्म[२१] इत्यादि को भी विशिष्ट धर्म की कोटि में रखा जाता है। विपत्ति एवं जीवन में प्रतिकूल परिस्थितियों के उत्पन्न होने पर मनुष्य स्ववर्ण से भिन्न वर्ण के धर्म को अपना सकता है, जिसे 'आपद्धर्म' कहा जाता है।

दर्शन शब्द 'दृश् दर्शने' धातु से करणार्थक 'ल्युट्' प्रत्यय करके निष्पन्न होता है, जिसका व्युत्पत्तिलभ्य अर्थ है - 'दृश्यते अनेन इति दर्शनम्' अर्थात् जिसके द्वारा देखा जाए, वही दर्शन है। दर्शन शब्द का यही रूढ़ अर्थ गृहीत करने पर चूँकि मानव चक्षु की सहायता से बाह्य पदार्थों को देखता है, इसलिए केवल चक्षुरिन्द्रिय ही दर्शन कहलाएगी तथा केवल उससे ग्राह्य विषय ही दार्शनिक विश्लेषण की परिधि में स्वीकृत हो पाएंगे। इसीलिए दर्शन शब्द की एक भिन्न व्युत्पत्ति 'दृशिर प्रेक्षणे' धातु से करण अर्थ में 'ल्युट् प्रत्यय' तथा भाव अर्थ में 'घञ् प्रत्यय' करके 'दृश्यतेऽनेन इति दर्शनम्' तथा 'दृश्यते इति दर्शनम्' इस रूप से की जाती है। 'प्रेक्षण' का अर्थ है- विचार करना। अतः इस व्युत्पत्ति के अनुसार विचार करने के सभी साधन तथा विचार क्रिया के समस्त विषय दर्शन के क्षेत्र में समाविष्ट हो जाते हैं। वस्तु के मिथ्यात्व का परिहार करते हुए उसके यथार्थ स्वरूप को जानना ही वस्तुतः दर्शन है।

जब हम दर्शन का सामान्य अर्थ 'देखना' या विशिष्ट अर्थ 'विचार करना' गृहीत कर लेते हैं तो हमारे समक्ष तीन महत्त्वपूर्ण प्रश्न उपस्थित होते हैं - क्यों देखना है? क्या देखना है? तथा कैसे देखना है? प्रथम प्रश्न का उत्तर दर्शन के प्रयोजन को उद्घाटित करता है। व्यवहार में प्रत्येक प्राणी को सुख एवं दुःख का अनुभव होता है। यह सार्वजनीन अनुभव है कि संसार का प्रत्येक प्राणी सर्वदा सुख की कामना करता है और दुःखों से दूर रहना चाहता है। एतदर्थ वह सुख एवं सुख के साधनों की प्राप्ति हेतु सन्नद्ध रहता है। सुखों की उपलब्धि होने पर हम अनुभव करते हैं कि

समस्त सांसारिक सुख केवल क्षणिक हैं, कोई भी सुख अधिक समय विद्यमान नहीं रहता है। ऐसी स्थिति में यह जिज्ञासा होती है कि क्या ऐसा कोई सुख है जो आत्यन्तिक है तथा दुःख के आत्यन्तिक अभाव वाला है। भारतीय दर्शन में इस अवस्था को मुक्ति, मोक्ष, कैवल्य, निर्वाण आदि के रूप में भिन्न प्रकार से विभिन्न भारतीय दर्शनों नें व्याख्यायित किया है। द्वितीय प्रश्न 'क्या देखना है?' का उत्तर भी विभिन्न दार्शनिक परम्पराओं में अलग-अलग दिया गया है। न्यायदर्शन के अनुसार षोडश तत्त्वों का ज्ञान करना है, वैशेषिक दर्शन के अनुसार सप्त पदार्थों का ज्ञान करना है, सांख्य-योग के अनुसार प्रकृति-पुरुष का विवेकज्ञान करना है, पूर्वमीमांसा के अनुसार यागादि क्रिया का बोध तथा वेदान्त के अनुसार ब्रह्म का साक्षात्कार करना है। बौद्ध एवं जैन दर्शन में भी तत्त्वज्ञान के उद्देश्य को स्वीकृत किया गया है। स्थूलता से विचार करने पर हमें इनमें मतभेद दिखाई देता है, किन्तु यदि हम सूक्ष्मता से विचार करें तो यह ज्ञात होता है कि यह समस्त तत्त्वज्ञान एवं बोध 'चेतना' को केन्द्र में रखता है जिसे सामान्य रूप से 'आत्मा' भी कहा जाता है। अतः 'आत्मा' ही एकमात्र जानने योग्य है जैसा कि उपनिषद् का कथन है - **''आत्मा वाऽरे द्रष्टव्यः श्रोतव्यः मन्तव्यो निदिध्यासितव्यो मैत्रेयि, आत्मनि खल्वरे दृष्टे श्रुते मते विज्ञात इदं सर्वं विदितम्।''**[२२]

तृतीय प्रश्न 'कैसे देखा जाय?' का उत्तर भी विभिन्न दार्शनिकों के द्वारा भिन्न-भिन्न प्रकार से दिया गया है। सांख्य दर्शन में त्रिविध दुःखों की आत्यन्तिक एवं ऐकान्तिक निवृत्तिस्वरूप 'कैवल्य' की प्राप्ति के लिए प्रकृति-पुरुष का विवेकज्ञान (विवेकख्याति/सत्त्वपुरुषान्याख्याति) मुमुक्षु के लिए विहित किया गया है।[२३] योग दर्शन के अनुसार कैवल्य की प्राप्ति चित्तवृत्ति के निरोध से होती है।[२४] योग चित्त की वृत्तियों (प्रमाण, विपर्यय, विकल्प, निद्रा, स्मृति) का निरोध है तथा इनके निरोध का साधन अभ्यास और वैराग्य हैं। न्याय दर्शन में षोडश पदार्थों के तत्त्वज्ञान से निःश्रेयस् की प्राप्ति को प्रतिपादित किया गया है।[२५] वैशेषिक दर्शन के अनुसार द्रव्य, गुण, कर्म, सामान्य, विशेष, समवाय, अभाव इन सप्त पदार्थों के साधर्म्य-वैधर्म्य ज्ञान से अपवर्ग की सिद्धि होती है। पूर्वमीमांसा दर्शन में वैदिक यागादि से जन्य अपूर्व के द्वारा परमलक्ष्य स्वर्ग की प्राप्ति का विधान है। वेदान्त दर्शन में परम लक्ष्य के रूप में मुक्ति को स्वीकार किया गया है तथा इनकी मुक्ति का स्वरूप ब्रह्मसाक्षात्कार, ब्रह्ममय या आनन्दमय हो जाना है। चार्वाक मत संसार में ही प्राप्त हो सकने वाले भौतिक सुख, समृद्धि एवं उससे प्राप्त होने वाले आनन्द को ही मोक्ष के रूप में स्वीकार करता है, जिसके लिए मनुष्य का प्रत्यक्ष व्यवहार ही साधन है। जैन दर्शन में सात पदार्थों (जीव, अजीव, आश्रव, संवर, बन्ध, निर्जरा एवं मोक्ष) का त्रिरत्नों (सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान एवं सम्यक्चारित्र) के आचरण से सिद्धि प्राप्त करने का विधान है। इस प्रक्रिया से जीव के समस्त कर्मों का आत्यन्तिक क्षय हो जाने पर 'मोक्ष' की प्राप्ति हो जाती है। बौद्ध दर्शन में परम लक्ष्य 'निर्वाण' को 'आर्याष्टांगिक मार्ग' (सम्यक् दृष्टि, सम्यक् संकल्प, सम्यक् वाक्, सम्यक् कर्मान्त, सम्यक् आजीव, सम्यक् व्यायाम, सम्यक् स्मृति एवं सम्यक् समाधि) के अनुगमन एवं अनुसरण

से प्राप्त किया जाता है।

यद्यपि भारतीय दर्शन की विचार प्रविधि में वैषम्य की प्रतीति होती है तथापि इनमें एक सार्वभौमिक सम्बन्ध एवं समन्वय विद्यमान है। इस समन्वय को इंगित करने वाला प्रथम कारक है– 'व्यावहारिकता'। सभी भारतीय दर्शन मानव के वर्तमान जीवन से सम्बन्धित समस्याओं का विश्लेषण करते हैं तथा उनसे मुक्त होने का मार्ग प्रदर्शित करते हैं। द्वितीय कारक है – 'लक्ष्य की एकता'। समस्त भारतीय दर्शनों का परमलक्ष्य अन्ततः एक ही है और वह है – 'जागतिक दुःख की निवृत्ति'। विशुद्ध भौतिकतावादी चार्वाक से लेकर पराप्रत्ययवादी विज्ञानवाद तक सभी दार्शनिक सम्प्रदायों का प्रधान लक्ष्य है मनुष्य को अनुभूत होने वाले दुःखों से सर्वथा एवं सर्वदा निवृत्ति। यद्यपि इस दुःखनिवृत्ति का उपाय प्रत्येक दर्शन में पृथक्–पृथक् निरूपित किया गया है, किन्तु सभी दार्शनिक इस बात से सहमत हैं कि उनका प्रधान लक्ष्य मानव जीवन के दुखों की निवृत्ति ही है।

तृतीय कारक है – 'अविद्या से बन्धन एवं तत्त्वज्ञान से मुक्तिलाभ'। प्रायः सभी भारतीय दर्शन यह मानते हैं कि मनुष्य के समस्त दुखों का मूलकारण अविद्या या अज्ञान है। अविद्या को भारतीय चिन्तन परम्परा में क्लेशरूप कहा गया है जिसके कारण ही मनुष्य तत्त्व के वास्तविक स्वरूप को पहचान नहीं पाता है तथा कर्म, कर्मसंस्कार एवं कर्मफल के बन्धन में उलझकर विभिन्न योनियों में संसरण करता रहता है। तत्त्व के यथार्थज्ञान से अज्ञान की निवृत्ति होती है एवं मनुष्य संसरण को पार करके मुक्ति को अनुभूत कर लेता है। चतुर्थ कारक है – आचारमीमांसा का प्रतिपादन। प्रत्येक दर्शन में तत्त्वमीमांसा एवं ज्ञानमीमांसा के साथ आचारमीमांसा को अत्यन्त महत्त्वपूर्ण स्थान दिया गया है। वस्तुतः दर्शन का प्रयोजन ही मानव का नैतिक उत्थान है, जिसके लिए कर्मसिद्धान्त एवं अन्य साधना पद्धतियों का सूक्ष्म विश्लेषण हमें प्रत्येक भारतीय दर्शन में प्राप्त होता है। प्रायः सभी भारतीय दर्शनों में तत्त्वमीमांसा एवं प्रमाणमीमांसा का एक सूक्ष्म भेद तो प्राप्त होता है, परन्तु यह भेद वास्तविक न होकर प्रातिभासिक ही है, क्योंकि सभी दर्शनों का परम लक्ष्य मानव का कल्याण मात्र है।[२६]

इस प्रकार 'धर्म' प्राकृतिक नियम, कर्त्तव्य, नैतिकता, जीवन की गुणवत्ता आदि विभिन्न सम्प्रत्ययों को परिभाषित करने वाला तत्त्व है तथा जीवन के सभी पक्षों को अपने भीतर समेटता है। धर्म की एक विशेषता यह है कि यह योजित करता है जिससे सह–अस्तित्व की अवधारणा उद्भावित होती है। जीवन में समत्व की स्थिति अत्यन्त महत्त्वपूर्ण है। धर्म का आशय समत्व की स्थिति से भी है जिसे भगवद्गीता में योग तथा स्थितप्रज्ञता कहा गया है। अपने स्वरूप का परिष्कार करना ही 'धर्म' को धारण करना है। 'दर्शन' में मानव के व्यावहारिक जीवन को विश्लेषित करते हुए एक विशिष्ट विचार प्रक्रिया द्वारा दुःखों से निवृत्ति का मार्ग प्रदर्शित किया जाता है। धर्म एवं दर्शन दोनों का प्रयोजन एक ही है; धर्म आचरण का तथा दर्शन विचार का प्रतिनिधित्व करता है एवं दोनों समन्वित रूप से मानव के कल्याण का पथ प्रदर्शित करते हैं। धर्म एवं दर्शन में निहित

मूलभूत तत्त्वों का अनुपालन करके मनुष्य अपना समग्र विकास (भौतिक एवं आध्यात्मिक दोनों) कर सकता है, समाज एवं राष्ट्र के अभ्युथान में अपना योगदान कर सकता है तथा आधुनिक वैश्विक समस्याओं का समाधान कर सकता है। इस तरह धर्म एवं दर्शन एक बहुव्यापक अवधारणा है जिसके मूल निहितार्थ को समझने, उसे नूतन दृष्टि से विवेचित करने तथा उसके सम्यक् अनुपालन किये जाने की महती आवश्यकता है।

सन्दर्भ

१. प्रवृत्तिर्वा निवृत्तिर्वा नित्येन कृतकेन वा।
पुंसां येनोपदिश्येत तच्छास्त्रमभिधीयते।। पातञ्जलयोगदर्शनम्, (व्या.) सुरेशचन्द्र श्रीवास्तव, पृष्ठ ३

२. आहार निद्रा भय मैथुनं च सामान्यमेतत् पशुभिर्नराणाम्।
धर्मो हि तेषामधिको विशेषः धर्मेण हीनाः पशुभिः समानाः।। (उद्धृत), गीता रहस्य, पृष्ठ ६३

३. पश्वादिभिश्चाविशेषात् यथा हि पश्वादयः शब्दादिभिः ..... अतः समानः पश्वादिभिः पुरुषाणां प्रमाणप्रमेयव्यवहारः। ब्रह्मसूत्रशारीरकभाष्यम्, अध्यासभाष्य।

४. धारणाद् धर्ममित्याहु धर्मेण विधृताः प्रजाः।
यः स्याद् धारणसंयुक्तः स धर्म इति निश्चयः।। महाभारत, शान्तिपर्व, १०९.११

५. वयमिन्द्र त्वायवः सखित्वमा रभामहे।
ऋतस्य नः पथा नयाति विश्वानि दुरिता नभन्तामन्यकेषां ज्याका अधि धन्वसु।। ऋग्वेद, १०.१३३.६

६. पितुं न स्तोषं महो धर्माणं तविषीम्। ऋग्वेद, १.१८७.१

७. (अ) आ प्रा रजांसि दिव्यानि पार्थिवा श्लोकं देवः कृणुते स्वाय धर्मणे। ऋग्वेद, ४.५३.३
(आ) धर्मणा मित्रावरुणा विपश्चिता व्रता रक्षेथे असुरस्य मायया। ऋग्वेद, ५.६३.७

८. ऋतं सत्यं तपो राष्ट्रं श्रमो धर्मश्च कर्म च।
भूतं भविष्यदुच्छिष्टे वीर्यं लक्ष्मीर्बलं भजे।। अथर्ववेद, ९.९.१७

९. त्रयो धर्मस्कन्धा यज्ञोऽध्ययनं दानमिति प्रथमः। तप एव द्वितीयः। ब्रह्मचार्याकुलवासी, तृतीयोऽत्यन्तमात्मानमाचार्यकुलेऽवसादयन्। सर्व एते पुण्यलोकाभवन्ति। छान्दोग्योपनिषद्, २.२३.१

१०. आचारः परमो धर्मः श्रुत्युक्तः स्मार्त एव च।
तस्मादस्मिन्सदा युक्तो नित्यं स्यादात्वान्द्विजः।। मनुस्मृति, १.१०८

११. आचारलक्षणो धर्मः सन्तश्चारित्रलक्षणः।
साधूनां च यथा वृत्तमेतदाचारलक्षणम्।। महाभारत, अनुशासनपर्व, ५४.९

१२. यः स्यादहिंसासंयुक्तः स धर्म इति निश्चयः।
अहिंसार्थाय भूतानां धर्मप्रवचनम् कृतम्।। महाभारत, शान्तिपर्व, १०९.५८

१३. धर्मः ध्रियते तिष्ठति वर्तते यः स धर्मः। आकाशादिकं विना सर्वे एव पदार्थाः यत्र कुत्रचिदपि वर्तन्त इति सर्व एव धर्मा इत्युच्यन्ते। यत्र यः वर्तते स तस्य धर्मः। नव्यन्यायभाषाप्रदीप, ग्रन्थ १

१४. वैशेषिकसूत्र, १.१.२

१५. चोदनालक्षणोऽर्थो धर्मः। मीमांसासूत्र, १.१.२

१६. योगः समाधिः, स च सार्वभौमश्चित्तस्य धर्मः। योगसूत्रव्यासभाष्य, १.१

१७. वेदोऽखिलो धर्ममूलं स्मृतिशीले च तद्विदाम्। आचारश्चैव साधूनामात्मनस्तुष्टिरेव च।।
वेदः स्मृतिः सदाचारः स्वस्य च प्रियमात्मनः। एतच्चतुर्विधं प्राहुः साक्षाद्धर्मस्य लक्षणम्।। मनुस्मृति, २.६,१२

१८. श्रुतिः स्मृतिः सदाचारः स्वस्य च प्रियमात्मनः।
सम्यक् संकल्पजः कामो धर्ममूलमिदं स्मृतम्।। याज्ञवल्क्यस्मृति, १.७

१९. धर्मशब्दः षडविधस्मार्तधर्मविषयः। तद्यवा वर्णधर्मः आश्रमधर्मः वर्णाश्रमधर्मः गुणधर्मः निमित्तधर्मः साधारणधर्मश्चेति। याज्ञवल्क्यस्मृति (मिताक्षरा), १.१

२०. तपः परं कृतयुगे त्रेतायां ज्ञानमुच्यते।
द्वापरे यज्ञमेवाहर्दानमेकं कलौ युगे।। मनुस्मृति, १.८६

२१. श्रेयान्स्वधर्मो विगुणः परधर्मात्स्वनुष्ठितात्।
स्वधर्मे निधनं श्रेयः परधर्मो भयावहः।। गीता, ३.३५

२२. बृहदारण्यकोपनिषद्, ४.५.६

२३. सांख्यकारिका, २

२४. योगसूत्र, १.२

२५. न्यायसूत्र, १.१.१

२६. रुचीनां वैचित्र्यात् ऋजुकुटिलनानापथजुषाम्।
नृणामेको गम्यस्त्वमसि पयसामर्णव इव।। शिवमहिम्नस्त्रोत, ७

———————

Shodh Navneet (International Peer-Reviewed Research Journal)
ISSN : 2321-6581, IIJ Impact Factor : 5.037, Vol. XIX, July - Dec. - 2022

रघुवंशमहाकाव्य में प्रतिबिम्बित भारतीय संस्कृति के तत्त्व

डॉ. मुकेश कुमार गुप्ता*

संस्कृति

मानव समाज की जो सुन्दरतम् कृतियाँ हैं उनका समुच्चय रूप ही संस्कृति शब्द से अभिहित होता है। ये कृतियाँ पीढ़ी दर पीढ़ी उस समाज को पोषित करती हैं और स्वयं भी पोषित होती हैं। संस्कृति शब्द 'सम्' उपसर्ग पूर्वक 'कृ' धातु से निष्पन्न है। जिसका शाब्दिक अर्थ होता है – परिष्कृत या परिमार्जित कृति या कार्य। अतः किसी समाज द्वारा निरन्तर अर्जित किये जाने वाले परिमार्जित आचार-विचार, रीति-नीति आदि ही संस्कृति कहलाते हैं। अन्य शब्दों में हम कह सकते हैं कि विभिन्न संस्कारों द्वारा एक लम्बे कालखण्ड में निर्मित अमूर्त सामाजिक व्यवस्था ही संस्कृति है।

मानव स्वविवेक से आचार-विचार, दर्शन, साहित्य, संगीत एवं अन्य कलाओं के क्षेत्र में जो श्रेष्ठतर सृष्टि करता है जो कि उसके जीवन को आनन्दमय एवं सार्थक बनाती है, वह सब संस्कृति है। इसका विषय क्षेत्र अत्यन्त बृहद् है; क्योंकि यह हमारी जीवनचर्या के प्रत्येक क्रियाकलाप को एक अदृश्य डोर से साधती है। संस्कृति किसी भी समाज या राष्ट्र की आत्मा है। आत्मा का जो कार्य देह में व्यवहृत होता है वही कार्य संस्कृति का समाज में होता है। आत्मा से देह में चेतना का संचार रहता है, देह जीवन युक्त रहती है। इसी प्रकार कोई भी समाज अपनी संस्कृति से जीवन्त रहता है प्राणवान् रहता है।

भारतीय संस्कृति

हमारा भारत राष्ट्र सांस्कृतिक रूप से बड़ा ही धनी रहा है। भारतीय संस्कृति विश्व की एक प्राचीनतम् एवं महान् संस्कृति है। इसकी महानता इसके मूलभूत तत्त्वों एवं इसके दर्शन में निहित है। पुरुषार्थ-चतुष्ट्य, आश्रम-चतुष्ट्य, षोडश संस्कार, सदाचार, धर्मपरायणता, प्रकृतिसम्वर्धन, परिवार, वृद्धोपसेवन का भाव, सत्य, प्रेम, दया, करुणा, विश्वबन्धुता, सहिष्णुता, जीवमात्र के कल्याण की भावना आदि इसके आधारभूत तत्त्व हैं। इसका दर्शन अध्यात्म के विचारों से अनुप्रेरित है।

रघुवंश महाकाव्य

रघुवंश महाकाव्य कविकुलगुरु महाकवि कालिदास द्वारा रचित एक अनुपम महाकाव्य है।

* सहायक आचार्य, संस्कृत विभाग, आदर्श कृष्ण महाविद्यालय शिकोहाबाद, फिरोजाबाद (उ. प्र.)

यह १९ सर्गों में निबद्ध है। इसमें कुल १५६९ पद्य हैं। महर्षि वाल्मीकिकृत रामायण इस कृति का उपजीव्य ग्रन्थ है। कालिदास ने अपनी इस रचना में सूर्यवंश का बड़ा ही विशद् वर्णन प्रस्तुत किया है। यह वर्णन राजा दिलीप से प्रारम्भ होकर अग्निवर्ण तक प्राप्त होता है।

रघुवंश महाकाव्य में भारतीय संस्कृति के तत्त्व

भारतीय संस्कृति को मूर्तरूप से प्रकट करने वाला प्रथम ऐतिहासिक लौकिक ग्रन्थ महर्षि वाल्मीकि द्वारा रचित रामायण को माना जाता है। चूँकि रघुवंश महाकाव्य रूपी गंगा का उद्भव स्थल रामायण महाकाव्य ही है। अतः इस महाकाव्य में भी भारतीय संस्कृति के उच्च प्रतिमान देखने को मिलते हैं। इसके वर्णित विषय में अनेक स्थलों पर भारतीय संस्कृति के मूल तत्त्वों के दर्शन प्राप्त होते हैं।

धर्मपरायणता

धर्म जो कि पुरुषार्थ-चतुष्ट्य (धर्म, अर्थ, काम, मोक्ष) में प्रथम परिगणित होता है, इसका परिपालन हमारी भारतीय संस्कृति का आधार है। कर्तव्यपरायणता, वचनबद्धता एवं आज्ञापालन-धर्मपरायणता के महत्त्वपूर्ण मूल्य कहे जा सकते हैं। इन मूल्यों की कसौटी पर परीक्षित व्यक्ति ही धर्मपरायण कहलाया जा सकता है। इस काव्य में राजा दिलीप, रघु एवं सूर्यकुलभूषण श्रीराम जी के जीवन-चरित्र धर्मपरायणता के अनुपम उदाहरण हैं।

सुरभि (कामधेनु) की पुत्री नन्दिनी गो की सेवा का व्रत लिये महाराजा दिलीप उपर्युक्त तीनों मूल्यों का उत्कृष्ट आदर्श प्रस्तुत करते हैं। पर्वत गुहा में प्रविष्ट नन्दिनी को खाने के लिये जब सिंह उद्यत होता है तत्समय सेवाव्रती राजा दिलीप गो की रक्षार्थ प्रयत्न करते हैं, किन्तु नन्दिनी की माया के प्रभाव के कारण उनके हाथ चित्रवत् स्थिर हो जाते हैं और वे चाहते हुये भी कुछ नहीं कर पाते। अन्ततः वह नन्दिनी के स्थान पर स्वयं को ही सिंह के सम्मुख भोजन के रूप में प्रस्तुत कर देते हैं -

स त्वं मदीयेन शरीरवृत्तिं देहेन निर्वर्तयितुं प्रसीद।
दिनावसानोत्सुकबालवत्सा विसृज्यतां धेनुरियं महर्षेः।।[१]

अर्थात् हे सिंह! तुम मेरे देह से अपनी क्षुधा-निवृत्ति करने के लिये प्रसन्न हो। दिन व्यतीत होने पर छोटे बछड़े में उत्कण्ठा करने वाली इस महर्षि की गो को छोड़ दो।

राजा के इस प्रकार के व्यवहार को देखकर सिंह उनके मन में स्वजीवन हेतु आसक्ति उत्पन्न करने के प्रयोजन से कहता है -

एकात्पत्रं जगतः प्रभुत्वं नवं वयः कान्तमिदं वपुश्च।
अल्पस्य हेतोर्बहु हातुमिच्छन्विचारमूढः प्रतिभासि मे त्वम्।।[२]

अर्थात् एक छत्र जगत् का स्वामित्व, यह नयी उम्र, यह कान्तिमान् शरीर- यह सब बहुत थोड़े के निमित्त त्यागने की इच्छा करते हुये तुम मुझे विचारमूढ़ विदित होते हो।

सिंह के इस उपहासपूर्ण कथन के प्रत्युत्तर में राजा दिलीप कहते हैं –

किमप्यहिंस्यस्तव चेन्मतोऽहं यशः शरीरे भव मे दयालुः।
एकान्तविध्वंसिषु मद्विधानां पिण्डेष्वनास्था खलु भौतिकेषु।।[३]

अर्थात् यदि मैं तुम्हारे मत में मारने योग्य नहीं हूँ तो तुम मेरे यशरूपी शरीर के प्रति दयालु होवें। (क्योंकि) निश्चित विनाशशील इस पंचभूतों के शरीर में मुझ जैसों की इच्छा नहीं होती।

भारतीय संस्कृति में वचनबद्धता एवं कर्तव्यपरायणता का भाव अन्तर्निहित है। उपर्युक्त प्रसंग में इस भाव को चरितार्थ होते हुये स्पष्ट देखा जा सकता है। राजा दिलीप ने गो की रक्षारूपी कर्तव्य का पालन करते हुये अपने जीवन का मोह त्यागते हुये सिंह के भोजन के रूप में स्वयं को ही प्रस्तुत कर दिया।

भारतीय संस्कृति में बड़े एवं पूजनीय लोगों के प्रति सदैव आदर एवं कृतज्ञता का भाव रखने की बात पर विशेष बल दिया गया है। कहा भी गया है –

अभिवादनशीलस्य नित्यं वृद्धोपसेविनः।
चत्वारि तस्य वर्द्धन्ते आयुर्विद्या यशो बलम्।।[४]

अर्थात् (जो पुरुष) बड़ों की सेवा और उनको प्रणाम करता है उसकी आयु, विद्या, यश और बल ये चारों बढ़ते हैं।

रघुवंशम् में इस संस्कार के महत्त्व का प्रतिपादन किया गया है। मनुष्य के जीवन में इस संस्कार की अवहेलना कितनी हानिप्रदायक हो सकती है, इसका प्रत्यक्ष वर्णन प्रथम सर्ग में ही प्राप्त हो जाता है। राजा दिलीप की सन्तान प्राप्ति में विघ्न का मूल कारण जानकर महर्षि वसिष्ठ कहते हैं –

ईप्सितं तदवज्ञानाद्विद्धि सार्गलमात्मनः।
प्रतिबध्नाति हि श्रेयः पूज्यपूजाव्यतिक्रमः।।[५]

अर्थात् उसके (सुरभि के) निरादर से तुम अपने मनोरथ को रुका हुआ मानो। (क्योंकि) पूज्य की पूजा का उल्लंघन करना कल्याणों को रोकता है।

इन्द्र की सेवा से निवृत्त हो, आकाश मार्ग से लौटते हुये राजा दिलीप मार्ग में विराजमान वन्दनीय सुरभि (कामधेनु) को न देखकर, यथोचित सम्मान सहित वन्दन निवेदित किये बिना ही आगे बढ़ गये थे। अवहलेना से क्रुद्ध होकर सुरभि ने उन्हें शापित कर दिया, जिसके परिणाम स्वरूप राजा दिलीप की सन्तान प्राप्ति में बाधा आ रही थी। इस प्रसंग से स्पष्ट इंगित होता है कि हम सभी को आदरणीय महानुभावों के प्रति सदैव वन्दनीय भाव रखना चाहिये। भारतीय संस्कृति इस मानवीय पक्ष पर विशेष बल देती है।

आश्रम व्यवस्था

हमारी संस्कृति में ब्रह्मचर्य, गृहस्थ, वानप्रस्थ तथा संन्यास इन चार आश्रमों की व्यवस्था की

गयी है। ये आश्रम जीवन की ही चार सुव्यवस्थित अवस्थाएं हैं। रघुवंश महाकाव्य में यह व्यवस्था भी दृष्टिगोचर होती है। दिलीप, रघु आदि के जीवन इसके प्रमुख उदाहरण हैं। रघु के राजसिंहासनारूढ़ होने के बाद दिलीप संन्यास आश्रम में प्रवेश करते हैं। इसी प्रकार रघु ने भी अज को राज्य सौंपकर मुनिव्रत धारण करते हुये नगर के बाहर कुटि में निवास किया – **स किलाश्रममन्त्यमाश्रितो निवसन्नावसथे पुराद्बहिः।**[६]

यज्ञानुष्ठान

यज्ञानुष्ठान भारतीय संस्कृति में अत्यन्त महत्त्वपूर्ण स्थान रखता है। इससे लौकिक एवं पारलौकिक दोनों प्रकार के प्रयोजन सिद्ध होते हैं। रघुवंश महाकाव्य में अनेक स्थलों पर यज्ञादि का उल्लेख प्राप्त हुआ है। राजा दिलीप ने निन्यानवे यज्ञों का अनुष्ठान किया –

इति क्षितीशो नवतिं नवाधिकां महाक्रतूनां महनीयशासनः।
समारुरुक्षुर्दिवमायुषः क्षये ततान सोपानपरम्परामिव।।[७]

अर्थात् माननीय आज्ञा वाले अवस्था के अन्त में स्वर्ग जाने की इच्छा वाले राजा ने सीढ़ियों की पंक्तियों की समान महायज्ञों की निन्यानवे पंक्ति पूरी कीं।

इसी प्रकार राजा अज की यज्ञ परायणता के सम्बन्ध में भी उल्लेख प्राप्त होता है –

क्रियाप्रबन्धादयमध्वाराणामजस्त्रमाहूतसहस्त्रनेत्रः ।
शच्याश्चिरं पाण्डुकपोललम्बान्मन्दारशून्यानलकांश्चकार।।[८]

अर्थात् यज्ञों के निरन्तर करने से वारंवार इन्द्र को बुलाने वाला यह (अज) राजा बहुत काल तक पीले कपोलों पर लम्बायमान इन्द्राणी के अलकों को मन्दार के फूलों से शून्य करता हुआ रहा।

राजा दशरथ ने पुत्रेष्टि यज्ञ का अनुष्ठान किया –

ऋष्यशृङ्गादयस्तस्य सन्तः सन्तानकांक्षिणः।
आरेभिरे जितात्मानः पुत्रीयामिष्टिमृत्विजः।।[९]

अर्थात् तब ऋष्यशृङ्ग आदि जितेन्द्रिय तथा सज्जन याज्ञिकों ने सन्तान की इच्छा करने वाले दशरथ के लिये पुत्रेष्टि यज्ञ करना आरम्भ कर दिया।

ब्रह्मर्षि विश्वामित्र जिन प्रयोजनों से राम–लक्ष्मण को अपने साथ लेकर गये थे उन प्रयोजनों में प्रमुख प्रयोजन, यज्ञ की रक्षा करना ही था –

कौशिकेन स किल क्षितीश्वरो राममध्वरविघातशान्तये।
काकपक्षधरमेत्य याचितस्तेजसां हि न वयः समीक्ष्यते।।[१०]

अर्थात् विश्वामित्र ने आकर राजा (दशरथ) से यज्ञ के विघ्न दूर करने के निमित्त काकपक्ष वाले (राम) को माँगा; क्योंकि तेजस्वियों की अवस्था नहीं देखी जाती।

यज्ञरक्षारूपी प्रयोजन की सिद्धि भी हुई –

इत्यपास्तमखविघ्नयोस्तयोः सांयुगीनमभिनन्द्य विक्रमम्।
ऋत्विजः कुलपतेर्यथाक्रमं वाग्यतस्य निरवर्तयन्क्रियाः।[११]

अर्थात् ऋत्विजों ने इस प्रकार विघ्न दूर करने वाले उन दोनों (राम-लक्ष्मण) का समरपराक्रम सराहकर मौन साधे हुये कुलपति (विश्वामित्र) का यज्ञ विधिपूर्वक पूर्ण किया।

मनोरथों को पूर्ण करने वाले यज्ञ भगवान् वायुमण्डल को स्वच्छ करते हुये अन्तर्मन को भी पवित्रता प्रदान करते हैं। वन से लौटने के क्रम में पड़े अगस्त्य मुनि के आश्रम से उठ रहे यज्ञधूम को देखकर श्रीराम यही भाव प्रकट करते हैं -

त्रेताग्निधूमाग्रमनिन्द्यकीर्तेस्तस्येदमाक्रान्तविमानमार्गम् ।
घ्रात्वा हविर्गन्धि रजोविमुक्तः समश्नुते मे लघिमानमात्मा।।[१२]

अर्थात् निन्दारहित कीर्ति वाले इन (अगस्त्य) मुनि के विमान के मार्ग में आते हुये, हवि की सुगन्धि वाले इस तीन अग्नि के धुएं को सूंघकर मुझ रजोगुण रहित का आत्मा लघुता (शुद्धता) को प्राप्त हो रहा है।

इसी प्रकार इस काव्य के पन्द्रहवें सर्ग में श्रीराम द्वारा किये गये अश्वमेघ यज्ञ का उल्लेख भी प्राप्त होता है -

विधेरधिकसंभारस्ततः प्रववृते मखः।
आसन्यत्र क्रियाविघ्ना राक्षसा एव रक्षिणः।।[१३]

अर्थात् इसके बाद वह यज्ञ प्रारम्भ हुआ, जिसमें शास्त्रानुसार सामग्री से भी अधिक सामग्री एकत्रित हो गयी थी। यज्ञ-क्रिया में विघ्न करने वाले राक्षस ही इसमें रक्षा कर रहे थे।

षोडश संस्कार

षोडश संस्कार भारतीय संस्कृति का एक महत्त्वपूर्ण कार्य है। इस महाकाव्य के वर्णित विषय में इन संस्कारों का भी क्रियान्वितरूप प्राप्त होता है। रघु के जन्म से पूर्व सुदक्षिणा का पुंसवन संस्कार कराया जाता है। जन्म के उपरान्त रघु का जातकर्म संस्कार महर्षि वसिष्ठ के द्वारा किया जाता है। रघु के चूड़ाकर्म के बाद उपनयन संस्कार करते हुये विद्यार्जन का प्रारम्भ बताया जाता है-

अथोपनीतं विधिवद्विपश्चितो विनिन्युरेनं गुरवो गुरुप्रियम्।[१४]

अर्थात् इसके बाद निपुण गुरुजन विधिपूर्वक यज्ञोपवीत को प्राप्त हुये, पिता के प्यारे इस रघु को सिखाते हैं।

इसी प्रकार पन्द्रहवें सर्ग में महर्षि वाल्मीकि अपने आश्रम में जन्म लेने वाले लव-कुश के संस्कारों को स्वयं करते हैं।

सखा दशरथस्यापि जनकस्य च मन्त्रकृत्।
संचस्कारोभयप्रीत्या मैथिलेयौ यथाविधि।।[१५]

दशरथ और जनक के मित्र एवं मन्त्रों के देखने वाले (वाल्मीकि) ने दोनों राजाओं की प्रीति से जानकी के कुमारों के विधिपूर्वक संस्कार किये।

सत्यानुसरण

सत्य या धर्म के मार्ग पर चलते हुये अपने दायित्वों का सम्यक् निर्वहण करना भारतीय संस्कृति का एक अति महत्त्वपूर्ण अंग है। रघुवंश महाकाव्य में यह अंग मूर्तरूप धारण करता हुआ, प्रत्यक्ष देखने को मिलता है। कवि कालिदास के शब्दों में श्रीराम के वनगमन का प्रमुख कारण – **'पिता सत्य मार्ग से विमुख न हों'** ही रहा है।

स सीतालक्ष्मणसखः सत्यात्गुरुमलोपयन्।
विवेश दण्डकारण्यं प्रत्येकं च सतां मनः।।[१६]

वह (राम) अपने पिता को सत्य से न भ्रष्ट करके सीता लक्ष्मण सहित दण्डकारण्य में और प्रत्येक सत्पुरुष के मन में प्रवेश करते हैं।

वन से लौटकर श्रीराम जब प्रथम बार माता कैकई से मिलते हैं तब सत्य मार्ग के अनुसरण को स्वर्ग का फल देने वाला बतलाते हुये कहते हैं –

कृतांजलिस्तत्र यदम्ब! सत्यान्नाभ्रश्यत स्वर्गफलाद् गुरुर्नः।
तच्चिन्त्यमानं सुकृतं भवेति जहार लज्जां भरतस्य मातुः।।[१७]

हाथ जोड़े हुये राम बोले– हे मात! हमारे पिता स्वर्ग का फल देने वाले सत्य से भ्रष्ट न हुये, यह विचारने योग्य तेरा ही पुण्य है। इस प्रकार भरत की माँ कैकई की लज्जा दूर की।

सह-अस्तित्व एवं सद्भाव

बलवान् और निर्बल के मध्य परस्पर समभाव, शान्तिपूर्ण सहभाव तथा **'जियो और जीने दो'** इत्यादि सामाजिक सौहार्द की बातें भारतीय संस्कृति के प्रबल विचार हैं। रघुवंशम् में इन विचारों को प्रकट करने वाले प्रसंग भी देखे जा सकते हैं।

शशाम वृष्टयापि विना दवाग्निरासीद्विशेषा फलपुष्पवृद्धिः।
ऊनं न सत्त्वेष्वधिको बबाधे तस्मिन्वने गोप्तरि गाहमाने।।[१८]

अर्थात् रक्षा करने वाले उस राजा (दिलीप) के उस वन में फिरने पर वन की अग्नि विना ही वर्षा के शान्त हो गयी। फल–फूलों की वृद्धि बहुत हुयी तथा बलवान् ने निर्बल को बाधित नहीं किया।

भ्रातृप्रेम

इक्ष्वाकु वंश अपने सम्बन्धियों के प्रति दायित्वों के सम्यक् निर्वहन् के साथ–साथ परस्पर आत्मीयानुराग का भी अप्रतिम उदाहरण है। इस महाकाव्य में भ्रातृप्रेम की दृष्टि से राम–भरतादि चारों भाइयों का अनुपम उदाहरण प्राप्त होता है।

समानेऽपि हि सौभ्रात्रे यथोभौ रामलक्ष्मणौ।
तथा भरतशत्रुघ्नौ प्रीत्या द्वन्द्वं बभूवतुः।।
तेषां द्वयोर्द्वयोरैक्यं बिभिदे न कदाचन्।
यथा वायुविभावस्वोर्यथा चन्द्रसमुद्रयोः।।[१९]

अर्थात् अच्छे भाईपन की समानता में भी जैसे राम और लक्ष्मण दोनों थे इसी प्रकार भरत और शत्रुघ्न यह भी प्रीति से (दो-दो) जोड़े हुये। इनकी जोड़ी की प्रीति में अग्नि और पवन, समुद्र और चन्द्रमा (की प्रीति) के समान कभी अन्तर नहीं पड़ा।

इसी प्रकार भरत द्वारा श्रीराम को वापिस लाने के लिये चित्रकूट जाना, सिर पर चरणपादुका धारण करते हुये आयोध्या लौटकर जिस प्रकार का जीवन जिया जाता है, वह राम के प्रति इनके अगाध प्रेम एवं नैतिक-मूल्यों का ही उदाहरण है।

स विसृष्टस्तथेत्युक्त्वा भ्रात्रा नैवविशत्पुरीम्।
नन्दिग्रामगतस्तस्य राज्यं न्यासमिवाभुनक्।।
दृढ़भक्तिरिति ज्येष्ठे राज्यतृष्णापराङ्मुखः।
मातुः पापस्य भरतः प्रायश्चित्तमिवाकरोत्।।[२०]

अर्थात् भाई के द्वारा विदा किये गये भरत ने पुरी में प्रवेश नहीं किया। नन्दीगाँव में जाकर उनके राज्य की धरोहर की भाँति रक्षा करने लगे। ज्येष्ठ भाई में दृढ़ प्रीति के कारण राज्य की तृष्णा से विमुख हुये भरत ने इस प्रकार माता के पाप का प्रायश्चित किया।

त्याग की भावना

भारतीय संस्कृति के उच्च आदर्शों में त्याग की भावना को बड़े ही सम्मान की दृष्टि से देखा जाता है। इस कृति में राम, भरतादि चारों भाईयों के रूप में इस भावना का उत्कृष्ट उदाहरण देखने को मिलता है। वन से लौटे श्रीराम भरत को देखकर स्वयं उनके त्याग की सराहना करते हुये कहते हैं।

पित्रा विसृष्टां मदपेक्षया यः श्रियं युवाप्यंकगतामभोक्ता।
इयन्ति वर्षाणि तया सहोग्रमभ्यस्यतीव व्रतमासिधारम्।।[२१]

अर्थात् पिता से त्यागी तथा गोद में आयी हुई भी जिस राजलक्ष्मी को युवा होते हुये भी भरत ने मेरी भक्ति के कारण नहीं भोगा, (ऐसे उसने) इतने वर्ष उस राजलक्ष्मी के साथ कठिन असिधार व्रत साधा है।

पर्यावरणीय महत्त्व

पर्यावरण के विभिन्न घटकों के संरक्षण एवं सम्वर्धन की महत्ता को समझाते हुये समस्त घटकों के प्रति देवत्व भाव रखना भारतीय संस्कृति का एक अद्भुत पक्ष है। रघुवंश महाकाव्य में इस महत्त्व को प्रतिबिम्बित करने वाले अनेक उदाहरण प्राप्त होते हैं। वनवास की अवधि पूर्ण होने के बाद अयोध्या लौटते हुये श्रीराम समुद्र को इंगितकर सीता जी से कहते हैं।

गर्भं दधत्यर्कमरीचयोऽस्माद्विवृद्धिमत्राश्नुवते वसूनि।
अबिन्धनं वह्निमसौ बिभर्ति प्रह्लादनं ज्योतिरजन्यनेन।।[२२]

अर्थात् सूर्य की किरणें इस (समुद्र) से जल प्राप्त कर रही हैं, रत्न इसमें वृद्धि को प्राप्त हो

रहे हैं, पानी भक्षण करने वाली (वड़वा) अग्नि को यह धारण करता है, इसी से आनन्ददायक ज्योति (चन्द्रमा) उत्पन्न हुआ है।

सूर्य की तप्त किरणों के प्रभाव से वाष्पित होकर मेघ बनने वाला समुद्र का जल ही पृथिवी पर वृष्टि के रूप में प्राप्त होता है। अतः वृष्टि के मूल में समुद्र ही निहित है। इस तथ्य का स्पष्ट उल्लेख उपर्युक्त पद्य में प्राप्त हुआ है।

भारतीय संस्कृति में नदियों का विशेष स्थान है। गंगादि पवित्र नदियों में स्नान करने से पापक्षय होता है। यह धार्मिक मान्यता नदियों के महत्त्व को और बल प्रदान करती है। रघुवंशम् में भी नदियों के इस महत्त्व का स्पष्ट दर्शन होता है। श्रीराम सीता जी को गंगा-यमुना का संगम स्थल दिखलाते हुये कहते हैं।

समुद्रपत्न्योर्जलसंनिपाते पूतात्मनामत्र किलाभिषेकात्।
तत्त्वावबोधेन विनाऽपि भूयस्तनुत्यजां नास्ति शरीरबन्धः।।[२३]

अर्थात् यहाँ सागर की दोनों पत्नियों (गंगा-यमुना) के जल के संगम में स्नान करने से पवित्र हुये शरीरधारियों को तत्त्वज्ञान के विना भी फिर शरीरबन्ध नहीं रहता।

इसी प्रकार अपनी सतत् जलधाराओं से हम सभी का पोषण करने वाली नदियों को हमारी संस्कृति में मातृवत् माना गया है। यह मान्यता रघुवंशम् में भी स्पष्टरूप से दृष्टिगोचर होती है। श्रीराम सरयू नदी को मातृतुल्य कहकर सम्बोधित करते हैं।

सेयं मदीया जननाव तेन मान्येन राज्ञा सरयूर्वियुक्ता।
दूरे वसन्तं शिशिरानिलैर्मा तरंगहस्तैरुपगूहतीव।।[२४]

अर्थात् मेरी माता के समान, माननीय उस राजा से वियोग को प्राप्त हुयी यह सरयू दूर रहने वाले मुझको मानो ठण्डी हवा वाले तरंगरूपी हाथों से आलिङ्गन कर रही है।

इसी प्रकार वट, पीपलादि वृक्षों के संरक्षण हेतु दिया गया पूजनीय स्वरूप इस महाकाव्य में भी देखने को मिलता है।

त्वया पुरस्तादुपयाचितो यः सोऽयं वटः श्याम इति प्रतीतः।
राशिर्मणीनामिव गारुडानां स पद्मरागः फलितो विभाति।।[२५]

अर्थात् (राम सीता जी से कहते हैं कि) तुमने प्रथम जिसकी पूजा की थी श्याम नाम वाला यह वही वट का वृक्ष फूला हुआ गारुणमणि अर्थात् चुन्नियों से युक्त पन्ने के समूह की भाँति शोभित हो रहा है।

उपसंहार

हमारी भारतीय संस्कृति में आध्यात्मिक एवं भौतिक क्रिया-कलाप, पारिवारिक संरचना, जीवन-मूल्यों की अवधारणादि का ध्यान रखते हुये जीवन को कुशलतापूर्वक जीना एवं ज्ञानार्जन की प्रक्रिया से जुड़कर आत्मकल्याण से जगकल्याण की ओर बढ़ना ही श्रेयस्कर माना गया है।

उपर्युक्त विवेचन से स्पष्ट हो रहा है कि महाकवि कालिदास विरचित 'रघुवंशमहाकाव्यम्' भारतीय संस्कृति को प्रदर्शित करने वाला महाकाव्य कहा जा सकता है; क्योंकि हमारी संस्कृति के जो भी तत्त्व या आधार हैं वह अन्यत्र सैद्धान्तिक रूप में प्राप्त होते होंगे, परन्तु इस महाकाव्य में मूर्तरूप में प्राप्त हुये हैं। राजा दिलीप, रघु एवं अन्य समस्त इक्ष्वाकुवंशियों ने इन सिद्धान्तों को चरितार्थ किया है। इस महाकाव्य में उपर्युक्त सांस्कृतिक तत्त्वों के अतिरिक्त–पुरुषार्थचतुष्ट्य की प्राप्ति, त्रिविध ऋणों से उऋणता, पतिव्रता स्त्री का महात्म्य, योग, कर्मशीलता, श्रेष्ठ राजधर्म, तप का महत्त्वादि सांस्कृतिक विचार एवं मान्यताओं के भी व्यवहृत उदाहरण प्राप्त होते हैं। अतः हम कह सकते हैं कि रघुवंश महाकाव्य में भारतीय संस्कृति के तत्त्वों का स्पष्टतया प्रतिबिम्बन दिखलायी पड़ता है। वर्तमान में हम सभी इस प्रतिबिम्बित ज्ञान से पाथेय प्राप्तकर अपने जीवन को और अधिक नैतिक एवं सदाचारी बना सकते हैं।

सन्दर्भ-सूची

१. रघुवंशमहाकाव्यम्, २.४५
२. वही, २.४७
३. वही, २.५७
४. मनुस्मृति, २.१२१
५. रघुवंशमहाकाव्यम्, १.७९
६. वही, ८.१४
७. वही, ३.६९
८. वही, ६.२३
९. वही, १०.४
१०. वही, ११.१
११. वही, ११.३०
१२. वही, १३.३७
१३. वही, १५.६२
१४. वही, ३.२९
१५. वही, १५.३१
१६. वही, १२.९
१७. वही, १४.१६
१८. वही, २.१४
१९. वही, १०.८१–८२
२०. वही, १२.१८–१९
२१. वही, १३.६७
२२. वही, १३.४
२३. वही, १३.५८
२४. वही, १३.६३
२५. वही, १३.५३

Shodh Navneet (International Peer-Reviewed Research Journal)
ISSN : 2321-6581, IIJ Impact Factor : 5.037, Vol. XIX, July - Dec. - 2022

श्रीकृष्ण एवं प्रबंधन के सिद्धान्त

डॉ. महेश कुमार शर्मा*

भूमिका

प्रबंधन के सिद्धान्त जो अब शीर्ष प्रबंधन संस्थानों में पढ़ाए जाते हैं, शीर्ष प्रबंधन गुरु की पुस्तकों में उल्लेख किया गया है और जो संदेश प्रेरक उद्धरणों में हैं, वे श्रीमद्भगवद्गीता के अंशों से प्राचीनतम महाकाव्य से है। ये हजारों साल पुराने हैं लेकिन उनकी सफल कहानी के लिए वर्तमान कॉर्पोरेट, अर्थव्यवस्था, बिजनेस लीडर के लिए बहुत प्रासंगिक हैं। आजकल कई संस्थाएं श्रीमद्भगवद्गीता सिद्धान्तों पर शीर्ष कार्यकारी आधारों को प्रशिक्षण प्रदान करती हैं, व्यक्तिगत और व्यावसायिक जीवन में सुधार के साथ-साथ उत्पादकता, व्यवहार, प्रेरक दृष्टिकोण, आत्मविश्वास, साहस, उत्साह, बहादुरी, बुद्धि के विकास को बढ़ाने के लिए जो भगवद्गीता मॉड्यूल के माध्यम से एक सफल नेता, प्रबंधक, उद्यमी, सफल खिलाड़ी, राजनीतिज्ञ बनने के लिए आवश्यक है भले ही यह प्राचीन महाकाव्य है, लेकिन श्रीकृष्ण द्वारा सिखाया गया सिद्धान्त और दर्शन न केवल भारत में बल्कि विभिन्न वर्गों, छात्रों, शीर्ष प्रबंधन, पेशेवरों में लाखों लोगों के लिए प्रेरणा देने के लिए प्रासंगिक है। जैसा कि प्रबंधन लोगों के माध्यम से और लोगों को प्रेरित करके, उन्हें प्रभावित करके उन्हें उत्पादक बनाकर काम करवा रहा है। कहीं भी एक सफल नेता के पास दृष्टि, परिकल्पना, निर्णय लेने, योजना बनाने, आत्मविश्वास की गुणवत्ता होनी चाहिए। ये सभी विस्तृत रूप से श्रीमद्भगवद्गीता में विद्यमान हैं।

विषय उपस्थापन

श्रीकृष्ण के सिद्धान्त और संदेश मानव की जमीनी सोच में सहायक होते हैं, जो अन्ततः गुणवत्ता और दृष्टिकोण को बढ़ाते हैं। श्रीमद्भगवद्गीता में श्रीकृष्ण के कई सिद्धान्त प्रतिपादित हैं, जिनमें से कतिपय सिद्धान्तों का यहाँ वर्णन किया जा रहा है।

१. कर्तव्य पालन

श्रीमद्भगवद्गीता में कर्मयोग का प्रतिपादन करते हुए भगवान् श्रीकृष्ण कहते हैं –

कर्मण्येवाधिकारस्ते मा फलेषु कदाचन।
मा कर्मफलहेतुर्भूर्मा ते सङ्गोऽस्त्वकर्मणि।।[१]

अर्थात् तेरा कर्म में ही अधिकार है ज्ञाननिष्ठा में नहीं। वहाँ (कर्ममार्ग में) कर्म करते हुए

* सहायक आचार्य, राजकीय महाराज आचार्य संस्कृत महाविद्यालय जयपुर, राजस्थान

तेरा फल में कभी अधिकार न हो अर्थात् तुझे किसी भी अवस्था में कर्मफल की इच्छा नहीं होनी चाहिये। बिना फल की अपेक्षा के कर्म करते रहो अर्थात् बदले में पुरस्कार, एक निस्वार्थ जीवन जिओ। श्रीकृष्ण कहते हैं कि कर्म के फलों की इच्छा मत करो और अपने कार्यों और प्रयासों को अपने कर्तव्यों के प्रदर्शन पर केंद्रित करो। इससे यह संदेश मिलता है कि सफलता का कोई संक्षेप (Short Cut) नहीं होता, सफलता पाने के लिए निरन्तर मेहनत करनी पड़ती है।

२. नेतृत्व कौशल

श्रीकृष्ण ने अर्जुन के मनोबल और आत्मविश्वास को पुनर्जीवित करने के लिए शिक्षक (गुरु) की भूमिका निभाई। इसी तरह नेता को समस्याओं को हल करने की दृष्टि देने और लक्ष्य प्राप्त करने के लिए नेतृत्व की स्थिति लेनी होती है। नेता हमेशा आगे बढ़ते हैं और मनोबल बढ़ाते हैं। नेतृत्व करने वाला व्यक्ति पहले स्वयं ठीक होना चाहिए। अनेक अच्छे व्यक्तियों में भी समयानुसार विचित्र कमियाँ दिखाई देती हैं। यह कमियाँ एक दिन में न आकर क्रम से आती हैं। इस क्रम को बताते हुए गीता में श्लोक है कि श्रीमद्भगवद्गीता का आश्रय लेकर इन कमियों के आने के क्रम को हम जान लेते हैं तो इनसे बचकर एक कुशल नेतृत्वकर्ता बन सकते हैं। हर व्यक्ति जीवन पथ पर कोई न कोई ध्येय लेकर चलता है। जब तक ध्येय का चिन्तन करता हुआ चलता है तब तक तो ठीक रहता है, लेकिन जिस दिन ध्येय की जगह 'मैं' आ जाता है, तब उसका स्खलन प्रारम्भ हो जाता है। जैसा कि श्रीमद्भगवद्गीता में कहा भी है –

यद्यदाचरति श्रेष्ठस्तत्तदेवेतरो जनः।
स यत्प्रमाणं कुरुते लोकस्तदनुवर्तते।।[२]

अर्थात् श्रेष्ठ लोग जैसा आचरण करते हैं अन्य लोग भी उसी का अनुसरण करते हैं। इसलिए नेतृत्व निःस्वार्थ होना चाहिए। अपने कार्यक्षेत्र में कार्यकर्त्ताओं की टीम के साथ परस्पर सहयोग करते हुए लक्ष्य की ओर बढ़ते हैं। नेतृत्वकर्ता का ऐसा व्यवहार होने से कार्यकर्ता भी इसी ढंग के बनेंगे। अगर स्वकेंद्रित रहेंगे तो कार्यकर्ता भी ऐसे ही विकसित होंगे नेतृत्व की दृष्टि से गीता बताती है कि नेतृत्व करना है तो समूह बनाकर कार्य करना होगा। तुम दूसरों की चिन्ता करो और वह तुम्हारी चिन्ता करें तब परस्पर सामंजस्य से ही सफलता प्राप्त होगी। हमें स्मरण रहना चाहिए कि हम में से कोई भी पूर्ण नहीं है, परन्तु अनेक विशेषताओं के लोग मिल कर पूर्णता प्राप्त करके पूर्ण लक्ष्य प्राप्त कर सकते हैं।

३. चुनौतियों को स्वीकार करना

नेता को अपने कार्यों में लचीला और दृढ़ निश्चयी होना चाहिए। एक अच्छा नेता वह है जो भय या क्रोध से नेतृत्व नहीं करता, बल्कि धैर्य रखता है। उनका ध्यान हमेशा सलाहकार की भूमिका निभाकर लक्ष्य प्राप्त करने पर नहीं होना चाहिए। जैसे अर्जुन को महाभारत युद्ध में बहुत बड़ी चुनौती का सामना करना पड़ा। लेकिन उसने उस चुनौती को स्वीकार किया और भगवान

श्रीकृष्ण के आदेशानुसार डटकर मुकाबला किया। श्रीमद्भगवद्गीता में प्रसङ्ग है –

आचार्याः पितरः पुत्रास्तथैव च पितामहाः।
मातुलाः श्वशुराः पौत्राः श्यालाः संबन्धिनस्तथा।।[३]
एतान्न हन्तुमिच्छामि घ्नतोऽपि मधुसूदन।
अपि त्रैलोक्यराज्यस्य हेतोः किं नु महीकृते।।[४]

अर्थात् हे मधुसूदन! आचार्य, पिता, पुत्र और उसी प्रकार पितामह, मामा, श्वसुर, पुत्र, साले तथा अन्य सभी सम्बन्धी लोग हैं, जिनके प्रहार करने पर भी मैं इनको नहीं मारना चाहता। हे मधुसूदन! तीनों लोकों के राज्य के लिए भी मैं इन सब को मारना नहीं चाहता, फिर पृथ्वी के लिए तो कहना ही क्या?

कथं भीष्ममहं सङ्ख्ये द्रोणं च मधुसूदन।
इषुभिः प्रतियोत्स्यामि पूजार्हावरिसूदन।।[५]

अर्जुन अपनी शंका और चुनौतियों के बारे में कहते हैं कि हे मधुसूदन ! मैं रणभूमि में किस प्रकार बाणों से भीष्म पितामह और गुरु द्रोणाचार्य के विरुद्ध लड़ूँगा, जिनसे मैंने सब कुछ सीखा है, जो मेरे लिए सबसे बड़े हैं, उनपर मैं कैसे बाण चला सकता हूँ?

ऐसी स्थिति उत्पन्न हो जाने पर भगवान् श्रीकृष्ण अपने प्रबंधन के सिद्धान्त एवं गीता उपदेश के द्वारा अर्जुन को युद्ध के लिए प्रेरित करते हैं –

सुखदुःखे समे कृत्वा लाभालाभौ जयाजयौ।
ततो युद्धाय युज्यस्व नैवं पापमवाप्स्यसि।।[६]

अर्थात् हे अर्जुन! जय-पराजय, लाभ-हानि और सुख-दुःख को समान समझकर उसके बाद युद्ध के लिए तैयार हो जाओ, इस प्रकार युद्ध करने से हे अर्जुन ! तुम पाप को नहीं प्राप्त होगे।

दोस्तों, अगर आप अपनी चुनौती में अपना सर्वस्व लगा देते हैं, तो जीतने पर तो सब कुछ मिलेगा ही, लेकिन अगर हार भी जाते हैं, तो अफ़सोस नहीं होगा, क्योंकि आपके पास जो भी था उसे आपने युद्ध में लगा दिया। अब इस स्थिति को बड़े ध्यान से देखिए कि युद्ध में अपना सब कुछ लगा देने पर हार-जीत का अन्तर कम हो जाता है और यही तो श्रीकृष्ण भी कह रहें हैं की सुख और दुःख को एक जैसा समझें और बस अपने कर्म में लग जाएं।

४. श्रीकृष्ण प्रभावी नेतृत्व के लिए आवश्यक तीन सिद्धान्तों को परिभाषित करते हैं –

- **सीखने का अनुशासन –** अच्छे नेता में सीखने की गुणवत्ता होनी चाहिए तभी वह अपने अधीनस्थों को प्रभावी ढंग से पढ़ा सकता है
- **प्रभावी सम्प्रेषण –** उसके पास प्रभावी संप्रेषक के साथ-साथ श्रोता भी होने चाहिए तभी प्रभावी नेता होगा। उसे ईमानदार होना चाहिए और लोगों का सम्मान करना चाहिए।
- समभाव का अनुशासन दबाव लेने में सक्षम होना चाहिए।

५. दृढ़ इच्छा शक्ति का होना

एक बार निर्णय लेने के बाद नेता को दृढ़ इच्छा शक्ति और आत्मविश्वास के साथ उन्हें लागू करना चाहिए तथा बैकफुट पर नहीं जाना चाहिए, अन्यथा वह एक अच्छे नेता के रूप में पहचान खो देगा। उसे जो कुछ हुआ अच्छे के लिए लेना चाहिए, उसे गलती और असफलता से सीखना चाहिए। जैसा कि श्रीमदद्भगवद्गीता में मन को दृढ़ करने के लिए कहा भी है –

यतो यतो निश्चरति मनश्चञ्चलमस्थिरम्।
ततस्ततो नियम्यैतदात्मन्येव वशं नयेत्।।[७]

अर्थात् यह चंचल और अस्थिर मन जिन कारणों से (विषयों में) विचरण करता है, उनसे संयमित करके उसे आत्मा के ही वश में लाना चाहिए अर्थात् आत्मा में स्थिर करे।

६. परिवर्तन को स्वीकार करना

परिवर्तन को स्वीकार करना चाहिए, यह ब्रह्माण्ड का नियम है। बदलाव ही स्थायी वस्तु है, जिसे हमेशा होना चाहिए और एक अच्छे नेता को परिस्थितियों के अनुसार हमेशा तैयार रहना चाहिए, उसी के अनुसार उसे अपनी रणनीति बनानी चाहिए तभी वह टिक पाएगा।

७. प्रबंधन क्षमता

नेता की वास्तव में परीक्षा उच्च दबाव की स्थिति में भी खुद को शान्त रखने की होती है, जैसे श्रीकृष्ण जो कौरवों के खिलाफ पाण्डवों को जीत दिलाने का एक बड़ा लक्ष्य रखते थे, लेकिन उन्होंने कभी अपना धैर्य नहीं खोया, बल्कि हमेशा पाण्डवों का मार्गदर्शन करते रहे। श्रीमद्भगवद्गीता में अर्जुन का मार्गदर्शन करते हुए भगवान् श्रीकृष्ण कहते हैं –

अशोच्यानन्वशोचस्त्वं प्रज्ञावादांश्च भाषसे।
गतासूनगतासूंश्च नानुशोचन्ति पण्डिताः।।[८]

अर्थात् हे अर्जुन! तू उनके लिये शोक करता है जो शोक करने योग्य नहीं है और पण्डितों की तरह बातें करता है। जो विद्वान् होते हैं, वे न तो जीवित प्राणी के लिये और न ही मृत प्राणी के लिये शोक करते हैं।

८. तार्किक दृष्टिकोण एवं वाक्पटुता

महाभारत में श्रीकृष्ण पाण्डवों को बुराई से लड़ने और बुराई को खत्म करने की रणनीति बनाने के लिए अपने ज्ञान को साझा करते रहते हैं। जीवन के किसी भी क्षेत्र में एक अच्छे नेता की तरह अपनी टीम को प्रेरित करते रहें, उन्हें कानून, प्रौद्योगिकी, पर्यावरण में हाल के बदलावों से अपडेट रखें ताकि बाधा को दूर करने और अग्रिम रूप से योजना बनाकर लक्ष्य को सुचारु रूप से प्राप्त करने की रणनीति बना जा सके। 'श्रीमद्भगवद्गीता' श्रीकृष्ण की व्याख्यान-शक्ति का उत्कृष्ट उदाहरण है। कर्तव्यपालन से विमुख मोहग्रस्त पुरुषार्थ को पुनः कर्म-पथ पर नियोजित करना कोई हंसी का खेल नहीं। यह श्रीकृष्ण की व्याख्यान-कला ही है, जो किंकर्तव्यविमूढ़ अर्जुन को पुनः

कर्तव्य का बोध देकर उन्हें समरभूमि में उतारती है। उनकी इसी व्याख्यान–शक्ति में उनकी तार्किकता के भी दर्शन होते हैं।

तस्मात्त्वमुत्तिष्ठ यशो लभस्व जित्वा शत्रून्भुङ्क्ष्व राज्यं समृद्धम्।
मयैवैते निहताः पूर्वमेव निमित्तमात्रं भव सव्यसाचिन्।।[९]

अर्थात् – हे सव्यसाची ! इसलिए तू यश को प्राप्त करने के लिये युद्ध करने के लिये खड़ा हो और शत्रुओं को जीतकर सुख सम्पन्न राज्य का भोग कर, यह सभी पहले ही मेरे ही द्वारा मारे जा चुके हैं, तू तो युद्ध में केवल निमित्त बना रहेगा।

९. रणनीतिज्ञ नेता

महाभारत में श्रीकृष्ण जानते हैं कि वहाँ जीतने के लिए कौरव पूरी कोशिश करेंगे, उन्होंने बड़ी सावधानी से रणनीति बनाई है। वह वहाँ की रणनीति पर लगातार नजर रखे हुए थे। अच्छे नेता की खूबी यह है कि वह अच्छा रणनीतिकार हो, तभी वह प्रतिस्पर्धियों को जीतकर नेतृत्व कर सकता है और उसका संगठन लाभ कमा सकता है। आज के माहौल में ये सिद्धान्त बहुत सही और प्रासंगिक हैं, व्यक्ति को हमेशा लालच और बुरे इरादों से बचना चाहिए। अन्यथा उसे परिणाम भुगतने के लिए तैयार रहना चाहिए।

महाभारत में कौरवों और पाण्डवों के बीच जो युद्ध लड़ा गया था, वह एक धर्म युद्ध था। जिसमें अधर्म पर धर्म की विजय हुई थी। भगवान् श्रीकृष्ण को इस बात की पूरी आशंका थी कि कौरवों से युद्ध जीतना संभव नहीं है। उन्हें यह पता था कि पाण्डवों को यह युद्ध अपने ही बड़े और गुरुजन से लड़ना है। इसलिए श्रीकृष्ण ने पाण्डवों का सारथी बनने का निर्णय लिया ताकि मुश्किल और धर्म के इस युद्ध में वह पाण्डवों को राह दिखा सकें। उन्होंने अपनी बुद्धि का सहारा लिया, जो इस युद्ध को जीतने के लिए अति आवश्यक था। पाण्डवों की जीत का सारा श्रेय श्रीकृष्ण द्वारा बनायी हुई रणनीति का ही था। जिसका पालन कर पाण्डवों ने जीत हासिल की। उनकी रणनीति का वर्णन इस प्रकार से है।

१. भगवान् श्रीकृष्ण को यह मालूम था कि युद्ध जीतने के लिए भीष्म पितामह को युद्ध से हटाना होगा। इसलिए उन्होंने अर्जुन के रथ पर शिखण्डी को बैठाया जो पूर्ण पुरुष नहीं थे और पिछले जन्म में अम्बा थी। पितामह उन्हें स्त्री समझते थे, इसलिए उन्होंने वाण चलाना बन्द कर दिया जिसका फायदा उठाकर अर्जुन ने पितामह को वाणों की सेज पर सुला दिया। जैसा कि भीष्मपर्व में वर्णन है –

नाभिसंधत्त पाञ्चाल्ये स्मयमानो मुहुर्मुहुः।
स्त्रीत्वं तस्यानुसंस्मृत्य भीष्मो बाणाञ्शिखण्डिने।।[१०]

२. अश्वत्थामा एक हाथी था और द्रोणाचार्य के पुत्र का नाम भी अश्वत्थामा था। भगवान् श्रीकृष्ण ने युधिष्ठिर से बोला कि आप द्रोणाचार्य के सामने यह बोलिए कि अश्वत्थामा की मृत्यु हो

गयी है, जबकि हाथी की मृत्यु हुई थी। यह सुनते ही द्रोणाचार्य ने यह सोंचा कि उनके पुत्र की मृत्यु हो गयी है। उन्होंने अपना धनुष वाण धरती पर रख दिया और विलाप करने लगे। उसी समय धृष्टद्युम्न ने उनका वध कर दिया। उन्होंने आधा ही सच सुना जो उनकी मृत्यु का कारण बना। महाभारत द्रोणपर्व के अंतर्गत वर्णन है –

तस्य तद्वचनं श्रुत्वा कृष्णवाक्यप्रचोदितः।
भावित्वाच्च महाराज वक्तुं समुपचक्रमे।।[११]

अर्थात् महाराज! भीम की यह बात सुनकर श्रीकृष्ण के आदेश से प्रेरित हो भावीवश राजा युधिष्ठिर वह झूठी बात कहने को तैयार हो गए।

तमतथ्यभये मग्नो जये सक्तो युधिष्ठिरः।
(अश्वत्थामा हत इति शब्दमुच्चैश्चचार ह।)
अव्यक्तमब्रवीद्राजन्हतः कुञ्जर इत्युत।।[१२]

अर्थात् एक ओर तो वे असत्य के भय में डूबे हुए थे और दूसरी ओर विजय की प्राप्ति के लिए भी आसक्तिपूर्वक प्रयत्नयील थे। अतः राजन! उन्होंने अश्वत्थामा मारा गया, यह बात तो उच्च स्वर में कही, परन्तु हाथी का वध हुआ है, यह बात धीरे से कही।

इसी प्रकार सम्पूर्ण महाभारत में चाहे जयद्रथ वध हो या कर्ण वध या फिर दुर्योधन वध पग पग पर विभिन्न प्रसङ्गों में श्रीकृष्ण की कूटनीति एवं रणनीति ही दिखाई देती है। श्रीकृष्ण की यही रणनीति पाण्डवों के विजय का कारण बनी।

उपसंहार

वर्तमान वैश्विक परिस्थितियों में नेतृत्व तथा प्रबंधन सीखने सिखाने पर सर्वाधिक चिन्तन व शोध हो रहे हैं। प्राचीन भारतीय वाङ्मय के अध्ययन से भी हमें इस सम्बन्ध में दिशा प्राप्त होती है। श्रीमद्भगवद्गीता मनुष्य में विभिन्न प्रसङ्गों पर निराशा और हताशा आ जाने पर उनको मार्ग दिखाने वाला ग्रन्थ है। सभी दर्शनों का समन्वय होने के साथ-साथ इसमें विविध प्रकार के मनोवृत्तियों वाले लोग हैं। भक्तियोग, कर्मयोग, ज्ञानयोग का वर्णन होने के साथ साथ श्रेष्ठ व्यक्ति बन कर श्रेष्ठ नेतृत्व करने संबन्धी मार्गदर्शन भी इससे प्राप्त होता है।

आधुनिक युग विज्ञान का युग है इसलिए कुछ लोगों को वर्तमान समय में श्रीमद्भगवद्गीता की प्रासंगिकता पर संदेह है, लेकिन वर्तमान में मनुष्य की अधिकांश समस्याओं को श्रीकृष्ण के प्रबंधन के जरिए हल किया जा सकता है। श्रीकृष्ण एक अवतार से कहीं ज्यादा एक सच्चे आध्यात्मिक गुरु हैं, जिन्हें उनके अचूक प्रबन्ध मन्त्रों (Management Mantra By Lord Krishna) के लिए जाना जाता है। अपने प्रत्येक स्वरूप में वे हर उम्र के व्यक्ति के लिए रोल

मॉडल हैं। किसी भी लक्ष्य के प्रति उनकी रणनीति, प्रबंधन और साधनों को उपयोग करने की क्षमता हम सभी के लिए प्रेरणादायी है।

सन्दर्भ

१. श्रीमद्भगवद्गीता, २.४७
२. श्रीमद्भगवद्गीता, ३.२१
३. श्रीमद्भगवद्गीता, १.३४
४. श्रीमद्भगवद्गीता, १.३५
५. श्रीमद्भगवद्गीता, २.४
६. श्रीमद्भगवद्गीता, २.३८
७. श्रीमद्भगवद्गीता, ६.२६
८. श्रीमद्भगवद्गीता, २.११
९. श्रीमद्भगवद्गीता, ११.३३
१०. भीष्मपर्व, ६.११८.५०
११. द्रोणपर्व, १९१.५३
१२. द्रोणपर्व, १९१.५४

Shodh Navneet (International Peer-Reviewed Research Journal)
ISSN : 2321-6581, IIJ Impact Factor : 5.037, Vol. XIX, July - Dec. - 2022

पुराणों का वैशिष्ट्य एवं महत्त्व

डॉ. सुरेश कुमार सान्दू*

सारांश

भारतीय धर्म तथा संस्कृति के स्वरूप की जानकारी पुराणों से प्राप्त की जा सकती है। धार्मिक, सामाजिक, राजनैतिक तथा भौगोलिक आदि अनेक दृष्टिकोण से पुराण का विशिष्ट महत्त्व है। पुराणों का उद्देश्य वेदों के जटिल एवं दार्शनिक उपदेशों को ऐतिहासिक तथ्यों और आख्यानों के द्वारा जनसाधारण तक सुगमता से पहुँचाना था। पुराणों के द्वारा प्राचीन इतिहास की जानकारी आसानी से प्राप्त होती है। साहित्यिक दृष्टि से पुराणों का महत्त्व बड़ जाता है; क्योंकि भारतीय काव्यग्रन्थों का निर्माण पुराण से कथावस्तु को लेकर हुआ है। व्याकरण तथा छन्द विधान पुराणों की देन है। 'अग्निपुराण' से काव्यशास्त्र के विषयों की जानकारी उपलब्ध होती है। भौगोलिक दृष्टि से भी पुराणों की उपयोगिता काफी है। पुराणों में पृथ्वी को चतुर्द्वीपा वसुमती तथा सप्तद्वीपा वसुमती कहा गया है। अर्थात् यहाँ चार द्वीप तथा सात द्वीप हैं, जो समुद्रों से घिरी हुई है। इस प्रकार पुराणों का भूगोल काल्पनिक नहीं होकर ठोस प्रमाण पर आधारित है। इसमें सकारात्मक दृष्टि से शोध करने की आवश्यकता है। फिर भी प्राचीन भारत के विविध ज्ञान और विज्ञान यथा जीवविज्ञान, वनस्पति विज्ञान, आयुर्वेद, ज्योतिषशास्त्र, भाषाविज्ञान, इतिहास, भूगोल आदि सभी का एकत्र विवरण पुराणों में प्राप्त होता है। यहाँ व्याकरण, छन्द रचना, धर्मशास्त्र आदि विषयों के मूल तथ्यों का वर्णन सरलता से प्रस्तुत किया गया है। अतः इसे विश्व ज्ञान का 'कोष' कहना अतिश्योक्ति नहीं होगी। पुराण के इसी विशिष्टता के कारण विदेशी विद्वान् भी आकर्षित हुए हैं। इंग्लैण्ड के सुप्रसिद्ध विद्वान एच.जी. वेल्स ने अपनी पुस्तक "आउटलाइन ऑफ हिस्ट्री" (इतिहास की रूपरेखा) में पौराणिक प्रणाली का अनुकरण किया है। इसमें उन्होंने इतिहास लिखने से पूर्व सृष्टि के प्रारम्भ से मनुष्य के विकास का इतिहास लिखा है। मनुष्य योनि को प्राप्त करने से पूर्व पहला मानव को कौन सा रूप धारण करना पड़ा तथा उसका क्रमिक विकास कैसे हुआ ? इसका बहुत ही सुन्दर वर्णन किया गया है। इस प्रकार यदि मनुष्य का इतिहास लिखना हो, तो सृष्टि के आरम्भ से ही उसके विकास की कथा लिखनी ठीक है। इतिहास लिखने की यही पौराणिक प्रकार का आदर्श है। अतः किसी मानव समाज का इतिहास तभी पूर्ण समझा जायेगा जब उसकी कहानी सृष्टि के आरम्भ से लेकर वर्तमान काल तक क्रमबद्ध रूप प्रस्तुत किया जाए। जब तक किसी देश की कथा सृष्टि के प्रारम्भ से न लिखी जाये तब तक उसे अधूरा समझना चाहिए। इतिहास की इस वास्तविक कल्पना

* सहायक आचार्य–इतिहास, राजकीय महाविद्यालय पुष्कर, अजमेर, राजस्थान

को पुराणों देखा जा सकता है।

शब्दसार – धर्म, संस्कृति, पुराण , आख्यान, कथावस्तु, अग्निपुराण, व्याकरण, विज्ञान, धार्मिक, दार्शनिक, सामाजिक, राजनैतिक, वास्तुशास्त्र, ज्योतिर्विज्ञान, शास्त्रीय, स्कन्दपुराण, नारदीयपुराण, ऋग्वेद, श्रीमद्भागवद्गीता, मार्कण्डेयपुराण, विष्णुपुराण, संस्कृत साहित्य आदि।

संस्कृत साहित्य के सुदीर्घ इतिहास में पुराण वाङ्मय का अक्षुण्ण महत्त्व है। सुहृत्–सम्मित ज्ञानकोश के रूप में वेदों का उपवृंहण करने वाले पुराण एक प्रकार के विश्वकोश माने जा सकते हैं। वेदों के सम्यक् अवगाहन के लिए पुराणादि की अत्यधिक सहजोयगिता वर्णित की जा चुकी है। व्यापक से व्यापक विषयों को प्रायः रुक्ष शैली में संक्षेपपूर्वक प्रस्तुत करने वाले वेद–विषयों को स्मृतियों तथा पुराणों में अत्यधिक सरल–सरस तथा रोचक शैली में विविध आख्यानों–उपाख्यानों के माध्यम से समझाने का प्रयत्न किया गया है। इसीलिए स्कन्दपुराण के रेवाखण्ड में एक स्थान पर उल्लिखित है कि जिस विषय को वेदों से नहीं समझा जा सकता है उसे स्मृतियों के द्वारा समझ लेते हैं। परन्तु जिस विषय के दर्शन न तो वेदों में होते हैं और न स्मृतियों में उस अदृष्टपूर्व विषय को भी पुराणों में देखा जा सकता है –

यन्न दृष्टं हि वेदेषु तद् दृष्टं स्मृतिभिः किल।
उभाभ्यां यन्न दृष्टं हि तत्पुराणेषु गीयते।।[१]

इससे तो ऐसा प्रतीत होता है कि पुराण वेदों से भी अधिक महत्त्वपूर्ण हैं। सम्भवतः इसीलिए वेदादि के साथ सर्वत्र पुराणों के अध्ययन पर बल दिया गया है। वेद तो प्रायः इष्ट–प्राप्ति तथा अनिष्ट–परिहार का अलौकिक उपाय बताते हैं जबकि पुराण लौकिक तथा अलौकिक दोनों ही प्रकार के उपायों का बोध कराता है। अतः आधुनिक समय में वेदों से भी पुराणों का स्थान अधिक महत्त्वपूर्ण माना जा सकता है, इसीलिए नारदीयपुराण में एक स्थान पर प्रोक्त है कि –

वेदार्थादधिकं मन्ये पुराणार्थं वरानने।
वेदाः प्रतिष्ठिताः सर्वे पुराणे नात्र संशयः।।[२]

अर्थात् मैं तो पुराणों के अर्थ को वेदों के अर्थ से भी अधिक महत्त्वपूर्ण मानता हूँ; क्योंकि समस्त वेद पुराणों में प्रतिष्ठित हैं।

अतः निश्चित रूप से पुराणों का अद्वितीय महत्त्व है। वेदोपवृंहण साहित्य के रूप में सुहृत्सम्मित पुराण–साहित्य का सामान्य महत्त्व प्रस्तुत इकाई के प्रारम्भिक अंशों में भी देखा जा सकता है फिर भी पृथक् से पुराणों का महत्त्व निम्नलिखित बिन्दुओं के आधार पर देखा जा सकता है।

पुराणों का ऐतिहासिक महत्त्व

ऐतिहासिक दृष्टि से पुराणों का अक्षुण्ण वैशिष्ट्य है। पुराणों के स्वरूप का वर्णन करते हुए इसके पञ्चलक्षणात्मक स्वरूप के साथ दशलक्षणात्मक स्वरूप में भी सर्ग–प्रतिसर्ग, वंश–

मन्वन्तर तथा वंशानुचरित का जो वर्णन किया गया है वह नितान्त ऐतिहासिक विवेचन है। जगत् की सृष्टि से लेकर प्रलय-पर्यन्त सम्पूर्ण वर्णन को अपना प्रतिपाद्य बनाने वाले पुराण वंश-वंशानुचरित का वर्णन विविध मन्वन्तरों के आलोक में करके भारतवर्ष का ऐतिहासिक चित्र प्रस्तुत करते हैं।

पुराणों का वैज्ञानिक महत्त्व

सृष्टि की उत्पत्ति स्वयं में एक अद्‌भुत रहस्य है। सृष्टि प्रक्रिया वैदिक काल से ही मनीषियों के चिन्तन का विषय रही है। विविध दृष्टियों से जगत् की सृष्टि-प्रक्रिया का उद्‌घाटन करने में विविध वैज्ञानिक तथा दार्शनिक अपना सम्पूर्ण जीवन समर्पित कर देते हैं। पुराणों ने इस सृष्टि-प्रक्रिया को अपनी विशिष्ट दृष्टि से निरूपित करके सृष्टि-विज्ञान को प्रकाशित करने का प्रयत्न किया है। सृष्टि के साथ-साथ प्रलय या प्रतिसर्ग का भी अद्‌भुत रहस्य पुराणों में अपने रूप में निरूपित देखा जा सकता है। वैज्ञानिक दृष्टिकोण से पुराणों का अपना विश्व-विज्ञान है जो अतिमहत्त्वपूर्ण है।

भौगोलिक महत्त्व

पुराणों का एक महत्त्वपूर्ण वर्ण्य विषय भुवन-कोश है। भुवन-कोश के अन्तर्गत विश्व के भूगोल का एक वृहत् अंश चित्रित किया गया है। चतुर्द्वीपा वसुमती तथा सप्तद्वीपा वसुन्धरा की सुन्दर परिकल्पना करके पृथिवी को समुद्रों से घिरी हुई द्वीपमयी प्रकृति के रूप में वर्णित किया गया है। जो प्रत्यक्ष देखे जा सकते हैं। जम्बूद्वीप, कुशद्वीप, शकद्वीप के रूप में विविध द्वीपों का वर्णन करके क्षीरसागर, मधुसागर तथा इक्षुसागर के रूप में जिन सागरों का वर्णन पुराणों में किया गया है वह आज की अनुसन्धान-परम्परा के लिए चेतावनी है। भारतवर्ष के नवखण्ड, विविध पर्वतों के साथ ब्रह्माण्ड का रोचक वर्णन करके सम्पूर्ण भुवन-कोश का चित्रण करने वाले पुराण भौगोलिक दृष्टि से अति महत्त्वपूर्ण हैं।

पुराणों का धार्मिक तथा दार्शनिक महत्त्व

धार्मिक दृष्टि से पुराणों का अपना विशिष्ट स्थान है। मूल रूप से वैदिक धर्म की ही प्रतिष्ठा तथा पोषण करने वाले पुराणों में विष्णु के विविध अवतारों की पुष्टि करके भागवत धर्म को अत्यधिक प्रतिष्ठा प्रदान की गयी है। अनेक पुराणों के नाम ही अवतारों की पृष्ठभूमि पर आधारित हैं। श्रीमद्‌भागवतपुराण, विष्णुपुराण, वामनपुराण, मत्स्यपुराण आदि भागवत धर्म की प्रतिष्ठा करने वाले प्रमुख पुराण हैं। भगवान् श्रीकृष्ण की विविध लीलाओं का वर्णन करते हुए पुराणों में नवधा भक्ति की प्रबल-प्रतिष्ठा देखी जा सकती है। भागवत धर्म के साथ ही शैव तथा शाक्त सम्प्रदाय की प्रबल प्रतिष्ठा भी पुराणों में स्पष्ट देखी जा सकती है। शिवपुराण, देवीभागवत पुराण तथा मार्कण्डेय पुराण इसके पुष्ट प्रमाण हैं। दुर्गा सप्तशती के माध्यम से शक्ति-पूजा का सर्वविदित वर्चस्व पौराणिक योगदान ही है। ब्रह्मा-विष्णु-महेश के साथ गणपति तथा सूर्य का अद्‌भुत वैभव वर्णित करके पुराणों में पञ्चदेव-प्रतिष्ठा की प्रबलतया स्वीकृति देखी जा सकती है। विविध देवी-देवताओं के नामों पर आधारित उन-उन पुराणों में उस देवता-विशेष की सर्वोत्कृष्टता सिद्ध करके भी मानों

पुराणों में सर्वशक्तिमान् परमेश्वर की व्यापकता को मुक्त कण्ठ से स्वीकार किया गया है। इसलिए **'एकं सद् विप्रा बहुधा वदन्ति'**[३] के रूप में प्रोक्त ऋग्वेद की उक्ति का **'एकं सद् विप्रा बहुधा भवति'** की उक्ति से सर्वथा समर्थन किया गया है। पुराणों में वर्णित ईश्वर के विविध रूप भी उनके बहुविध महान् ऐश्वर्य के अतिरिक्त और कुछ नहीं है। लोक कल्याण के लिए आवश्यकतानुसार विविध रूपों में ईश्वर का अवतरण परम रहस्य है। इसीलिए श्रीमद्भगवद्गीता में भगवान् श्रीकृष्ण ने स्वयं कहा है –

यदा यदा हि धर्मस्य ग्लानिर्भवति भारत।
अभ्युत्थानमधर्मस्य तदात्मानं सृजाम्यहम्।।[४]

अतः विविध अवतारों एवं विविध रूपों का अलग-अलग सङ्कीर्तन करने वाले पुराणों में असङ्ख्य अवतारों का उल्लेख तो है, परन्तु वे सभी सत्य के भण्डार भगवान् की लीला मात्र है –

अवतारा ह्यसंख्येया गुणसत्त्वनिधेर्द्विजाः।
यथाऽविदासिनः कुल्याः सरसः स्युः सहस्रशः।।[५]

अतः निष्कर्ष रूप में यह कहा जा सकता है कि शैली-भेद से वर्णित रूप भेदों में भी वस्तु भेद नहीं है। सभी पुराण एक ही परमतत्त्व का अपने-अपने रूप में वर्णन करते हुए परमपुरुषार्थ मोक्ष या भगवद्भक्ति के विविध मार्गों का निरूपण अवश्य करते हैं, परन्तु सभी का उद्देश्य या प्राप्तव्य एक ही है। वस्तुतः भारतीय संस्कृति, हिन्दू धर्म तथा शाश्वत्-सत्य का मणिकाञ्चन संयोग पुराणों में देखा जा सकता है। विविध प्रकार के व्रतों, तपों का वर्णन करने वाले पुराण विविध तीर्थों तथा तपस्थलों का वर्णन करके धार्मिक प्रतिष्ठा करते हैं। बहुचर्चित वेदान्त-दर्शन के अनेक रहस्य पुराणों में वर्णित हैं, अतः धार्मिक तथा दार्शनिक दृष्टि से पुराण अत्यधिक महत्त्वपूर्ण हैं। पुराणों के कारण ही धार्मिक सहिष्णुता का साम्राज्य भारतवर्ष में प्रतिष्ठित हो सका है।

पुराणों का सामाजिक तथा राजनैतिक महत्त्व

सामाजिक तथा राजनैतिक दृष्टि से भी पुराण कम महत्त्वपूर्ण नहीं हैं। पुराणों में रोचक आख्यानों तथा प्रसङ्गों के माध्यम से विविध सामाजिक मूल्यों का चित्रण किया गया है। विविध देवताओं की भक्ति में सम्पृक्त समाज अपने उत्थान का कारण होता है। अपनी-अपनी श्रद्धा तथा रुचि के अनुसार देवताओं की उपासना करने हेतु यहाँ वैदिक एक देववाद की प्रकारन्तर से स्थापना करके भी बहुदेववाद की प्रतिष्ठा की गयी है। इससे असङ्ख्य देवों के रूप में पुराण-साहित्य विविध रूपों में भगवद्भक्ति का सञ्चार करता है। अपनी-अपनी रुचि तथा योग्यता के अनुरूप कर्मों की स्वतन्त्रता के साथ सम्मानपूर्वक जीवन का सन्देश देने वाले पुराण सामाजिक दृष्टि से बहुत पूर्ण हैं।

विविध-राजवंशों तथा वंशानुचरित्रों का मुख्य रूप से वर्णन करने वाले पुराणों में केवल राजाओं के चरित्र के माध्यम से विविध राजनैतिक मूल्यों का सङ्केत ही नहीं किया गया है, अपितु स्पष्ट रूप से राजधर्म का कथन करके राजनीति की प्रबल प्रतिष्ठा भी पुराणों में की गयी है।

राजकुमार की शिक्षा-दीक्षा से लेकर राजा के अङ्गों-उपाङ्गों, साम-दाम-दण्ड भेद आदि धर्मों का विस्तृत निरूपण करके पुराणों में राजनैतिक रहस्यों का प्रतिपादन किया गया है। मत्स्य पुराण तथा विष्णुधर्मोत्तर पुराण के साथ-साथ श्रीमद्भागवतपुराण का इस दृष्टि से बहुत महत्त्व है। विष्णुधर्मोत्तर पुराण की पुष्करनीति, अग्निपुराणोक्त रामनीति के साथ पुराणों में प्राप्त कामन्दकीय नीति का राजनीति की दृष्टि से अत्यधिक महत्त्व है। गरुड़पुराण के कई अध्यायों में नीतिसार नामक उपन्यस्त प्रकरण भी प्रस्तुत दृष्टि से अत्यधिक महत्त्वपूर्ण है।

पुराणों का वास्तु शास्त्रीय तथा ज्योतिर्वैज्ञानिक महत्त्व

विविध पुराणों में चित्रित वास्तुशास्त्रीय तथा ज्योतिर्वैज्ञानिक वर्णनों को देखकर इनका वास्तुशास्त्रीय तथा ज्योतिर्वैज्ञानिक महत्त्व उद्घाटित किया जा सकता है। मन्दिरों तथा राजप्रासादों की भव्य रचना के रूप में मत्स्यपुराण में विस्तृत विधान प्राप्त होते हैं। वास्तुशास्त्र के अठारह आचार्यों में भृगु, अत्रि, विश्वकर्मा, मय तथा नारद आदि का वर्णन करके वास्तुशास्त्रीय व्यापक परम्परा का सङ्कीर्तन भी पुराणों में प्राप्त होता है। विष्णुधर्मोत्तर पुराण भी वास्तु विषयक विविध रोचक प्रसङ्ग उपस्थित करता है।

वास्तुशास्त्र के साथ-साथ श्रीमद्भागवतपुराण, गरुड़पुराण तथा देवीभागवतपुराण में यत्र-तत्र अनेक ज्योतिषीय रहस्य वर्णित हैं। फलित ज्योतिष के साथ ही इसमें, नक्षत्र-देवता, योगिनी-स्थिति, दशा-विवरण, दशा फल, राशियों का परिमाण, विभिन्न लग्नों में विवाह के फल तथा यात्रा एवं स्वप्न सम्बन्धी विविध शुभाशुभ फल व्यक्त किये गये हैं। नारदीय पुराण में नक्षत्रों के साथ-साथ ज्योतिष के सिद्धान्त गणित की चर्चा भी उपलब्ध होती है। ज्योतिष के ही अङ्ग के रूप में प्रतिष्ठित सामुद्रिक शास्त्र के अनेक रहस्य भी पुराणों में उल्लिखित हैं। सामुद्रिक शास्त्रीय अङ्गविद्या का सङ्कलन करके अग्निपुराण तथा गरुड़पुराण में मनुष्यों के शारीरिक लक्षणों के आधार पर विविध फल बताये गये हैं। अतः संक्षेप में कहा जा सकता है कि वास्तुशास्त्रीय तथा ज्योतिर्वैज्ञानिक दृष्टि से भी पुराणों का विशिष्ट महत्त्व है।

पुराणों का शास्त्रीय महत्त्व

पौराणिक वाङ्मय मानों भारतीय ज्ञान-विज्ञान एवं मनीषा का विश्वकोष है। जिस प्रकार आजकल विश्वकोष अर्थात् इन्साइक्लोपीडिया के माध्यम से विस्तृत ज्ञान-विज्ञान को संक्षेप में शिक्षित जन-सामान्य के ज्ञान वर्धन-हेतु प्रयुक्त किया जाता है उसी प्रकार व्याकरण, छन्द, काव्यशास्त्र, आयुर्वेद, वनस्पतिशास्त्र, कला एवं शिल्पशास्त्र के साथ-साथ विविध प्रकार की विलक्षण विद्याओं को एकैकशः प्रस्तुत करके मानो पुराण वाङ्मय विश्वकोष के रूप में प्रतिष्ठा प्राप्त करने योग्य है।

छन्द-व्याकरण तथा काव्यशास्त्र की दृष्टि से अनेक महत्त्वपूर्ण तथ्यों का निरूपण करके पुराणों में अलङ्कारशास्त्र, रसशास्त्र, छन्दःशास्त्र विषयक अनेक भौतिक विषयों का प्रवचन करके पुराणों ने साहित्यशास्त्र के विविध पक्षों की प्रतिष्ठा की गयी है। इस दृष्टि से अग्निपुराण का नाम

विशेषतया उल्लेखनीय है। काव्यशास्त्र के साथ ही आयुर्विज्ञान, वनस्पतिशास्त्र, प्राणिशास्त्र या जन्तुविज्ञान, धनुर्विद्या आदि विविध शास्त्रों के महत्त्वपूर्ण मार्मिक दृष्टान्त पुराणों का गौरव है।

निष्कर्ष

उपर्युक्त महत्त्वपूर्ण लोक-प्रचलित शास्त्रों के अतिरिक्त पुराणों में अनेक ऐसे वर्णन प्राप्त होते हैं जिनसे विदित होता है कि पौराणिक वाङ्मय में अनेक ऐसी विद्याएँ तथा कलाएँ विविध आख्यानों के रूप में चित्रित हैं जिन्हें आधुनिक विज्ञान भी अभी तक खोज नहीं पायी है। उदाहरणार्थ मार्कण्डेयपुराण में वर्णित अनुलेपविद्या[६] जिसमें ऐसे विशिष्ट पादलेप का सङ्केत है जिसे पैर में लगने से आधे दिन में ही सहस्रयोजन की दूरी तय करने की शक्ति आती है। इच्छानुरूप विविध रूपों को धारण करने की विद्या स्वेच्छारूपधारिणी विद्या,[७] अस्त्रों का रहस्य जानने वाली अस्त्रग्रामहृदयविद्या,[८] अमानवीय जीव-जन्तुओं की ध्वनियों का अर्थ समझने वाली सर्वभूतरुतविद्या,[९] निधियों को वश में करने वाली पद्मिनीविद्या,[१०] सर्वसिद्धिप्रदायिनीपराबालाविद्या, टेढ़ी वस्तु को सीधी करने की उल्लापनविद्या,[११] देवताओं को बुलाने वाली देवहूतिविद्या[१२] तथा स्पर्शमात्र से ही किसी को भी युवक बनाने वाली युवकराजविद्या[१३] तथा अग्निपुराणोक्त वशीकरणविद्या[१४] सहित अनेक चमत्कारी विद्याओं का आख्यान- पूर्वक निरूपण करके पुराण वाङ्मय आधुनिक विज्ञान के लिए अनुसन्धान की नयी-नयी दिशाओं का उन्मीलन करता है।

अतः निष्कर्ष रूप में यह कहा जा सकता है कि भारतीय धर्म तथा संस्कृति के स्वरूप को यथार्थतः जानने के लिए पुराण का अनुशीलन नितान्त अपेक्षित है। लोकमङ्गल की भावना से जन-जन-ग्राह्यता के विशेष उद्देश्य से प्रणीत पुराण धार्मिक, आर्थिक, सामाजिक, राजनैतिक, शास्त्रीय तथा वैज्ञानिक दृष्टि से अत्यधिक महत्त्वपूर्ण हैं; क्योंकि यह विश्वकोष के रूप में अखिल विश्व के लिए अप्रतिम वरदान है। आचार्य बलदेव उपाध्याय के अनुसार पुराण जनता का ग्रन्थ हैं।[१५] जिनका उद्देश्य सर्वजनोपयोगी ज्ञान को सर्वसुलभ बनाना है। अतः पुराण संस्कृत वाङ्मय के सुहृत्-सम्मित लोकोपयोगी महान् रत्न हैं जिनके निहित विविध ज्ञान-विज्ञानों का प्रयोग करके लोकमङ्गल की सुदृढ़ प्रतिष्ठा की जा सकती है।

सन्दर्भ-सूची

१. स्कन्दपुराण (रेवाखण्ड), १.२२-२३
२. नारदीयपुराण, २.१४.१७
३. ऋग्वेद, १.१६४.४६
४. श्रीमद्भगवद्गीता, ४.७
५. श्रीमद्भागवद्पुराण, १०.४.२६
६. मार्कण्डेयपुराण, ६१.८-२०
७. तत्रैव, अध्याय- २
८. तत्रैव, अध्याय- ६३
९. तत्रैव, ६४.३, मत्स्यपुराण, २०.२५
१०. मार्कण्डेयपुराण, ६४.१४
११. विष्णुपुराण, ५.२०.९
१२. भागवतपुराण, ९.२४.३२
१३. तदेव, ९.२२.११
१४. अग्निपुराण, १२३.२६
१५. संस्कृत साहित्य का इतिहास, पृ. ८

Shodh Navneet (International Peer-Reviewed Research Journal)
ISSN : 2321-6581, IIJ Impact Factor : 5.037, Vol. XIX, July - Dec. - 2022

वैदिक अर्थव्यवस्था का स्वरूप

डॉ. आभा द्विवेदी*

वैदिक वाङ्मय स्वस्थ सुदृढ़ तथा सर्वहित की भावना से परिपूर्ण उल्लासप्रद एवं प्रेरक विचारों का प्रस्तावक है। वैदिक चिन्तन सम्भूय समुत्थान की भावना का प्रेरक है, जिसमें सम्पूर्ण अनुष्ठान सामूहिकता से ओतप्रोत है। भारतीय चिन्तन में जीवन का वैज्ञानिक विश्लेषण कर त्रिवर्ग तथा पुरुषार्थ चतुष्ट्य (धर्म, अर्थ, काम, मोक्ष) की स्थापना मानव के मूल्य बनकर उभरे और इनमें से 'अर्थ' प्रत्यक्षतः जीवन से जुड़ा।

अर्थशास्त्र एक मानवीय विज्ञान है। इसका मूल उद्देश्य मनुष्य का विकास करना, उसके जीवनस्तर को ऊँचा उठाना तथा उसके कल्याण में वृद्धि करना है। मनुष्य धार्मिक, सामाजिक, राजनीतिक और आर्थिक अनेक क्रियाएँ करता है; परन्तु वह अपने जीवन का अधिकतम भाग आर्थिक क्रियाओं में व्यतीत करता है, जिनका अध्ययन करके अर्थव्यवस्था के विषय में पूर्णज्ञान प्राप्त होता है।

वैदिक युग के भारत में सामाजिक, आर्थिक, राजनीतिक विकास के साथ आवश्यकताएं बढ़ती गयीं। जिसकी पूर्ति हेतु धनोपार्जन की आवश्यकता हुई। ऋग्वेद से ज्ञात होता है कि प्रारम्भिक वैदिक काल के आर्य अपना निश्चित निवास स्थापित करने लगे थे। समाज के परिपोषण हेतु पशुपालन तथा खेती उनकी जीविका का मुख्य आधार एवं नदियाँ आवागमन का साधन थीं।

प्राचीन काल में कृषि के साथ ही पशुसम्पदा भी भारतवर्ष ही नहीं अपितु विश्व भर में वैभव का प्रतीक था। पशुसम्पदा दैनिक जीवन का अभिन्न अंग था। कृषि कर्म यातायात और भारवाहन के लिए बैल, अश्व आदि की आवश्यकता थी। प्राचीन आर्यों ने इन्हीं विशेषताओं को ध्यान में रखते हुए गोष्ठ, गोशाल, व्रज आदि की स्थापना की थी। गाय को अघन्या (अवध्य) बताते हुए उसे सौभाग्य का चिह्न बताया गया है।

ऋग्वेद एवं अथर्ववेद में राजा बेन के पुत्र राजा पृथी (पृथु) को कृषि विद्या का आविष्कारक बताया गया है। उसने कृषि विद्या के द्वारा अनेक प्रकार के अन्न उत्पन्न किये – **'तां पृथी वैन्योऽधोक तां कृषिं सस्यं चाधोक् पृथीयद् वा वैस्यः।** (अथर्ववेद, ८.१०.९४)।

वैदिक आर्यों के द्वारा अपने गोष्ठ में स्वस्थ सुन्दर तथा कल्याणमयी गायों का प्रसंग प्राप्त होता है जो गायें सबको समान लाभ पहुँचाती थीं। अतः सबको सतत्सा कहा गया है। देव, मनुष्य

* सहायक आचार्य एवं प्रभारी, संस्कृत विभाग, सिद्धार्थ विश्वविद्यालय, कपिलवस्तु, सिद्धार्थनगर (उ.प्र.)।

राक्षस सभी गोदुग्ध का समान लाभ उठाते थे।

वशां देवा उपजीवन्ति वशां मनुष्या उत।
वशेदं सर्वसमवत् यावत्सूर्यो विपश्यति।।

(अथर्ववेद, १०.१०.३४)

अथर्ववेद में गो धन के संरक्षण पर विशेष बल दिया गया है। किसी भी देश का विकास गोवंश पर ही निर्भर करता है। गो धन के अभाव में कृषि की कल्पना भी नहीं की जा सकती। यातायात, सामान ढोना, भूमि से जल निकालना, शर्करा उद्योग, चमड़ा उद्योग, गोवंश पर ही आधारित थीं। ईंधन की उपलब्धि भी गो से होती थी जो आज भी प्रासंगिक है, जिससे वनों का संरक्षण भी होगा। साथ ही साथ गोबर से चलने वाले Biogas Plants द्वारा आजकल जहाँ Cooking एवं प्रकाश करने का कार्य करेंगे वहीं इस विधि द्वारा बनी गोबर की खाद से कृषि उत्पादकता भी सुरक्षित एवं संवर्धित रहती थी जो आज भी पूर्णतः प्रासंगिक एवं उपयोगी है।

वेदों में प्रतिपादित इस अवधारणा की आज भी उपयोगिता है जैसा कि अथर्ववेद में कहा गया है –

अक्षैर्मादीव्यः कृषिभित्कृषस्व बहुमन्यमाना
तत्र गावः कि तवतत्र जायातन्म विचष्ट सवितायमर्यः।

(अथर्ववेद, ९०.३४.१३)

प्राचीन समय में शिल्प एवं उद्योग को आदर की दृष्टि से देखा जाता था। ऋग्वेद ४.२४.१० के अतिरिक्त परवर्ती संहिताओं में 'क्रयार्थक' क्री धातु का सामान्य प्रयोग हुआ है जिससे ज्ञात होता है कि उस समय व्यापारी साधारणतया वस्तु विनिमय हेतु व्यापार करते थे – '**क इमं दशाभिः ममेन्द्रं क्रीणाति धेनुभिः।**' (ऋग्वेद, ४.२४.१०)। वैदिक काल में १० गायों का क्रय मूल्य अपर्याप्त बताते हुए सहस्र एवं सौ गायों का क्रय मूल्य अपर्याप्त बताने से स्पष्ट होता है कि ऋग्वेद कालीन वाणिज्य में वस्तुओं का मूल्य भाव वाद–विवाद के पश्चात् ही निर्धारित होता था, किन्तु मूल्य निर्धारित हो जाने पर फिर उसमें कोई परिवर्तन नहीं किया जा सकता था। विनिमय के लिए गौ को माध्यम के रूप में प्रयुक्त किया जाता था और उसे मूल्य की इकाई माना जाता था साथ ही इस काल में विनिमय हेतु सिक्कों का भी उपयोग किया जाने लगा था।

ऋग्वैदिक काल में वस्तु विनिमय (आदान–प्रदान) का एक नियम था। जो वस्तु एक बार में बेच दी जाती थी उसे पुनः वापस नहीं किया जा सकता था अर्थात् वर्तमान समय के समान थी। यह प्रथा थी कि बेची गयी वस्तु को अविक्रीत नहीं माना जाता था – '**अव्रिकदम् भूयसावस्नमचरकनीयोऽविक्रीतो।**' (ऋग्वेद, ४.२४.९)। वेदों में लगभग १४० वृत्तियों (पेशों) का उल्लेख मिलता है।

ऋग्वेद से ज्ञात होता है कि एक ही परिवार के व्यक्ति विभिन्न उद्योग करते थे। मैं कारू

शिल्पी हूँ, पिता निषक् (वैद्य हैं) और माता चक्की पीसती हैं। घर की आय के हम विभिन्न काम करते हैं।

कारूरहे ततोभिषग् उपलप्रक्षिणी नना।
नानाधियो ससूयवोऽनुमा इव तस्थिम्।।

(ऋग्वेद, ९.११२.३)

वैदिक अर्थव्यवस्था कृषि प्रधान थी जिसमें समाज के आवश्यक कार्यवाहक वर्ग भी थे। स्वर्णकार, तुंतुवाय, माली, वैद्य, व्यापारी आदि।

अर्थशास्त्र की विनिमय प्रणाली के अन्तर्गत (Exchange) वस्तुओं के आदान-प्रदान का अध्ययन किया जाता है। जो यजुर्वेद के एक मंत्र 'देहिये ददाति' में तू मुझे दे, मैं तुझे देता हूँ। इसी न्याय के आधार पर अर्थशास्त्र की पूरी विनिमय प्रणाली व्यवहृत है और वेदों का यही सिद्धान्त अर्थशास्त्र की विनियम प्रणाली के रूप में समाज में चलता है। उत्तरोत्तर आर्थिक विकास के साथ विभिन्न शिल्प का विकास हुआ। उद्योग एवं व्यापार का विकास हुआ। अर्थतन्त्र का सबसे महत्त्वपूर्ण पहलू होता है - आर्थिक मूल्य। जिसके निर्धारण के विषय में कहा गया है कि वैदिक अर्थव्यवस्था में वस्तुओं के मूल्य बेचने से पहले समय ही तय हो जाता था बाद में उसमें कोई परिवर्तन सम्भव नहीं था। जिससे हम एक आर्थिक संरचना के द्वारा आर्थिक लाभ का मानक तय कर सकते हैं और मूल्य परिवर्तन न होने की बाध्यता से नैतिक पतन भी बाधित होता है जिससे पूरी निष्ठा के साथ उत्पन्न कार्य कर सकते हैं - **भूयसा वरनमचरत् कनीयः।** (ऋग्वेद, ४.२४.९)। राज्य की समस्त व्यवस्था का आधार वित्त या अर्थ ही है। अर्थ राजशाक्ति को स्थिरता प्रदान करता है।

यजुर्वेद में 'श्री' और 'लक्ष्मी' को विराट् पुरुष की दो पत्नियाँ कहा गया है - **श्रीश्व ते लक्ष्मीश्च पत्न्यौ।** (यजुर्वेद, ३१.२२)। यजुर्वेद में अन्यत्र अर्थ शब्द के लिए राय-रायि शब्द का प्रयोग है। रायि अथवा अर्थ केवल रूपये पैसे से ही नहीं अपितु इसके अन्तर्गत सन्तान, कृषि, भोजन, आवास, शिक्षण, व्यापार, शिल्प हस्तकारी उद्योग एवं कलाएँ आदि वे सभी तत्त्व सम्मिलित हैं जो मनुष्य की आवश्यकताओं को पूरा करते हैं और उसे आत्मनिर्भर बनाते हैं।

वेदों में धन को अत्यन्त महत्त्व की दृष्टि से देखा गया है; क्योंकि - **'वयं स्याम् पतयो रयीणाम्।** हम धन सम्पत्तियों के स्वामी बनें। यह धन कैसा हो? उसके विषय में वो कहता है - **इन्द्र क्षेष्ठानि द्रविणानि धेहि।** अर्थात् हे ईश्वर ! हम श्रेष्ठ धन ही प्राप्त करें। (ऋग्वेद, २.२१.६)। अन्यथा छल-कपट से अर्जित श्रेष्ठ धन न हो। इसके अतिरिक्त विविध व्यवसाय भी आजीविका के साधन के रूप में वेद में उल्लिखित हैं। ऋग्वैदिक काल में नदी की अपेक्षा, समुद्र यात्रा से व्यापारिक दृष्टिकोण से विशेष पूर्ति होकर धन प्राप्त किया जाता था। जलीय व्यापार को स्थलीय व्यापार से सुगम माना जाता था; क्योंकि यह कर्म श्रम एवं व्यय साध्य तथा आर्थिक उन्नति वाला होता था। यद्यपि ऋग्वैदिक काल में वाणिज्यिक विनिमय हेतु किसी मुद्रा जैसे प्रामाणिक

प्रतिमान के प्रचलित होने के विशेष प्रमाण ऋग्वेद में उपलब्ध नहीं है तथापि गौ के अतिरिक्त सुवर्ण निष्क अथवा हिरण्य (शतमान) को मुद्रा के स्थान पर प्रामाणिक विनिमय का साधन स्वीकार किया जा सकता है।

उपर्युक्त अध्ययन से ज्ञात होता हे कि ऋग्वैदिक कालीन सप्तसैन्धव प्रदेश की सामान्य आर्थिक स्थिति पूर्ण सन्तोषजनक थी। मानव के अनेक उत्पादक आर्थिक क्रियाओं, कृषि, पशुपालन, वाणिज्य आदि उद्योग धन्धे द्वारा आजीविका का निर्वाह करते हुए पर्याप्त धन सम्पन्नता प्राप्त कर ली थी। आर्यों का आर्थिक जीवन आदर्श पूर्ण था। कर्म द्वारा अर्थोपार्जन होता था। इस प्रकार यह स्पष्टतः कहा जा सकता है कि वैदिक अर्थव्यवस्था अत्यन्त सुदृढ़ अवस्था में थी।

सन्दर्भ-ग्रन्थ

- वैदिक साहित्य का इतिहास, वेदाचार्य डॉ. रघुवीर वेदालंकार, चौखम्भा प्रा.लि. वाराणसी, प्रथम संस्करण, २०१७
- ऋग्वैदिक भूगोल, डॉ. कैलाश द्विवेदी, साहित्य निकेतन, कानपुर, १९८५
- वेदों में विज्ञान, डॉ. बलराज शर्मा, विशनचन्द एण्ड सन्स, दिल्ली, १९९७
- ऋग्वेद संहिता (सायण भाष्य), हिन्दी अनुवादक - पं. रामगोविन्द त्रिवेदी, चौखम्भा विद्याभवन, वाराणसी।
- वैदिक माइथोलॉजी, ए.ए. मैकडॉनल, अनुवादक - रामकुमार राय, चौखम्बा विद्यालय (वैदिक पुराकथा शास्त्र) भवन वाराणसी, २०१४
- वैदिक साहित्य एवं संस्कृति, डॉ. कपिलदेव द्विवेदी, विश्वविद्यालय प्रकाशन, वाराणसी, २०१८

Shodh Navneet (International Peer-Reviewed Research Journal)
ISSN : 2321-6581, IIJ Impact Factor : 5.037, Vol. XIX, July - Dec. - 2022

जगद्विषयकचिन्तन के सन्दर्भ में विविध मत-मतान्तरों की वेदमूलक समीक्षात्मिकी विवेचना

डॉ. आशुतोष पारीक*

शोधसार

संसार की विशालता, विविधता, गम्भीरता, नियमबद्धता और विस्तार को देखकर प्राणी के मन में यह प्रश्न उठना स्वाभाविक है कि यह संसार किसने बनाया और किसके लिए? जीवात्मा के रूप में स्वयं को इस सृष्टि की वस्तुओं का उपभोग करते हुए देख हम यह आसानी से समझ सकते हैं कि इस सृष्टि का निर्माण जीवात्मा के भोग के लिए किया गया, किन्तु इस सृष्टि का निर्माता कौन है इस प्रश्न का उत्तर थोड़ा कठिन हो जाता है; क्योंकि जब सृष्टि की रचना हुई तो यह प्रश्नकर्ता उपस्थित नहीं था और फिर अनायास ही एक अदृश्य शक्ति के रूप में परमात्मा का चिन्तन होने लगता है। परमात्मा का अस्तित्व उसकी अदृश्य शक्तियों के कारण कभी स्पष्ट और कभी अस्पष्ट रहता है। इसी कारण विचारकों ने ईश्वर के चिन्तन के लिए अनेक प्रकल्पों और विकल्पों का चयन किया। इन्हीं विकल्पों ने अद्वैत, द्वैत, शुद्धाद्वैत और त्रैत जैसे सिद्धान्तों को बल दिया।

परमात्मा को जानने की इच्छा ने उसे अद्वितीय तो बनाया, किन्तु उसको स्वयं से पृथक् रूप में देखने का साहस नहीं किया। स्वयं के अकेलेपन और भय के कारण हमने परमात्मा को स्वयं से इस प्रकार जोड़ लिया कि परमात्मा, जीवात्मा और जगत् की पृथक्-पृथक् सत्ता से इनकार करने लगे। किन्तु महर्षि दयानन्द ने हमें इस भय, आशंका से दूर करने का अप्रतिम प्रयास किया और त्रैतवाद के माध्यम से परमात्मा, जीवात्मा और जगत् का स्वतन्त्र अस्तित्व प्रतिपादित और प्रमाणित किया। जगद्विषयक इन्हीं विविध विचारों के संकलन और वेदमूलक समीक्षा का प्रयास है यह शोधपत्र।

बीजशब्द - परमात्मा, जीवात्मा, जगत्, एकत्ववाद, द्वैतवाद, त्रैतवाद, सत्, असत्, स्वतन्त्र, परतन्त्र, परोक्ष, प्रत्यक्ष, सत्य, सत्यान्वेषी, उपादान कारण, निमित्त कारण, साधारण कारण।

हिरण्मयेन पात्रेण सत्यस्यापिहितं मुखम्।
तत्त्वं पूषन्नपावृणु सत्यधर्माय दृष्टये।।[१]

दार्शनिक जगत् के लिए यह सृष्टि, उसकी उत्पत्ति और ईश्वर व आत्मा से इसका सम्बन्ध

* सहायक आचार्य, संस्कृत विभाग, सम्राट पृथ्वीराज चौहान राजकीय महाविद्यालय अजमेर, राजस्थान

आदिकाल से ही कौतुहल का विषय रहा है। अतः दार्शनिकों ने प्रायः इन्हीं तीन तत्त्वों ईश्वर, आत्मा और जगत् के पारस्परिक सम्बन्धों का ही विविध प्रकार से मन्थन किया है। जगत् के विशाल और आश्चर्यपूर्ण विस्तार को देखकर विस्मित हुआ प्राणी ईश्वर से कैसे जुड़ सकता है, यह दार्शनिकों के चिन्तन का सबसे महत्त्वपूर्ण विषय रहा है।

भारतीय दर्शन आत्मा एवं ईश्वर के माध्यम से भौतिक जगत् की ओर देखने की बात करता है, तो पाश्चात्य दर्शन भौतिक जगत् से आत्मा और ईश्वर को जानने का प्रयास करता है। मार्ग व आधार भिन्न होने पर भी वैज्ञानिक दृष्टि से यह चिन्तन अत्यावश्यक हो जाता है कि सृष्टि की उत्पत्ति में मूलभूत तत्त्व कितने हैं? इस हेतु प्रचलित निम्न सिद्धान्तों पर विचार किया जा सकता है–

१. एकत्ववाद (Monism) – डॉ. सत्यव्रत सिद्धान्तालंकार के शब्दों में "एकत्ववाद वह सिद्धान्त है जो कहता है कि या तो जड़ से ही सृष्टि का निर्माण हुआ या चेतन से ही।"[२] जड़ से ही सृष्टि की उत्पत्ति मानने वालों के साथ समस्या यह है कि ये आत्मा व परमात्मा जैसे तत्त्वों को मानते ही नहीं है। यह धारणा प्राचीन युग के चार्वाकों व वर्तमान युग के जड़वादियों (भौतिकवादियों (Materialists) की है। यदि चेतन से सृष्टि का निर्माण मानें तो चेतनतत्त्व से ही भौतिक द्रव्य (Matter) की उत्पत्ति मानी जाएगी। ऐसे मत के विचारक भौतिक द्रव्य (Matter) व जीवात्मा (Soul) की पृथक् या स्वतन्त्र अनादि सत्ता नहीं मानते। इस विचार को आदिगुरु शंकराचार्य (७८८–८२० ई.) ने वैदिक सिद्धान्तों के अन्तर्गत व पाश्चात्य दार्शनिकों में मुख्यतः स्पाइनोज़ा (१६३२–१६७७ ई.) तथा बर्कले (१६८५–१७५३ ई.) तथा यहूदी, ईसाई व मुसलमानों ने पुष्ट किया। इसी मत में अभाव अथवा मानसी सृष्टि से जगत् व आत्मा को उत्पन्न कर दिया गया है।

चार्वाक का एकत्ववाद – 'चारु वाक्' चार्वाक के अनुसार भौतिक द्रव्य की ही एकमात्र सत्ता है। चार्वाक दर्शन के प्रवर्तक आचार्य बृहस्पति के अनुसार न कोई ईश्वर है, न जीव है, यह देह ही सभी कुछ है, यह देह नष्ट हुआ तो सब–कुछ समाप्त हो गया। उनके जीवन का लक्ष्य था–

यावज्जीवेत् सुखं जीवेत् ऋणं कृत्वा घृतं पिबेत्।
भस्मीभूतस्य देहस्य पुनरागमनं कुतः।।[३]

पृथ्वी, जल, अग्नि और वायु इन चार जड़ पदार्थों से ही सृष्टि की उत्पत्ति के विषय में इनका मत है कि जिस प्रकार दही और गोबर मिला देने से छोटे–छोटे कीड़े उत्पन्न हो जाते हैं, उसी प्रकार इन तत्त्वों के संयोग से जीवन उत्पन्न हो जाता है। चार्वाक लोग इसे 'भूतचैतन्यवाद' कहते हैं अर्थात् महाभूत (पृथ्वी, जल, तेज, अग्नि और वायु) ये महाभूत ही चैतन्य उत्पन्न कर देते हैं। सृष्टि चक्र के संयोग या वियोग में किसी भी अन्य शक्ति या ईश्वर की आवश्यकता नहीं है; क्योंकि यह परमाणुओं का अपना स्वभाव है। अन्न न खाने अर्थात् लम्बे समय तक भूखे रहने पर चेतना शक्ति का क्षीण होना तथा अन्न सेवन प्रारम्भ करने पर चेतना का लौट आना, शरीर की दुर्बलता में ही

स्वयं के दुर्बल होने का अहसास होना (मैं स्वस्थ हूँ/ मैं दुर्बल हो रहा हूँ) तथा ब्राह्मी, घृतादि बुद्धिवर्धक औषधियों के सेवन से बौद्धिक एवं मानसिक विकास का होना आदि तथ्य इसी बात की पुष्टि करते हैं कि शरीर ही आत्मा है।

समीक्षा - १. जीवन चेतना उत्पन्न नहीं होती, अपितु मात्र प्रकट होती है। गोबर तथा दही में चेतन तत्त्व पहले से मौजूद हैं। अतः भूतचैतन्यवाद का सिद्धान्त ही अनुचित हो जाता है। २. आधुनिक विज्ञानी न्यूटन द्वारा प्रतिपादित अभिप्रेरणा का नियम (Law of Motion) भी कहता है कि जड़ पदार्थ को यदि गति दे दी जाये और उस गति में बाधा उपस्थित न हो तो वह निरन्तर उसी गति में गम्यमान रहेगा। किन्तु यहाँ भी यह जान लेना आवश्यक है कि सृष्टि के प्रारम्भ में यदि ये पदार्थ 'स्थिति की अवस्था' में थे तो गति की अवस्था में स्वयं कैसे आ गये? अतः पदार्थों का स्वभाववाद भी उचित नहीं माना जा सकता। पदार्थों की गति या अवस्थिति के लिए चेतना अत्यावश्यक है और यही चेतन विश्व में ईश्वर और शरीर में आत्मा है।

अतः डॉ. सत्यव्रत सिद्धान्तालंकार के शब्दों में "सिर्फ परमाणुओं के संयोग-वियोग से सृष्टि-रचना अपने आप होती रहती है, आत्मा-परमात्मा की आवश्यकता नहीं है, केवल भौतिक द्रव्य से काम चल जाता है, युक्ति की कसौटी पर कसने से ठीक नहीं ठहरता। ईश्वर, जीव एवं प्रकृति तीनों को मानना पड़ता है।"[४]

आधुनिक विज्ञान का एकत्ववाद

आधुनिक विज्ञान के भौतिकवाद या जड़वाद (Materialism) के अनुसार भौतिक द्रव्य ही एकमात्र सत्ता है। किन्तु वर्तमान विज्ञान की प्रगति के साथ-साथ इनके सिद्धान्तों में भी आमूलचूल परिवर्तन आ जाता है। आधुनिक विज्ञान के सृष्टिविषयक सिद्धान्त को प्राचीन चार्वाक सिद्धान्तों की वैज्ञानिक व विस्तारित व्याख्या भी कहा जा सकता है। प्रारम्भिक विज्ञान, जगत् में निहित प्रत्येक पदार्थ की पृथक् भौतिक सत्ता मानता था, परन्तु रॉबर्ट ब्वायल (१६२७-१६९१ ई.) ने मूलभूत ९२ स्थायी भौतिक तत्त्वों की चर्चा की जिनकी संख्या १०५ तक पहुँच गई। किन्तु कालान्तर में इनके भी विभाजित हो जाने के कारण इन्हें भी मूल तत्त्व न मानकर अब इलेक्ट्रॉन, प्रोट्रॉन और न्यूट्रॉन को मूल तत्त्व माना जाने लगा। अब इन तीनों को ही विद्युतीय शक्ति की तरंगों के पुंज के रूप में स्वीकार किया जाने लगा। अतः आधुनिक विज्ञान के क्रमिक विकास को बताते हुए डॉ. सत्यव्रत सिद्धान्तालंकार लिखते हैं कि "विज्ञान के क्रमिक विकास में पहले 'मूल पदार्थों का सिद्धान्त' (Element), उसके बाद 'परमाणु-सिद्धान्त' (Atomic Theory) और तदुपरान्त 'वैद्युतिक तरंग का सिद्धान्त' (Electronic Wave Theory) आया। पार्थिव जगत् क्या है? वर्तमान विज्ञान के अनुसार यह सम्पूर्ण पार्थिव जगत् वैद्युतिक तरंगमय है, ऊर्जामय है।"[५]

जीवन के सम्बन्ध में भौतिकवाद के सिद्धान्तों को स्पष्ट करते हुए डॉ. सत्यव्रत सिद्धान्तालंकार लिखते हैं कि "भौतिकवाद का कथन है कि 'जीवात्मा' जैसी कोई सत्ता नहीं है, जड़ से चेतन का आविर्भाव हो जाता है। भौतिकवाद तथा ब्रह्मवाद में यह अन्तर है कि भौतिकवाद जड़

से चेतन की उत्पत्ति मानता है तथा ब्रह्मवाद (वेदान्त) चेतन से जड़ की उत्पत्ति मानता है दोनों ही 'एकत्ववादी सिद्धान्त' हैं।"[६]

आधुनिक विज्ञान का विकासवाद जीवद्रव्य 'प्रोटोप्लाज़्म' के विश्लेषण से यह स्पष्ट करना चाहता है कि उसमें कार्बन ५५ भाग + ऑक्सीजन २३ भाग + नाइट्रोजन १४ भाग + हाइड्रोजन ७ भाग + गन्धक, पोटेशियम, सोडियम आदि १ भाग = १०० के मिश्रण से जीवन की उत्पत्ति होती है। रूसी वैज्ञानिक महिला लपेशिन्स्काया ने अपने एक प्रयोग में हाइड्रा नामक जीव को खरल में पीस कर उसे परखनली में भर लिया तथा उसमें कुछ पोषण तत्त्वों को डाला तो आजीवित शरीर से जीवित हाइड्रा के चिह्न प्रकट होने लगे। अतः ऐसे ही परीक्षणों के आधार आधुनिक विज्ञानी मानते हैं कि जड़ में चेतन को उत्पन्न करने की सामर्थ्य है इसलिए आत्मा के अस्तित्व को मानने की कोई आवश्यकता नहीं है।

अतः डॉ. सत्यव्रत सिद्धान्तालंकार के शब्दों में "भौतिकवाद, जड़वाद या Materialism का कहना है कि सृष्टि की अन्तिम सत्ता न आत्मा है, न परमात्मा है, यह सत्ता विद्युत् की तरंगों का अविरल प्रवाह है। ये तरंगें तीन प्रकार के विद्युत्कणों से बनती हैं जिन्हें इलेक्ट्रॉन, प्रोट्रॉन और न्यूट्रॉन कहा जाता है। इस प्रवाह की गति विच्छेदयुक्त है, यह प्रवाह सर्प गति से न चलकर मेंढक की कुदान की तरह मंडूक प्लुति न्याय से प्रवाहित हो रहा है।"[७]

समीक्षा - १. गति देने वाले के बिना गति नहीं हो सकती। विच्छेदयुक्त प्रवाह का पुनः संचालन स्वयमेव कैसे सम्भव है? २. परमाणुओं की संख्या का निश्चित न हो पाना तथा विज्ञान के निरन्तर बदलते सिद्धान्तों ने सृष्टि के निर्माण और निर्माता के विषय में विविध तर्क प्रस्तुत किए हैं। अतः ऐसी स्थिति में ईश्वर जैसे गूढ चिन्तन से विज्ञान अभी बहूत दूर है। ३. सौरमण्डल की निश्चित गति का होना भी बुद्धि और चेतन शक्ति के होने का प्रमाण देता है। ४. प्रोटोप्लाज़्म के विश्लेषण से यदि विज्ञान सृष्टि के प्रारम्भ को जान चुका है तो वह स्वयं इस संमिश्रण से जीव की उत्पत्ति क्यों नहीं कर पाया है? ४. जड़ से जीवन की उत्पत्ति को 'अजीवनात् जनन' (Abiogenesis) तथा जीवन से ही जीवन की उत्पत्ति को 'जीवनात् जनन' (Biogenesis) कहते हैं। यदि जड़वाद कोई वाद है तो उससे यह सिद्ध होना आवश्यक है कि जड़ से जीवन उत्पन्न हो सकता है। हाइड्रा को खरल में पीस कर उसके मृतांश से पुनः जीवन की उत्पत्ति भी चार्वाकादि के गोबर और दही में कीटाणुओं की उत्पत्ति के समान ही है।

फलतः यही मानना श्रेयस्कर है कि जैसे भौतिक द्रव्य के अतिरिक्त विश्व में कोई चेतन सत्ता है जिसे 'ईश्वर' कहा जाता है, वैसे ही प्राणी में भी देह के अतिरिक्त कोई जीवन सत्ता है जिसे 'आत्मा' कहा जाता है।

एकत्ववाद - चेतन शक्ति की ही एकमात्र सत्ता

भौतिक द्रव्य की नहीं, अपितु चेतन की ही एकमात्र सत्ता है। चेतन को ही सम्पूर्ण सृष्टि का एकमात्र आधार मानने वाले एकत्ववादियों को तीन भागों में विभाजित किया जा सकता है -

१. आचार्य शंकर का वेदान्त या सर्वेश्वरवाद या अद्वैतवाद (Pantheism) २. पश्चिम में बर्कले का प्रत्ययवाद (Idealism) ३. यहूदी, ईसाई, मुसलमानों का सिर्फ़ परमात्मविषयक विचार।

१. **आचार्य शंकर का अद्वैतवाद -** 'एको ब्रह्म द्वितीयो नास्ति', 'एकमेवाद्वितीयम्' शांकरमत की ये प्रसिद्ध उक्तियाँ ब्रह्म को ही एकमात्र सत्ता मानती हैं। श्रीशंकराचार्य ने (७८८-८२० ई.) सत्कार्यवाद के माध्यम से कार्य में कारण की सत्ता को स्वीकार कर ब्रह्म की स्थायी सत्ता को स्वीकार किया है। वह शुद्ध सत्ता जो संसार के हर तत्त्व में विद्यमान है, वही ब्रह्म है। कार्यरूप समस्त जगत् इसी कारणरूप चेतन ब्रह्मसत्ता से आलोकित एवं प्रवाहित हो रहा है। सत्कार्यवाद के दो रूप हैं - परिणामवाद तथा विवर्तवाद। शंकराचार्य के सर्वेश्वरवाद, अद्वैतवाद या एकत्ववाद का दूसरा आधार है - **'ब्रह्म सत्यं जगन्मिथ्या।'** शांकरमत सांख्य के परिणामवाद के स्थान पर विवर्तवाद को मानते हुए कहता है कि जगत् ब्रह्म का परिणाम नहीं, अपितु उसका विवर्त है, भ्रममात्र है, मिथ्यात्व है। अतः वे जगत् को मिथ्या स्वीकार कर ब्रह्म की ही एकमात्र सत्ता को स्वीकार करते हैं। जगत् की प्रतीति को ही अध्यास अर्थात् मानसिक आरोपणमात्र कहा गया है। इस अध्यास के कारण ही विवर्त में वास्तविकता, रज्जु में सर्प और शुक्ति में रजत का भ्रम उपस्थित हो जाता है। अर्थात् जब हम जगत् के मिथ्यात्व को जान लेंगे तो स्वयं ही ब्रह्म को प्राप्त कर लेंगे। ब्रह्म के एकत्व से नानात्व की उत्पत्ति के लिए शंकराचार्य ने माया की कल्पना की है। यह न तो सत् है और न ही असत्; क्योंकि **'सत् चेत् न बाध्येत, असत् चेत् न प्रतीयेत।'** अतः अनिर्वचनीय सदसद् रूप से भिन्न ब्रह्म की शक्तिविशेष माया या अविद्या के कारण जगत् के विविध स्वरूप का भ्रममात्र होता है। इस माया की दो शक्तियाँ हैं - आवरण तथा विक्षेप। आवरण अर्थात् वस्तु पर आवरण डाल देना अथवा ढक देना। विक्षेप अर्थात् उस वस्तु के स्थान पर किसी अन्य वस्तु का दिखने लगना। अतः ब्रह्म की यह मायावी शक्ति सर्वप्रथम ब्रह्म के वास्तविक स्वरूप को आवृत्त कर देती है तथा विक्षेप के द्वारा प्रपंच को दिखाने लगती है। वेदान्त के अनुसार ब्रह्म माया से आवृत्त होकर सृष्टि की उत्पत्ति, स्थिति और प्रलय में प्रवृत्त होता है, तब उसकी 'ईश्वर' संज्ञा होती है। न्याय और वेदान्त में ईश्वर विषयक यही अन्तर है कि न्याय में ईश्वर सृष्टि का निमित्त कारण है, किन्तु वेदान्त में ईश्वर सृष्टि का उपादान कारण है। उपाधिविशिष्ट ब्रह्म ही जीव है। अतः कहा गया है "श्लोकार्धेन प्रवक्ष्यामि यदुक्तं ग्रन्थकोटिभिः ब्रह्म सत्यं जगन्मिथ्या जीवो ब्रह्मैव नापरः।" जगत् की उत्पत्ति के प्रयोजन के विषय में वेदान्तियों का मत है कि यह सम्पूर्ण जगत् लीलामात्र है। मिथ्या जगत् के वास्तविक और यथार्थ लगने के कारण के विषय में वेदान्त कहता है कि सत्ता तीन प्रकार की होती है- १. पारमार्थिकी सत्ता (त्रिकालाबाधित, ब्रह्म की सत्ता), २. प्रतिभासिकी सत्ता (प्रमाणादि से बाधित, खण्डित सत्ता यथा रज्जु में सर्पादि की सत्ता), ३. व्यावहारिकी सत्ता (जो असत् हो किन्तु सत् मान ली जाये यथा - संसार की सत्ता, बिन्दु)।

समीक्षा - १. **'एकोऽहं बहुस्याम् प्रजायै'** सुनने में अच्छा लगने पर भी तात्त्विक दृष्टि से

सही नहीं लगता। ब्रह्म एक से द्वित्व किस प्रकार हुआ इसका संतोषजनक उत्तर वेदान्त नहीं दे पाता। माया को ब्रह्म की सहचारिणी शक्ति मानने पर तो ब्रह्म भी एक नहीं रह पाया है। न ही माया नित्य ब्रह्म की सहचारिणी शक्ति होने के कारण अनित्य रही। २. सम्यक् निर्वचनीय ब्रह्म के साथ अनिर्वचनीय व विरोधी स्वभाव की माया को रखना सैद्धान्तिक रूप से ही त्रुटिपूर्ण हो जाता है। ३. अद्वैत के सभी द्रष्टान्त द्वैतपरक हैं। भ्रान्ति दो अलग-अलग सत्ता वाली वस्तुओं में होती है। जो है ही नहीं उसमें भ्रान्ति कैसे उत्पन्न हो सकती है? रज्जु में सर्प का भ्रम इसलिए है, क्योंकि संसार में ये दोनों मौजूद हैं। ३. इस जगत् को ब्रह्म की लीलामात्र कहना भी अत्यन्त ही संकुचित व हास्यास्पद विचार है। ४. शंकराचार्य का कहना कि सृष्टि परमार्थ में तो असत् है किन्तु व्यवहार में सत्।[८] यह भी एक वाग्विलासमात्र है।

बर्कले का प्रत्ययवाद (Idealism) - श्रीशंकराचार्य के समान ही पाश्चात्य जगत् में श्री बर्कले (Berkley- 1685-1753 AD) अद्वैतवाद के प्रबल समर्थक थे। बर्कले से पहले हॉब्स, डेकार्ट तथा लॉक ने भी इस सिद्धान्त का प्रतिपादन किया था। इस सिद्धान्त के अनुसार जगत् के पदार्थों की अपने-आप में कोई सत्ता नहीं है, अगर द्रष्टा न रहे तो दृश्य भी नहीं रहता अर्थात् द्रष्टा के कारण ही दृश्य पदार्थ की सत्ता है। अतः विषय/कर्म/Object की सत्ता विषय/कर्ता/Subject देखने वाले की सत्ता के आधार पर खड़ी है। इन्द्रियों के न प्रत्यक्ष किए जा सकने पर शब्द, स्पर्श, रूप, रस, गन्ध की स्वतन्त्र सत्ता नहीं है। डॉ. सत्यव्रत सिद्धान्तालंकार के शब्दों में "बर्कले जगत् को अपने मन की उपज मानता है, क्योंकि कारण-कार्य के नियम के अनुसार मन आँख को, आँख किरण को, आगे-आगे सत्ता प्रदान करती जाती है, क्योंकि यह सारी सत्ता तभी सत्तावान् है जब मन इसे दृश्य कोटि में लाकर इसे अस्तित्व देता है इसलिए दृश्य जगत् का स्वतन्त्र अस्तित्व नहीं है, यह मन की उपज है।"[९] इसलिए बर्कले का स्पष्ट मत है कि हमारा समस्त ज्ञान 'प्रत्यय' (Idea) मात्र है, अतः संसार को ठोस जगत् नहीं माना जा सकता।

समीक्षा - शब्दकोशकार जॉनसन (१७०९-१७८४ ई.) ने इस सिद्धान्त का खण्डन करते हुए एक पत्थर पैर पर पटक कर कहा कि यदि यह पत्थर मेरे मन की उपज है तो मुझे चोट क्यों लगती है? हमारे प्रत्ययमात्र यह जगत् नहीं है। जगत् भी सत्य है और उसका द्रष्टा आत्मा भी। तथा यदि ये दोनों हैं तो इनका निर्मात्मा परमात्मा भी है।

यहूदी, ईसाई तथा मुसलमानों का एकेश्वरवाद एवं समीक्षा

इन तीनों का एकत्ववाद प्रायः एक समान ही है, क्योंकि तीनों मानते हैं कि ईश्वर ने कहा और हो गया। अभाव से भाव, नास्ति से अस्ति की उत्पत्ति सम्भव नहीं चाहे वह मनुष्य हो या ईश्वर। सांख्य के सत्कार्यवाद के अनुसार कार्य से पहले कारण का होना आवश्यक है अन्यथा कार्य की उत्पत्ति असम्भव है। 'गीता रहस्य' में तिलक लिखते हैं - "सांख्यदर्शन ने जिस सत्कार्यवाद के सिद्धान्त का प्रतिपादन किया है, गीता की उसके सम्बन्ध में कुछ अधिक और ज़ोरदार उक्ति है - '**नासतो विद्यते भावः**' अर्थात् जो है ही नहीं उसका कभी अस्तित्व नहीं हो

सकता।''[१०]

२. **द्वैतवाद (Dualism) -** जीव (Soul) व भौतिक द्रव्य अर्थात् प्रकृति (Matter) इन दोनों ही मूलभूत सत्ताओं को स्वीकार करता है - द्वैतवाद। भारतीय दर्शन में सांख्यदर्शन को इसका प्रवर्तक माना जाता है। महर्षि कपिल प्रणीत सांख्यशास्त्र को 'निरीश्वर सांख्य' कहा जाता है। प्राचीन ग्रन्थों ने जहाँ महर्षि कपिल को 'आदिविद्वान्' कहा वहीं शंकराचार्य ने उनके निरीश्वरवाद का खण्डन करते हुए उन्हें 'प्रधान मल्ल' कहा। जबकि स्वामी दयानन्द ने महर्षि कपिल और उनके सांख्य दर्शन को 'सेश्वरवादी' कहा। प्रकृति व पुरुष अर्थात् जड़ व चेतन के प्रतिपादक होने के कारण सांख्य में ईश्वर चिन्तन का उल्लेख न होना ही उपयुक्त था।

महर्षि कपिल के सांख्यदर्शन का प्रकृति-पुरुष सिद्धान्त विविध शास्त्रों में अलग-अलग नामों से पुकारा जाता है। यथा- बृहदारण्यकोपनिषद् में 'क्षर-अक्षरविचार'[११] श्रीमद्भगवद्गीता में 'क्षेत्र-क्षेत्रज्ञ विचार'[१२] कठोपनिषद् में 'रथ-रथी विचार'[१३] वैदिक संस्कृति के भोक्ता-भोग्य, द्रष्टा-दृश्य आदि सिद्धान्त भी द्वैतवाद को ही पोषित करते हैं। यहाँ क्षर, दृश्य, भोग्य, रथ, प्रकृति एवं क्षेत्रादि शब्द नश्वर एवं परिवर्तनशील जड़प्रकृति के तथा अक्षर, द्रष्टा, भोक्ता, रथी, पुरुष, क्षेत्रज्ञादि चेतनशक्तिसम्पन्न परमात्मतत्त्व के प्रतिपादक हैं।

आत्मा अर्थात् पुरुष को जड़ प्रकृति से भिन्न मानने के लिए सांख्यकार की युक्तियों को सांख्यकारिकाकार ईश्वरकृष्ण ने निम्न प्रकार अभिव्यक्त किया है -

संघातपरार्थत्वात् त्रिगुणादिविपर्ययात् अधिष्ठानात्।
पुरुषोऽस्ति भोक्तृभावात् कैवल्यार्थं प्रवृत्तेश्च।।[१४]

द्वैतवाद की समीक्षा

जड़ प्रकृति नाना रूपों में दिखलाई पड़ती है, किन्तु सांख्यमत में तो चेतनस्वरूप पुरुष का भी नानात्व सिद्ध किया गया है। तो क्यों न इस चेतन शक्ति को अल्पज्ञ और सर्वज्ञ दो रूपों में देखा जाये। अर्थात् जड़ मूलसत्ता का नाम 'प्रकृति', अल्पज्ञ चेतनसत्ता का नाम 'आत्मा' तथा सर्वज्ञ चेतनसत्ता का नाम 'परमात्मा'। सांख्यकार का कुछ ऐसा ही अभिमत रहा होगा, किन्तु आत्मा व परमात्मा की समानुभूति के कारण ही दोनों में से एक तत्त्व की ही अभिव्यंजना की गई। पुरुष, क्षेत्रज्ञ, अक्षरादि पिण्ड रूप में आत्मा और ब्रह्माण्ड रूप में परमात्मा पर घटित होते हैं और इसी कारण योगदर्शन में महर्षि पतंजलि ने ईश्वर को पुरुषविशेष कहा - '**क्लेशकर्मविपाकाशयैरपरामृष्ट पुरुषविशेष ईश्वरः।।**'[१५] अतः कहा जा सकता है कि द्वैतवाद को मानने वाले सांख्य, उपनिषद् और गीता भी मूल रूप में ईश्वर, जीव और प्रकृति इन तीनों मूल सत्ताओं को स्वीकार करते हैं।

३. **त्रैतवाद या बहुत्ववाद (Triadism or Pluralism) -** वैदिक सिद्धान्त मूलतः इसी सिद्धान्त का पोषक है। त्रैतवाद अर्थात् तीन मूलभूत सत्ताओं ईश्वर, आत्मा और प्रकृति को सृष्टि का आधार स्वीकार किया गया है। आधुनिक काल के स्वामी दयानन्द ने त्रैतवाद को ही वैदिक सृष्टि

प्रक्रिया का मूलभूत सिद्धान्त माना। साथ ही रामानुजाचार्य (जन्म १०१७ ई.) तथा मध्वाचार्य (जन्म १११९ ई.) भी ईश्वर और आत्मा की पृथक्-पृथक् सत्ता मानते थे।

तीन कारण

		अरस्तु (३८५-३२२ ई.पू.)	आधुनिक नाम	उदाहरण (घट)	सृष्टि के विषय में कारणविचार
उपादान कारण	समवायि कारण	Causa Materialis	Material Cause	मिट्टी	प्रकृति/परमाणु
निमित्त कारण	निमित्त कारण	Causa Efficiens	Efficient Cause	कुम्हार	ब्रह्म/ईश्वर
साधारण कारण (आकारिक कारण)	असमवयि कारण	Causa Formalis	Formal Cause	चाक आदि	ब्रह्माण्ड में सूर्य, चन्द्र, पृथ्वी, अप्, तेजः, वायु, आकाश तथा पिण्ड में ज्ञानेन्द्रियाँ-कर्मेन्द्रियाँ आदि।
-	-	Causa Finalis	Final Cause	पानी भरना (कार्य का उद्देश्य/ प्रयोजन)	जीवात्मा को कर्म-फल देना, विकास की ओर अग्रसर करना

अतः यदि परमात्मा व प्रकृति के साथ जीव को न माना जाये तो यह सम्पूर्ण सृष्टि निष्प्रयोजन लीलामात्र खेलमात्र रह जायेगी। वेद त्रैतवाद का पूर्णतः प्रतिपादन करता है। वेदों के साथ-साथ प्रायः प्रत्येक वाद के पोषकों ने भी त्रैतवाद का समर्थन किया है।

पाश्चात्य जगत् में डेकार्ट ने तीन मूल सत्ताओं को माना है। मध्वाचार्य तथा रामानुजाचार्य भी त्रैतसत्ता को स्वीकार करते हैं। आचार्य शंकर का अद्वैतवाद भी 'व्यवहार सत्', 'माया', 'उपाधि', 'लीला' आदि शब्दों के द्वारा मौन रूप में एकत्व में सिमट कर नहीं रह पाये। उपनिषदों, गीता, सांख्यादि में भी प्रकृति के अतिरिक्त जिस पुरुष का निर्देश किया है वह चेतनतत्त्व भी पिण्ड में आत्मा तथा ब्रह्माण्ड में परमात्मा के रूप में अभिव्यक्त हो जाता है।

महर्षि दयानन्द ने अपने ग्रन्थ सत्यार्थप्रकाश में ईश्वर, जीव और जगत् के विषय में सप्तम और अष्टम उल्लास में सविस्तार से चर्चा की है। इन तीनों को ही अनादि मानते हुए स्वामी दयानन्द लिखते हैं कि "प्रश्न- यह जगत् परमेश्वर से उत्पन्न हुआ है या अन्य से? उत्तर - यह निमित्त कारण परमात्मा से उत्पन्न हुआ है, परन्तु इसका उपादान कारण प्रकृति है। प्रश्न - क्या प्रकृति परमेश्वर ने उत्पन्न नहीं की? उत्तर - नहीं, वह अनादि है। प्रश्न - अनादि किसको कहते हैं और

कितने पदार्थ अनादि हैं? उत्तर – ईश्वर, जीव और जगत् ये तीन अनादि हैं और इसमें प्रमाण देते हुए ऋग्वेदीय मन्त्र का प्रमाण देते हैं। यह मन्त्र त्रैतवाद की पुष्टि में ऋग्वेद का बड़ा ही मनोरंजक व सारगर्भित है –

द्वा सुपर्णा सयुजा सखाया समानं वृक्षं परिषस्वजाते।
तयोरन्यः पिप्पलं स्वादु अति अनश्नन् अन्यः अभिचाकशीति।।[१६]

अर्थात् वृक्ष पर बैठे दो पक्षियों का रूपक के माध्यम से वर्णन करते हुए पिण्ड रूप में स्थित आत्मा व ब्रह्माण्ड रूप में स्थित परमात्मा के जगद्विषयक विविध भाव को प्रस्तुत किया गया है। यहाँ वृक्ष व उसके फल भोग्यरूप प्रकृति, उन फलों को खाने वाला पक्षी भोक्तृरूप आत्मा तथा उसे खाता हुआ देखने वाला परमात्मा के रूप में सृष्टि की तीन मूलसत्ताओं का वर्णन किया गया है।

परमात्मा की सृष्टि से पूर्व अवस्थिति को प्रतिपादित करते हुए ऋग्वेद कहता है –

हिरण्यगर्भः समवर्तताग्रे भूतस्य जातः पतिरेक आसीत्।
स दाधार पृथिवीं द्यामुतेमां कस्मै देवाय हविषा विधेम।।[१७]

नासदीय सूक्त[१८] भी कार्यसृष्टि से पूर्व सर्वशक्तिमान् परमेश्वर व जगत् निर्माणार्थ कारणरूप सामग्री के अस्तित्व को बताता है। नासदीय सूक्त में मन्त्र कहता है कि हे मनुष्य! जिससे यह विविध सृष्टि प्रकाशित हुई है जो धारण और प्रलयकर्ता है जो इस जगत् का स्वामी है, जिस व्यापक में यह सब जगत् उत्पत्ति, स्थिति और प्रलय को प्राप्त होता है सो परमात्मा है। उसको तू जान और दूसरे को सृष्टिकर्ता मत मान।[१९] तैत्तिरीयोपनिषद् में भी ऋषि ब्रह्म का विवेचन करते हुए लिखते हैं–

यतो वा इमानि भूतानि जायन्ते येन जातानि जीवन्ति।
यत्प्रयन्त्यभिसंविशन्ति तद्विजिज्ञासस्व तद् ब्रह्म।।[२०]

पुरुष सूक्त में पुरुष का सर्वाधिक विवेचन किया गया है। पुरुष को अनन्त, सर्वत्र व्याप्त एवं अन्तर्यामी कहा गया है।[२१] जीव, प्रकृति और परमात्मा का वर्णन करता हुआ अथर्ववेद का यह मन्त्र द्रष्टव्य है –

बालात् एकम् अणीयस्कम् उत एकं नैव दृश्यते।
ततः परिष्वजीयसी देवता सा मम प्रिया।।[२२]

अर्थात् बाल से भी अधिक सूक्ष्म अणुतम जीव, अत्यन्त सूक्ष्म अदृश्य प्रकृति तथा समग्र जगत् का आलिङ्गन करने वाला सर्वव्यापक परमात्मा मेरा सर्वाधिक प्रिय है।

सन्दर्भ-सूची

१. यजुर्वेद, ४०.१५
२. वैदिक विचारधारा का वैज्ञानिक आधार, डॉ. सत्यव्रत सिद्धान्तालंकार, पृ. सं. १९५
३. चार्वाक दर्शन – आचार्य बृहस्पति।

४. वैदिक विचारधारा का वैज्ञानिक आधार, डॉ. सत्यव्रत सिद्धान्तालंकार, पृ. सं. २००
५. वही, पृ. सं. २०२
६. वही, पृ. सं. २०२
७. वही, पृ. सं. २०३
८. ब्रह्मसूत्र (शंकराचार्य), २.१.१४
९. वैदिक विचारधारा का वैज्ञानिक आधार, डॉ. सत्यव्रत सिद्धान्तालंकार, पृ. सं. २०३
१०. गीतारहस्य, लोकमान्य बालगंगाधर तिलक, पृ. सं. १५६
११. बृहदारण्यकोपनिषद्, १.८
१२. श्रीमद्भगवद्गीता, १३.१-३
१३. कठोपनिषद् (तृतीय वल्ली), ३-४
१४. सांख्यकारिका (ईश्वरकृष्ण) - १७
१५. योगदर्शनम्।
१६. ऋग्वेद, १.१६४.२०, अथर्ववेद, ९.९.१०
१७. ऋग्वेद, १०.१२९.१
१८. ऋग्वेद, १०.१२९.१-७
१९. ऋग्वेद, १०.१२९.७
२०. तैत्तिरीयोपनिषद्
२१. सहस्रशीर्षा पुरुषः सहस्राक्षः सहस्रपात्। स भूमिं विश्वतो वृत्वात्यतिष्ठद्दशांगुलम्।। ऋग्वेद, १०.१०.
२२. अथर्ववेद, १०.८.२५

सहायक ग्रन्थसूची

- ऋग्वेद भाष्य, स्वामी दयानन्द सरस्वती, वैदिक यन्त्रालय, अजमेर।
- यजुर्वेद भाषाभाष्य, स्वामी दयानन्द सरस्वती, दयानन्द संस्थान, दिल्ली।
- सामवेद भाष्य, ब्रह्ममुनि परिव्राजक विद्यामार्तण्ड, वैदिक यन्त्रालय, अजमेर।
- अथर्ववेद भाष्य, प्रो. विश्वनाथ विद्यालंकार, वैदिक यन्त्रालय, अजमेर।
- ऋग्वेदादिभाष्यभूमिका, स्वामी दयानन्द सरस्वती, आर्ष साहित्य प्रचार ट्रस्ट, दिल्ली।
- सत्यार्थप्रकाश, स्वामी दयानन्द सरस्वती, वैदिक यन्त्रालय, अजमेर।

Shodh Navneet (International Peer-Reviewed Research Journal)
ISSN : 2321-6581, IIJ Impact Factor : 5.037, Vol. XIX, July - Dec. - 2022

महाकवि भारविविरचित 'किरातार्जुनीयम्' में श्रृङ्गार रस-समीक्षा

चन्द्र धर मिश्र*

बृहत्त्रयी काव्यों में अन्यतम महाकवि भारवि द्वारा विरचित 'किरातार्जुनीयम्' नामक महाकाव्य का नाम सर्वोपरि आता है। महाकवि भारवि द्वारा विरचित यह महाकाव्य 'महाभारत के वनपर्व' से उद्धृत है। अर्जुन की पाशुपतास्त्र प्राप्ति की छोटी-सी घटना को लेकर इस ग्रन्थ का प्रणयन किया गया है। इसकी कथा १८ सर्गो में वर्णित है। वस्तुतः इस महाकाव्य में 'वीर रस' की प्रधानता है, तथापि श्रृङ्गार, अद्भुत, बीभत्सादि अन्य रसों की प्राप्ति भी हमें गौण रूप से होती है।

महाकवि भारवि ने यद्यपि एक ही ग्रन्थ का प्रणयन किया है, लेकिन इस एक ही ग्रन्थ में कवि ने ऐसी कवित्व-शक्ति का प्रदर्शन किया है कि उनकी ख्याति 'अर्थ-गाम्भीर्य' के क्षेत्र में प्रसिद्ध हो गयी है -'**भारवेरर्थगौरवम्।**' रसों के वर्णन में कवि ने अपनी अभूतपूर्व प्रतिभा का प्रदर्शन किया है। वीर-रस प्रधान इस काव्य-ग्रन्थ में कवि ने गन्धर्वों और देवाङ्गनाओं के वन विहार एवं जल विहार के वर्णन में श्रृङ्गार रस का इतना रोमाचकारी वर्णन प्रस्तुत किया है, जिससे ऐसा प्रतीत होता है कि साक्षात् कामदेव एवं रति ही पृथ्वीलोक में आकर काम-क्रीड़ा कर रहे हों।

'रस' शब्द की व्युत्पत्ति है - '**रस्यते इति रसः**' अर्थात् जिसका आस्वादन किया जाए, वह रस है। नाट्यशास्त्र के प्रवर्तक आचार्य भरतमुनि ने रस के विषय में विचार प्रकट करते हुए कहा है कि 'रस के बिना किसी भी अर्थ की प्रतीति नहीं हो सकती।' - '**न हि रसादृते कश्चिदर्थः प्रवर्तते।।**'[१] रस की निष्पत्ति के विषय में आचार्य कहते हैं कि विभाव, अनुभाव और संचारी भावों के संयोग से रस की निष्पत्ति होती है - '**तत्र विभावानुभावव्यभिचारिसंयोगाद्रसनिष्पत्तिः।।**'[२]

आचार्य भरतमुनि ने रसों का विभाग करते हुए उन्हें चार वर्गों में विभाजित किया है - **श्रृङ्गार, वीर, रौद्र एवं बीभत्स।** इन्हीं चारों से क्रमशः हास्य, अद्भुत, करुण और भयानक रस की उत्पत्ति स्वीकार की है। आचार्य मम्मट ने काव्यप्रकाश के चतुर्थ उल्लास में आठ मुख्य रस तथा शान्त रस को नौवाँ रस स्वीकार किया है -

श्रृङ्गारहास्यकरुणरौद्रवीरभयानकाः।
वीभत्साद्भुतसंज्ञौ चेत्यष्टौ नाट्ये रसाः स्मृताः।।[३]
निर्वेदस्थायिभावोऽस्ति शान्तोऽपि नवमो रसः।।[४]

---

* शोधच्छात्र, संस्कृत विभाग, जगत तारन महिला स्नातकोत्तर महाविद्यालय (इलाहाबाद विश्वविद्यालय), प्रयागराज।

रसों में सर्वप्रथम शृङ्गार रस है। शृङ्गार रस के विषय में बतलाते हुए आचार्य विश्वनाथ अपने काव्यशास्त्रीय ग्रन्थ 'साहित्यदर्पण' के तृतीय परिच्छेद में कहा है कि 'कामदेव के उद्भेद (अंकुरित होने) को 'शृङ्ग' कहते हैं, उसकी उत्पत्ति का कारण अधिकांश उत्तम प्रकृति से युक्त रस 'शृङ्गार' कहलाता है।'

शृङ्गार रस का विभाजन दो भागों में किया गया है – (क) सम्भोग (संयोग) शृङ्गार, (ख) विप्रलम्भ (वियोग) शृङ्गार। **(तत्र शृङ्गारस्य द्वौ भेदौ सम्भोगो विप्रलम्भश्च।)**[५] एक दूसरे के प्रेम में बँधे हुए नायक और नायिका जहाँ परस्पर दर्शन, स्पर्शन आदि करते हैं, वह 'सम्भोग शृङ्गार' कहलाता है तथा जहाँ अनुराग तो अति उत्कट हो, परन्तु प्रिय समागम न हो पाए, वहाँ 'विप्रलम्भ शृङ्गार' होता है।

महाकवि भारवि ने 'किरातार्जुनीयम्' नामक महाकाव्य के अष्टम और नवम सर्ग में देवाङ्गनाओं और गन्धर्वों के सुरतव्यापार का बहुत ही सुन्दर तथा विस्तृत वर्णन कर अपनी प्रतिभा का दिग्दर्शन कराया है। महाकवि ने अपने इस ग्रन्थ के अष्टम सर्ग के सोलहवें श्लोक में वन विहार करती हुई किसी देवाङ्गना के द्वारा समीपस्थ प्रियतम को आलिङ्गित करने का बड़ा ही शृङ्गारिक चित्रण प्रस्तुत किया है। यहाँ पर देवाङ्गना के प्रेम का आलम्बन उसका प्रियतम है तथा उद्दीपन वन में पल्लवों से ग्रथित पुष्पों का सुगन्ध है। अपने प्रियतम के प्रति किया गया आलिङ्गन अनुभाव एवं हर्ष, उन्माद तथा चपलता सञ्चारीभाव हैं। इस प्रकार महाकवि ने प्रस्तुत श्लोक में सम्भोग शृङ्गार का बहुत ही रोमाञ्चकारी चित्रण प्रस्तुत किया है –

सलीलमासक्तलतान्तभूषणं समासजन्त्या कुसुमावतंसकम्।
स्तनोपपीडं नुनुदे नितम्बिना घनेन कश्चिज्जघनेन कान्तया।।[६]

महाकवि के द्वारा अष्टम सर्ग के ही १९वें श्लोक में सम्भोग शृङ्गार का चित्रण किया गया है। प्रस्तुत श्लोक में सुरसुन्दरी के रति का आलम्बन उसका प्रियतम तथा उद्दीपन वन प्रदेश का एकान्त स्थान तथा विभिन्न प्रकार के पुष्पों के सुगन्ध से प्रदेश की मादकता है। प्रियतम के प्रति किया गया स्तनों से वक्षस्थल पर प्रहार उसके शृङ्गार रस का अनुभाव तथा चपलता, हर्ष और उन्माद परस्पर व्यभिचारी हैं –

व्यपोहितुं लोचनतो मुखानिलैरपारयन्तं किल पुष्पजं रजः।
पयोधरेणोरसि काचिदुन्मनाः प्रियं जघानोन्नतपोवरस्तनी।।[७]

इसीप्रकार महाकवि ने प्रस्तुत सर्ग के ही ४६वें श्लोक में गन्धर्वों और देवाङ्गनाओं के जल विहार का बड़ा ही शृङ्गारिक चित्रण किया है। प्रस्तुत श्लोक में गन्धर्व तथा देवाङ्गनाएँ परस्पर एक–दूसरे के प्रति प्रेम के आलम्बन हैं तथा वन का एकान्त प्रदेश एवं जल की शीतलता उद्दीपन विभाग हैं। सुराङ्गना के द्वारा किया गया प्रियतम का आलिङ्गन अनुभाव और चिन्ता, त्रास एवं

आवेगादि रति के सञ्चारीभाव हैं –

भयादिवाश्लिष्य झषाहतेऽम्भसि प्रियं मुदानन्दयति स्म मानिनी।
अकृत्रिमप्रैमरसाहितैर्मनो हरन्ति रामाः कृतकैरपीहितैः।।[८]

इसीप्रकार ४८वें श्लोक में कवि ने किसी कामिनी के द्वारा जल के अगाध होने से मानो डरकर धृष्टतारहित होकर प्रियतम के अङ्गों का आलिङ्गन करने का शृङ्गारिक चित्रण किया है। प्रस्तुत श्लोक में उस कामिनी के रति का आलम्बन उसका प्रियतम है तथा उद्दीपन जल की शीतलता एवं कल-कल की मधुरध्वनि है। कामिनी के द्वारा किया गया प्रियतम को आलिङ्गन अनुभाव तथा त्रास, उन्माद एवं आवेगादि शृङ्गार के सञ्चारी हैं –

करौ धुनाना नवपल्लवाकृती पयस्यगाधे किल जातसम्भ्रमा।
सखीषु निर्वाच्यमधार्ष्ट्यदूषितं प्रियाङ्गसंश्लेषमवाप मानिनी।।[९]

नवम् सर्ग के २७वें श्लोक में महाकवि ने चन्द्रमारूपी नायक के द्वारा अपने किरणरूपी हाथों को फैलाकर तारकारूपी प्रियवधू का कण्ठग्रहपूर्वक आलिङ्गन करते हुए अङ्गराग के समान व्याप्त होकर सुशोभित होने का बड़ा ही सुन्दर चित्रण प्रस्तुत किया गया है। प्रस्तुत श्लोक में चन्द्रमारूपी नायक के रति का आलम्बन तारकारूपी प्रियवधू है तथा रात्रि का समय उसका उद्दीपन है। अपनी प्रियतमा को किया गया स्पर्श अनुभाव तथा हर्ष, उन्मादादि शृङ्गार के सञ्चारी हैं –

श्लिष्यतः प्रियवधूरुपकण्ठं तारकास्ततकरस्य हिमांशोः।
उद्गमन्नभिरराज समन्तादङ्गराग इव लोहितरागः।।[१०]

नवम् सर्ग के ४७वें तथा ४८वें श्लोक में शृङ्गार का बड़ा ही रोमाञ्चकारी चित्रण महाकवि ने प्रस्तुत किया है। इसी सर्ग के ६६वें श्लोक में मदिरा के नशे में मदमस्त सुराङ्गनाओं के द्वारा निर्लज्जता की सारी हदें पार कर अपनी सखियों के सम्मुख ही अपने शरीर को पति के अधीन कर दिया गया। प्रस्तुत श्लोकों में शृङ्गार का आलम्बन उसका प्रियतम है तथा उद्दीपन मदिरा का पान है। सुराङ्गना का अपने शरीर को पति के अधीन कर देना रति का अनुभाव तथा निर्लज्जता, मद एवं उन्माद व्यभिचारी हैं –

लोलदृष्टि वदनं दयितायाश्चुम्बति प्रियतमे रभसेन।
व्रीडया सह विनीवि नितम्बादं शुकं शिथिलतामुपपेदे।।[११]
ह्रीतया गलितनीवि निरस्यन्नन्तरीयमवलम्बितकाञ्चि।
मण्डलीकृतपृथुस्तनभारं सस्वजे दयितया हृदयेशः।।[१२]

नवम् सर्ग के अन्त में तो महाकवि ने अपने शृङ्गार विषयक ज्ञान का मानो पिटारा ही खोल दिया हो। कामिनियों की रति यथोचित मर्यादा को लाँघ गई। मद्यपान से विह्वल शरीर को अपने पतियों के अधीन करके वधुओं ने रति के रसास्वाद में तन्मयता की अवस्था को प्राप्त कर लिया।

महाकवि भारवि ने अपने प्रस्तुत ग्रन्थ के नवम् सर्ग के १३वें, १४वें श्लोक में चक्रवाकादि

पक्षियों को आधार बनाकर विप्रलम्भ शृङ्गार का बड़ा ही मार्मिक चित्रण प्रस्तुत किया है। प्रस्तुत श्लोकों में वियोग शृङ्गार के आलम्बन विभाव परस्पर चक्रवाक पक्षी (नर–मादा) या प्रियतम और प्रियतमा हैं। एक–दूसरे के समीप में उपस्थित होने पर भी रात्रि का विरहकाल उद्दीपन है। अश्रुपातादि अनुभाव एवं चिन्ता, ग्लानि, विषादादि व्यभिचारी हैं –

इच्छतां सह वधूभिरभेदं यामिनीविरहिणां विहगानाम्।
आपुरेव मिथुनानि वियोगं लङ्घ्यते न खलु कालनियोगः।।[१३]
यच्छति प्रतिमुखं दयितायै वाचमन्तिकगतेऽपि शकुन्तौ।
नीयते स्म नतिमुज्झितहर्षं पङ्कजं मुखमिवाम्बुरुहिण्या।।[१४]

महाकवि ने ९वें सर्ग के ३०वें श्लोक में वियोग शृङ्गार का हृदय विदारक चित्र प्रस्तुत किया है। प्रस्तुत श्लोक में चक्रवाक रूपी नायक के वियोग का आलम्बन उसकी कान्ता है तथा उद्दीपन है – प्रियतमा की अनुपस्थिति। प्रिया के विरह में अश्रुपातनादि अनुभाव तथा मोह, विषाद, चिन्तादि उसके विप्रलम्भ के सञ्चारी हैं –

आतपे धृतिमता सह वध्वा यामिनीविरहिणा विहगेन।
सेहिरे न किरणा हिमरश्मेर्दुःखिते मनसि सर्वमसह्यम्।।[१५]

इसप्रकार यद्यपि महाकवि भारवि का प्रस्तुत महाकाव्य वीर रस प्रधान ग्रन्थ है, तथापि हम ये नहीं कह सकते कि महाकवि को केवल वीर रस के वर्णन में ही सिद्धहस्तता प्राप्त है। उनका ज्ञान असीमित तथा सर्वव्यापी है। महाकवि के द्वारा अष्टम् एवं नवम् सर्ग में शृङ्गार रस के दोनों भागों (सम्भोग तथा विप्रलम्भ) का बड़ा ही रोमाञ्चकारी तथा हृदयस्पर्शी चित्रण प्रस्तुत किया गया है। सम्भोग शृङ्गार का चित्रण महाकवि ने उसके सभी अङ्गभूत तत्त्वों के साथ, जैसे– वन विहार, जल–क्रीड़ा, मदिरापान, चन्द्रोदय तथा सायंकालीन प्रभा आदि का बड़ा ही सुन्दर चित्र सहृदयों के सम्मुख प्रस्तुत किया है। इस आधार पर हम ये निश्चित रूप से कह सकते हैं कि महाकवि भारवि केवल वीर रस में ही नहीं अपितु शृङ्गारादि अन्य सभी रसों के प्रयोग में सिद्धहस्त हैं।

सन्दर्भ-सूची

१. नाट्यशास्त्र, ६.३२
२. नाट्यशास्त्र, ६.३२
३. काव्यप्रकाश, ४.२९
४. काव्यप्रकाश ४.३५
५. काव्यप्रकाश, ४.२९, वृत्तिभाग – ४४
६. किरातार्जुनीयम्, ८.१६
७. किरातार्जुनीयम्, ८.१९
८. किरातार्जुनीयम्, ८.४६
९. किरातार्जुनीयम्, ८.४८
१०. किरातार्जुनीयम्, ९.२७
११. किरातार्जुनीयम्, ९.४७
१२. किरातार्जुनीयम्, ९.४८
१३. किरातार्जुनीयम्, ९.१३
१४. किरातार्जुनीयम्, ९.१४
१५. किरातार्जुनीयम्, ९.३०

Shodh Navneet (International Peer-Reviewed Research Journal)
ISSN : 2321-6581, IIJ Impact Factor : 5.037, Vol. XIX, July - Dec. - 2022

अमरता के शिल्पी 'ऋभु देव' : एक विवेचन

श्रीमती अर्चना भार्गव*

शोधसारांश

विश्व के प्राचीनतम ग्रन्थ ऋग्वेद में देवताओं की स्तुतिरूप ऋचाओं का संकलन है – **'तेषामृक् यत्रार्थवशेन पादव्यवस्था।'** ऋभुओं का वृष्टि जल को प्रेरित करना तथा इन्द्र से इनकी निकटता भी इन्हें अन्तरिक्ष स्थानीय देव सिद्ध करती है। निरुक्तीय निर्वचनों के द्वारा भी ऋभुओं को इस प्रकार का देवता माना गया है जो महान् रूप में चमकते हैं। अन्तरिक्ष में वायु, विद्युत् आदि ही चमकते हैं। अतः ऋभु भी अन्तरिक्ष स्थानीय देवता है।

ऋग्वैदिक ऋषियों ने सूर्य, चन्द्र, अग्नि, आदित्य, द्यौ, विद्युत् इत्यादि के अतिरिक्त भी एक विशिष्ट गुण वाले तेज का अनुभव किया तथा उसे 'ऋभु' नाम दिया जो कि स्वकीयभूत 'सुधन्वन्' से अल्प रूप से ही भिन्न है। वर्तमान काल में उस ऋभु को ही 'गामा' या 'एक्स' किरणें कहा गया है। ये किरण पुंज विभिन्न उद्देश्यों यथा चिकित्सा–विज्ञान, खगोल विज्ञान, भू–गर्भ विज्ञान, विभिन्न उपकरणों के निर्माण, उद्योगों तथा नाभिकीय विखण्डन आदि में प्रयुक्त होते हैं।

बीज शब्द : ऋभुत्रय, अमरता के शिल्पी, ऋभुक्षा, त्वष्टा, सविता, सूर्य, सुधन्वन्।

विश्व के प्राचीनतम ग्रन्थ ऋग्वेद में देवताओं की स्तुतिरूप ऋचाओं का संकलन है – **'तेषामृक् यत्रार्थवशेन पादव्यवस्था।'** देवता पद **'दानात् वा दीपनात् वा द्योतनात् वा'** से निष्पन्न होने के कारण दिव्यत्व–गुण–युक्त विशिष्ट तत्त्वों को देवता कहा गया है। 'देवता' पद के लक्षण 'ऋभु' शब्द में घटित होते हैं; क्योंकि 'ऋभु' का अर्थ दिव्यता, सूर्यकिरण रश्मि[१] आदि किया गया है। अतः ऋभु देवता है। इन विभिन्न देवताओं के विशिष्ट स्थान निर्धारित हैं। यास्क ने **'तिस्र एव देवता इति नैरुक्ताः। अग्निः पृथिवीस्थानः वायुर्वेन्द्रो वान्तरिक्षस्थानः सूर्यो द्युस्थानो'** कहकर देवताओं को तीन श्रेणियों में विभक्त किया है – पृथिवीस्थानीय, अन्तरिक्षस्थानीय तथा द्युस्थानीय। यदि ऋभुओं का स्थान नियत करते हैं, तो वे मानव सदृश हैं और मानव जैसे कार्य करने वाले हैं तथापि पार्थिव देवताओं में उनकी स्थिति नहीं है। वस्तुतः ऋभुगण अन्तरिक्ष स्थानीय देवताओं की कोटि में ही आते हैं। निरुक्त में **'अथातो मध्य-स्थाना देवगणाः'** कहकर मध्यस्थानीय अर्थात् अन्तरिक्ष स्थानीय देवताओं में मरुत् और रुद्र के अनन्तर तृतीय स्थान पर ऋभुओं को ही गिनाया है। ऋभुओं का वृष्टि जल को प्रेरित करना तथा इन्द्र से इनकी निकटता भी इन्हें अन्तरिक्ष स्थानीय देव सिद्ध करती है। निरुक्तीय निर्वचनों के द्वारा भी

* विभागाध्यक्ष, संस्कृत विभाग, सम्राट पृथ्वीराज चौहान राजकीय महाविद्यालय अजमेर, राजस्थान

ऋभुओं को इस प्रकार का देवता माना गया है जो महान् रूप में चमकते हैं। अन्तरिक्ष में वायु, विद्युत् आदि ही चमकते हैं। अतः ऋभु भी अन्तरिक्ष स्थानीय देवता है।

'ऋभु' पद का निर्वचन

वैदिक वाङ्मय में 'ऋभु' पद का निर्वचन अनेक प्रकार से उपलब्ध है। आचार्य यास्क ने अपने ग्रन्थ निरुक्त[२] में 'ऋभु' पद के तीन निर्वचन प्रस्तुत किये हैं –

(१) उरू भान्तीति वा।

(२) ऋतेन भान्तीति वा।

(३) ऋतेन भवन्तीति वा।

अर्थात् वे बहुत चमकते हैं। अतः 'ऊरु' उपपद और 'भा' धातु से 'कु' प्रत्यय होकर 'ऋभु' शब्द बना।

अथवा यज्ञ से या सत्य से दीप्त होते हैं अतः 'ऋत्' पूर्वपद और भा धातु से 'कु' प्रत्यय होकर 'ऋभु' पद बना।

अथवा यज्ञ से या सत्य से युक्त होते हैं। अतः 'ऋत्' पूर्वपद और भू धातु से 'ऋभु' पद बना।

महर्षि दयानन्द सरस्वती ने 'ऋभु' के यास्कीय निर्वचनों को ही अपनाया है तथा इनका अर्थ किरण, महान्, क्रियाओं में कुशल मेधावी आदि किया है। सायण, विल्सन, मैक्समूलर आदि ने 'ऋभु' का अर्थ सूर्यकिरण किया है। श्री आप्टे ने भी ऋभु का अर्थ देव, दिव्यता, देवता किया है।

'ऋभु' शब्द की व्युत्पत्ति 'रभ्' (पकड़ना) धातु से बतायी जाती है। फलतः इसका अर्थ 'दक्ष' या 'हस्तकुशल' होता है।

ऋभुओं का जन्म

जैसे ऋभुओं के क्रियाकलापों में मानवीय चेष्टा तथा क्रियात्मकता दिखाई देती है तथैव उनके जन्म–सम्बन्धी विवरण में मानवधर्मिता द्रष्टव्य है। वैदिक माइथोलॉजी में स्पष्टतः कहा गया है कि 'वेद के अपने देव तो यश सम्पन्न मानवीय प्राणी हैं जो मानव की भाँति उत्पन्न तो होते हैं, पर मरते कभी नहीं।' यह कथन ऋभुओं के सन्दर्भ में अक्षरशः सत्य घटित होता है। जन्मना ऋभुगण मरणधर्मा थे। ऐतरेय ब्राह्मण[३] में भी कहा गया है कि ऋभु मनुष्य थे और इन्होंने अपने तपस् के द्वारा देवताओं के साथ सोमपान का अधिकार प्राप्त किया था। ऋग्वेद की विभिन्न ऋचाओं में ऋभुओं के माता–पिता के सम्बन्ध में भिन्न–भिन्न उल्लेख प्राप्त होते हैं। एक ऋचा[४] में इन्हें '**मनो नपातः**' अर्थात् मनु के पुत्र कहा गया है जो इनके मानवीय जन्म का द्योतक है। ऋभुओं को '**शवसो नपातः**"[५] अर्थात् शक्ति या बल के पुत्र अभिधान भी दिया गया है। बल वस्तुतः इन्द्र का पर्याय है। अतः ऋभुगण इन्द्र के पुत्र हुए। इसीलिए इन्हें '**इन्द्रस्य सूनो**'[६] भी कहा गया है।

ऋभु का एक अर्थ '**सूर्यकिरण**' भी किया गया है। इस रूप में सूर्य–चन्द्र[७] को इनका माता–पिता बताया गया है। किन्तु अधिक बार इनका इनके पैतृक नाम '**सौधन्वनाः**' से आह्वान किया

गया है। अतः ये आङ्गिरस सुधन्वन् के वंशज हैं। वंश-परम्परा से उपाधि हस्तांतरण होने के कारण सुधन्वन् भी सौर्य कहलाये तथा सूर्य की कुछ किरणों को ही 'ऋभु' कहा गया है।

ऋभु-त्रयी

मरुद्गणों की भाँति ऋभुओं का भी छोटा सा गण है जिसमें ऋभु, विभु और वाज ये तीन देवता परिगणित हैं।[८] इस गण को प्रायः 'ऋभवः'[९] अभिधान दिया गया है। ऋग्वेद की विभिन्न ऋचाओं में ऋभुओं की अनेक विशेषण-युक्त उपाधियाँ यथा '**मनो नपातः**'[१०], **शवसो नपातः**, **ऋतुपा**[११], **अग्रेपा**[१२] आदि मिलती है, किन्तु जिस प्रकार अश्विन् युग्म-देव हैं तथैव ऋभु त्रैत देवता हैं। ऋग्वेद के ११ सूक्तों में इनकी स्तुति की गई है तथा इनका नामोल्लेख १०० से अधिक बार हुआ है। ये भरद्वाज-कुल के इष्टदेव हैं।

ऋभुओं का मानवीय पक्ष

ऋग्वेद के ऋषि ने प्रकृति के अन्दर तक्षण कला और शिल्प के सूक्ष्मतम स्वरूप के दर्शन किये, जो कि मानव शिल्पी, रथकार आदि में परिलक्षित होता है तथा कल्पना की कि अन्तरिक्ष-स्थानीय वायु देवता का ही एक ऐसा स्वरूप है जो इस सृष्टि के प्राकृतिक परिवेश में सूक्ष्म कलात्मकता उत्पन्न करता है। तत्पश्चात् ऋषियों ने इस प्रकार के अर्धदिव्य तथा अर्ध-मानव देवताओं की कल्पना की, जिनका मानवीकरण कुछ अधिक स्थूल रूप धारण करता हुआ प्रतीत होता है। इन देवों को 'ऋभु' अभिधान प्राप्त हुआ। वस्तुतः ऋभु ऐसे शिल्पी हैं जिनमें शिल्प का सूक्ष्मतम गुण विद्यमान है। ये सूक्ष्मतम विकर्तन करने में समर्थ हैं। अपने शिल्प और कौशल के कारण ही ऋभु अमर हुए, अतः यह उनकी विजय है जो उन्हें मनुष्यत्व से दिव्यत्व की ओर ले गई। इसीलिए विख्यात मनीषी महर्षि अरविन्द ने इन्हें 'अमरता के शिल्प'[१३] की संज्ञा दी है। इन दिव्य शिल्पियों के पाँच महान् कार्यों का उल्लेख बार-बार आता है, जो उन्हें मानवीय स्वरूप से सम्बद्ध करता है। ये कार्य हैं -

१. इन्द्र के अश्व-द्वय का निर्माण, जो शब्द के संकेत से तथा बाण से भी अधिक वेग से गति करते थे।[१४]
२. अश्विन्-देवों के दिव्य, देदीप्यमान, उत्तम गतिवान् तथा अकुटिल पथगामी रथ का मन के संकल्प मात्र से सृजन।[१५]
३. शल्य-क्रिया द्वारा चर्म से सर्वप्रेरक, विश्वरूपा गौ का सृजन।[१६]
४. शिथिल-गात्र जीर्ण-शीर्ण माता-पिता को पुनः युवा बनाना।[१७]
५. त्वष्टा द्वारा निर्मित एक चमस का चतुर्धा विभाजन।[१८]

इनके अतिरिक्त ऋभुओं की कुछ अन्य मानवीय चेष्टायें एवं कृत्य भी उनके मानवीय रूप को प्रतिपादित करते हैं। ऋग्वेद में इन्हें '**कर्म-कर्ता**'[१९] कहा गया है अर्थात् इन्होंने कर्मानुष्ठान किया था। ऋत्विजों को इनका साथी बताया गया है। इनके प्रशंसनीय ज्योतिर्मय रथ वायु के समान वेगवान्, पुष्ट व बलिष्ठ अश्वों तथा आयुधों का भी कथन किया गया है।[२०] इनके शारीरिक पक्ष का

उल्लेख करते हुए इन्हें **सुहस्ताः**[२१], **सुशिप्रः** और दर्शनीय रूप वाला भी कहा गया है। अतः स्पष्ट प्रतीति होती है कि ये मानव सदृश हैं।

ऋभुओं के मानवीकरण में हमें एक और विशिष्टता दिखाई देती है कि ये मनुष्य की भाँति ही यश-प्राप्ति के इच्छुक हैं। उस यश को प्राप्त करने के लिए ही इनमें क्रियात्मक शक्ति उत्पन्न होती है। विभिन्न कौशल-प्रदर्शन कर कीर्ति और दिव्यत्व को प्राप्त करते हैं। वस्तुतः वास्तविक देवता तो ऋभु ही हैं; क्योंकि भारत की धार्मिक परम्परा के अनुसार हमने राम, कृष्ण को उनके कर्तृत्व के कारण मानव होते हुए भी देवता माना। ऋग्वेद के अन्य देवता तो भावना तथा अनुभूति के विषय हैं, किन्तु ऋभु अपने कर्तृत्व के कारण साक्षात् देवता हैं।

(क) ऋभुओं का दैवीय पक्ष

निघण्टु में 'ऋभुक्षा' पद महत् नामों में पठित है। इसलिए ऋभु महान् देवताओं की श्रेणी में ही आते हैं। वस्तुतः देवताओं के दिव्यत्व का कारण उनका अमर होना, चिर युवा होना तथा सूक्ष्म रूप में तीनों लोकों में विद्यमान रहना आदि माने जाते हैं। ऋभुओं में ये सभी विशिष्टतायें हैं अतः वे देवता ही हैं।

ऋग्वेद में कहा गया है कि '**अयं समुद्र इह विश्वदेव्यः स्वाहाकृतस्य समु तृप्णुतः ऋभवः**'[२२] अर्थात् 'स्वाहा' शब्द के उच्चारण के साथ ऋभुओं को सोमाहुति दी जाती है। पाणिनीय व्याकरण के अनुसार भी '**नमः-स्वस्ति-स्वाहा-स्वधाऽलं वषड्योगाच्च**'[२३] सूत्र से देवता पद में चतुर्थी लगती है। अतः यह कारण भी ऋभुओं के दिव्य स्वरूप को समर्थित करता है।

देवता अमर हैं और ऋभुओं के लिए भी अमर होने की बात कही गई है। अतः ऋभु देवता हैं।[२४] सांवत्सरिक यज्ञों में हव्य का अधिकार मिलना भी इन्हें देवता पद पर प्रतिष्ठित करता है।

(ख) ऋभुओं का देव-सानिध्य

ऋभुगण अपने शिल्प-कौशल के कारण अधिकांश देवताओं के साथ कम या अधिक रूप में किसी न किसी प्रकार सम्बद्ध हैं। इनका सर्वाधिक घनिष्ठ सम्बन्ध इन्द्र के साथ है। ये कल्याणकारी कर्मों, सोमपान व युद्ध में इन्द्र के सहायक हैं।[२५] ऋभुओं को 'इन्द्रवत्'[२६] और 'एक अभिनव इन्द्र के सदृश'[२७] तथा इन्द्र को 'ऋभुक्षन्'[२८] तक कह दिया गया है। सविता देव के भवन में ऋभुओं ने बारह दिनों तक निवास किया और उनसे अमृतत्व प्राप्त किया।[२९] बदले में ऋभुओं ने भी सविता देव का भक्षण करने का जो एक ही चमस था, एक ही चमस के चार चमस बनाकर सविता देव को उपकृत किया।[३०] अतः ऋभुगण और सविता परस्पर सम्बन्धी हो गये।

त्वष्टा को ऋभुओं का गुरु कहा गया है।[३१] त्वष्टा के लिए जिस 'तक्ष्' धातु का प्रयोग हुआ है उसी का सामान्यतया ऋभुओं के हस्तकौशल के संदर्भ में व्यवहार किया गया है। हस्तकौशल के कारण ही त्वष्टा देवता बने और उसी के कारण ऋभुओं ने देवत्व पद प्राप्त किया। ऋभुओं और त्वष्टा का देवत्व प्राप्ति का समान आधार उन्हें परस्पर सम्बन्धित द्योतित करता है।

इसी भाँति अनेक ऋचाओं में ऋभुओं की अश्विनीकुमारों, अग्नि, प्रजापति, आदित्य, वाक्,

मरुत्, द्यावा, पृथिवी आदि देवों के साथ स्तुति की गई है। अग्नि को ऋभुओं का मित्र एवं भ्राता कहा गया है।[३२] ऋभुगण देवाधिपति प्रजापति के साथ निवास करते हैं[३३] तथा सोमपान का आनन्द उठाते हैं।[३४] इन्हें अदिति का पुत्र कहा गया है।[३५] अतः वे आदित्य के भ्राता हुए। ऋभुओं का यह देव-सानिध्य उनके देवत्व का ही द्योतक है।

(ग) ऋभुओं का यज्ञ में आह्वान

देवता के उद्देश से अग्नि में द्रव्य का त्याग याग कहलाता है। जिस देवता के निमित्त आहुति दी जाती है वही उस यज्ञ का देवता कहलाता है अर्थात् जिस मनोकामना को लेकर यजमान यज्ञ करता है। उस मनोकामना को पूर्ण करने में जो देवता समर्थ होता है, उसी के निमित्त द्रव्य-त्याग किया जाता है और आहुति को स्वीकार करने हेतु उस देवता का बार-बार आह्वान किया जाता है। चूँकि ऋभुगण महान् देवता हैं तथा धन, बल, मेधा आदि देने में समर्थ हैं। अतः यज्ञ में उनका पुनः पुनः आह्वान किया गया है।[३६] यथा- '**ऋभुर्विम्वा वाज इन्द्रो नो अच्छेमं यज्ञं रत्नधेयोप यात।**'

(घ) ऋभु-देवों से स्तोताओं द्वारा अभीष्ट कामना

निरुक्त में यास्क कहते हैं कि '**यत्काम ऋषिर्यस्यां देवतायामार्थपत्यमिच्छन्स्तुतिं प्रयुङ्क्ते तद् दैवतः स मन्त्रो भवति।**'[३७] अतः देवता अभीष्ट सिद्ध करते हैं। ऋभु-देवता भी अन्य देवों की भाँति फल प्रदान कर स्तोता का अभीष्ट सिद्ध करते हैं। अतः स्तोता पुनः-पुनः ऋभु-देवों से अभीष्ट प्राप्ति की कामना करते हैं। सोमयाग करने वाले ऋत्विजों के लिए ऋभुगण उनकी स्तुतियों से प्रसन्न होकर उनके लिए इक्कीस-इक्कीस रत्नों को धारण करते हैं।[३८] स्तोता ऋभुओं से उत्तम दुधारू गौ[३९], अन्न, पराक्रम तथा उत्तम वीर बहुपुत्रयुक्त धन की याचना करते हैं और ऋभु भी अन्य देवों की भाँति अपने उपासकों की अभीष्ट सिद्ध करते हैं।

(ङ) सोम-सवनों में ऋभुओं का स्थान

वैदिक संस्कृति का मूल यज्ञ है। '**देवतोद्देशेन द्रव्य-त्यागो यागः**' अर्थात् देवता के उद्देश से अग्नि में सोम, पुरोडाश आदि की आहुति देने का नाम ही यज्ञ है। यज्ञ दो प्रकार के होते हैं - श्रौत और गृह्य। श्रौत यज्ञ के भी दो भेद हैं - हविर्यज्ञ व सोमयज्ञ। सोम यज्ञों में तीन सवन होते हैं - प्रातः, माध्यन्दिन और सायम्। सोम यज्ञों में ऋभु-देवता तृतीय सवन के अन्तर्गत सोमपान के अधिकारी हैं।[४०]

निष्कर्षतः ऋभु-देवों के सूक्तों का विश्लेषणात्मक अध्ययन करने से यह निष्कर्ष निकलता है कि ऋभु अपने विशिष्ट कर्म-गुण के कारण अन्य देवों से पूर्णतया अनुपम हैं। उनका स्वकीय गुण उनका कौशल है जो उन्हें अमरत्व की प्राप्ति करा देता है, क्योंकि उन्हें स्पष्टतया वायव्य मनुष्य माना गया है, जिन्होंने जन्मना दिव्य न होते हुए भी कर्मणा अमृतत्व की प्राप्ति की थी। वे ज्ञान के प्रतिनिधि तथा संरक्षक हैं। देव विकास की प्रक्रिया के अन्तर्गत ऋभु-गणों की उत्पत्ति अङ्गिरस गोत्र में उत्पन्न होने वाले सुधन्वन् से मानी गयी है। अङ्गिरस पौराणिक देवों अथवा पुरोहितों की श्रेणी में आते हैं तथा इनका सम्बन्ध आभिचारिक मन्त्रों से है। सम्भवतः इसी को लक्ष्य

करके मैक्डॉनल और कीथ महोदय ने ऋभुओं को 'अवर' अर्थात् निकृष्ट श्रेणी का देव माना है। प्रस्तुत शोधलेख में किये गये ऋभु सम्बन्धी विवेचन से यह सिद्ध हो जाता है कि ऋभु महान् देव हैं, अमर देव हैं तथा ऐसे देव हैं जिन्होंने अपने गुणों के कारण अमर देव पद प्राप्त करके संसार में गुणों को प्रतिष्ठित किया।

आधुनिक सन्दर्भ में ऋभु

वेदों में सम्पूर्ण देव-विकास-प्रक्रिया का एक सुव्यवस्थित वैज्ञानिक क्रम है। उनमें वर्णित विभिन्न देवगण ही आधुनिक विज्ञान के अविष्कारों परमाणु, प्रोटॉन, इलेक्ट्रॉन, न्यूट्रॉन इत्यादि का वैदिक अभिधान है, जो कि तत्कालीन उन्नत वैज्ञानिक विकास की अवस्था को स्पष्ट करता है। ऋग्वैदिक ऋषियों ने सूर्य, चन्द्र, अग्नि, आदित्य, द्यौ, विद्युत् इत्यादि के अतिरिक्त भी एक विशिष्ट गुण वाले तेज का अनुभव किया तथा उसे 'ऋभु' नाम दिया जो कि स्वकीयभूत 'सुधन्वन्' से अल्प रूप से ही भिन्न है। वर्तमान काल में उस ऋभु को ही 'गामा' या 'एक्स' किरणें कहा गया है। ये किरण पुंज विभिन्न उद्देश्यों यथा चिकित्सा-विज्ञान, खगोल विज्ञान, भू-गर्भ विज्ञान, विभिन्न उपकरणों के निर्माण, उद्योगों तथा नाभिकीय विखण्डन आदि में प्रयुक्त होते हैं। वस्तुतः ऋभु सूक्ष्म से सूक्ष्म विकर्तन करने में समर्थ हैं और गामा किरणों की भी भेदन क्षमता बहुत अधिक है। ऋभुओं के चिकित्सकीय, तक्षणता आदि गुण ही वस्तुतः गामा किरणों के गुणधर्म हैं। ये किरणों के कण कभी भी नष्ट नहीं होते हैं। अतः युवा एवं अमर कहे गये हैं तथा ये सम्पूर्ण ब्रह्माण्ड में गतिशील हैं तथा अभीष्ट की सिद्धि के लिए प्रार्थना करते हैं। इन कणों की उत्पत्ति के लिए यज्ञ (प्रज्वलित अग्नि) में सोमरस का हवन किया जाता है जो कि एक विशिष्ट वैज्ञानिक प्रक्रिया है जिसका अनुसंधान करना चाहिए।

सन्दर्भ

१. ऋग्वेद, १.१६१.११
२. निरुक्त, ११.२
३. ऐतरेय ब्राह्मण, ३.३०.२
४. ऋग्वेद, ३.६०.३
५. ऋग्वेद, १.१६१.१४, ४.३४.६, ४.३५.१, ४.३७.४
६. ऋग्वेद, ४.३७.४
७. ऋग्वेद, १.१६१.१२
८. ऋग्वेद, ४.३४.१
९. ऋग्वेद, ७.५१.३
१०. ऋग्वेद, ३.६०.३
११. ऋग्वेद, ४.३४.७
१२. ऋग्वेद, ४.३४.७
१३. वेद-रहस्य : श्री अरविन्द (अनुवादक-आचार्य अभयदेव)।
१४. ऋग्वेद, ४.३५.५
१५. ऋग्वेद, १०.३९.१२
१६. ऋग्वेद, ४.३३.८
१७. ऋग्वेद, १.२०.४
१८. ऋग्वेद, १.१६१.५
१९. ऋग्वेद, १.११०.४
२०. ऋग्वेद, ४.३३.१
२१. ऋग्वेद, ४.३३.८
२२. ऋग्वेद, १.११०.१
२३. अष्टाध्यायी, २.३.१६

२४. ऋग्वेद, १.११०.४
२५. ऋग्वेद, ७.४८.३; १.१२१.९
२६. ऋग्वेद, ४.३७.५
२७. ऋग्वेद, १.११०.७
२८. ऋग्वेद, १.१११.४, ७.३७.४
२९. ऋग्वेद, ४.३३.७
३०. ऋग्वेद, १.११०.३
३१. ऋग्वेद, ४.३३.५
३२. ऋग्वेद, ४.३५.३, १.१६१.३
३३. ऋग्वेद, १.११०.६
३४. ऐतरेय ब्राह्मण, ३.३०
३५. ऋग्वेद, ८.९.१२
३६. ऋग्वेद, ४.३४.१, ३.६०.६ आदि।
३७. निरुक्तम्, ७.१
३८. ऋग्वेद, १.२०.७
३९. ऋग्वेद, ४.३३.१
४०. ऋग्वेद, ४.३४.४, ४.३५.१ आदि। ऐतरेय ब्राह्मण, ३.३०

Shodh Navneet (International Peer-Reviewed Research Journal)
ISSN : 2321-6581, IIJ Impact Factor : 5.037, Vol. XIX, July - Dec. - 2022

आचार्य पाणिनि पूर्व संस्कृत व्याकरण का इतिहास

डॉ. गुंजन गर्ग*

शोध-सारांश

संस्कृत वाङ्मय में आचार्य पाणिनि और उनकी रचना अष्टाध्यायी विशिष्ट स्थान रखते हैं। पाणिनीय व्याकरण ग्रन्थ अष्टाध्यायी ही सहस्त्रों वर्षो से संस्कृत साहित्य को पल्लवित और पुष्पित किये हुए है। आचार्य पाणिनि से पूर्व भी संस्कृत व्याकरण जगत् का विकास हो चुका था। वेद, ब्राह्मण, आरण्यक, उपनिषद, प्रतिशाख्य, वेदाङ्ग के ग्रन्थों में इसके स्पष्ट उल्लेख मिलते हैं। व्याकरणशास्त्र के प्रसिद्ध दो सम्प्रदाय हैं - ऐन्द्र सम्प्रदाय और माहेश्वर सम्प्रदाय। आचार्य पाणिनि ने भी अष्टाध्यायी में प्राचीन वैयाकरणों के नामों की चर्चा की है। अन्य ग्रन्थों में आचार्य पाणिनि से पूर्व संस्कृत वैयाकरणों का उल्लेख किया है। इस शोधपत्र का आचार्य पाणिनि से पूर्व संस्कृत व्याकरण के इतिहास का विवेचन ही प्रतिपाद्य है।

मुख्य बिन्दु - आचार्य पाणिनि, अष्टाध्यायी, वैदिक युग, ब्राह्मण युग, प्रतिशाख्य युग, वेदाङ्ग, ऐन्द्र सम्प्रदाय, माहेश्वर सम्प्रदाय, अष्ट व्याकरण, नव्य व्याकरण आदि।

संस्कृत व्याकरण-जगत् को अपनी ज्ञान प्रभा से आलोकित करने वाले आचार्य पाणिनि सर्वश्रेष्ठ वैयाकरण थे। जिन्होंने अपनी अमर रचना अष्टाध्यायी द्वारा समस्त परवर्ती संस्कृत वैयाकरणों को और संस्कृत साहित्यकारों को भी एक नया व्याकरणात्मक आयाम दिया। जिसके माध्यम से वे अपनी कृतियों को एक ठोस व्याकरणपरक नींव दे सकते थे। उन्हीं की यश पताका की छाया में समस्त संस्कृत साहित्य परिपल्लवित और पुष्पित होने लगा। यहाँ तक की यह धारणा बन गई कि आचार्य पाणिनि के विरुद्ध जाने वाले प्रत्येक कृतिकार संस्कृत का विरोधी है। अतः उनका अनुगमन करना ही एक आदर्श हो गया है।

आचार्य पाणिनि से पूर्व भी संस्कृत व्याकरण जगत् का विकास हो चुका था। साक्षात् वेद, वेङ्गादि ग्रन्थ तथा रामायण एवं महाभारत आदि साहित्य ग्रन्थ इसके स्पष्ट प्रमाण हैं। अनेक ग्रन्थों में प्राप्त उद्धरण भी संस्कृत व्याकरण के स्वरूप के कुछ पक्षों को उजागर करते हैं। लेकिन यह भी सत्य है, कि काल के ग्रास में संस्कृत निधि का बहुत ह्रास हो चुका था और इतिहास की गर्तों में संस्कृत के अनेक अनमोल ग्रन्थ समा चुके थे। फिर भी कतिपय साक्ष्यों के आधार पर आचार्य पाणिनि से पूर्व संस्कृत व्याकरण के इतिहास पर निम्न बिन्दुओं के द्वारा दृष्टिपात किया जा सकता है।

* सहायक आचार्य-संस्कृत, राजकीय स्नातकोत्तर महाविद्यालय करौली, राजस्थान

(क) **वैदिक युग**

संसार के समस्त ज्ञान का स्रोत वेद हैं, जैसा कि स्मृतिकार मनु ने कहा है – **वेदोऽखिलो धर्ममूलम्।**[१] व्याकरणशास्त्र का आदिमूल भी वेद ही है। ऋग्वेद संहिता में निर्वचन अथवा व्युत्पत्ति प्रदर्शन के कई उदाहरण मिलते हैं।[२] जिनके आधार पर कहा जा सकता है कि ऋग्वेद के ऋषियों ने व्युत्पत्ति के सम्बन्ध में अर्थात् अमुक् शब्द किस अर्थ में प्रयोग होता है, उसमें क्या धातु है ? उसके नामकरण का क्या आधार है ? और धातु एवं प्रत्यय के योग से क्या रूपान्तर होता है, आदि प्रश्नों पर पर्याप्त प्रकाश डाला है। कतिपय मन्त्र इस प्रकार हैं –

'गायन्ति त्वा गायत्रिणोऽर्चन्त्यर्कमर्किणः।' (ऋग्वेद, १.१०.१)

'स्तोतृभ्यो मंहते मघम्।'[३] (तत्रैव, १.११.३)

'यज्ञेन यज्ञमयजन्त देवा।'[४] (तत्रैव, १.१६४.५०)

'अर्चन्त्यर्कं मदिरस्य पीतये।' (तत्रैव– १.१६६.७)

'समिध्यमानः प्रथमानु धर्मा समक्तुभिरज्यते विश्ववारः।' (तत्रैव, ३.१७.१)

'एवा कविस्तुवीरवाँ ऋतज्ञाद्रतिणस्युर्द्रविणश्चकानः।' (तत्रैव, १०.६४.१६)

अन्य वेदों में भी व्युत्पत्तिपरक अनेक उदाहरण मिलते हैं, यथा –

'धान्यमसि धिनुहि देवान्।' (यजुर्वेद, १.२०)

'केतपूः केतं नः पुनातु।' (तत्रैव, ११.७)

'वृत्रँ हनति वृत्रहा।' (तत्रैव, ३३.९६)

'येन देवाः पवित्रेणात्मानं पुनते सदा।' (सामवेद, २.५.२.८.५)

'यददः सं प्रयतिरहावनदता हते। तस्मादा नद्यो नाम स्थ।' (अथर्ववेद, ३.१३.१)

'तदाप्नोदिन्द्रो वो यतीस्तस्मादापो अनुष्ठन्।' (तत्रैव, ३.१३.२)

'तीर्थैस्तरन्ति।' (तत्रैव, १८.४.७)

इन मन्त्राशों में यज्ञादि शब्द की व्युत्पत्तियाँ दी गयी हैं। आधुनिक व्याकरणों एवं निरुक्त आदि द्वारा प्रदर्शित व्युत्पत्तियों से तुलना करने पर अत्यधिक सामंजस्य दृष्टिगोचर होता है। अतः निसन्देह कहा जा सकता है कि मूलतः वेद से ही व्याकरणशास्त्र की उत्पत्ति हुई है। इसी प्रकार अन्य कुछ ऋचाओं में व्याकरणपरक कुछ उल्लेख प्राप्त होते हैं, यथा– **वाकेन वाकं द्विपदा चतुष्पदाक्षरेण मिमते सप्तवाणीः।**[५] यहाँ सप्तवाणी पद विशेष विचारणीय है।[६] ऋग्वेद के आठवें मण्डल के ६९ वें सूत्र के अनेक मन्त्रों में इन्द्र का सम्बन्ध वाक् के दोहन से तथा वरुण का अधिगत ज्ञान वाले व्यक्ति से है। इस प्रसंग में त्रिष्टुप्, त्रिःसप्त, अप्, सप्तसिन्धवः एवं अनुक्षरन्ति काकुदम् आदि पदों का उल्लेख विचारणीय है। निरुक्त के प्रणेता आचार्य यास्क ने **'चत्वारि वाक्'**[७] मन्त्र की व्याख्या व्याकरणपरक की है। महाभाष्यकार पतञ्जलि ने व्याकरणाध्ययन के प्रयोजनों को बताते हुए पाँच वैदिक ऋचाओं – चत्वारि, शृङ्गा,[८] चत्वारि वाक्,[९] उत त्वः,[१०]

सक्तुमिव,[११] सुदेवोऽसि[१२] को उद्धृत कर इन ऋचाओं की व्याकरणपरक व्याख्या की है।

सर्वप्रथम 'व्या+कृ' का व्याकरण विवेचन या विश्लेषण अर्थ में प्रयोग यजुर्वेद में प्राप्त हुआ है –

दृष्टवा रूपे व्याकरोत् सत्यानृते प्रजापतिः।
अश्रद्धामनृतेऽदधाच्छ्रद्धां सत्ये प्रजापतिः।।[१३]

अर्थात् प्रथम प्रजापति ने सत्य और अनृत का व्याकरण किया। तात्त्विक दृष्टि के द्वारा उसने सत्य में श्रद्धा और असत्य या अनृत में अश्रद्धा रखी। यही सत्य और असत्य के विश्लेषण के अनन्तर प्रकृति और प्रत्यय का विश्लेषण होकर व्याकरण बना। तैत्तिरीय संहिता में वाणी के व्याकृत किये जाने का संकेत प्राप्त होता है – **वाग्वै पराक्ष्यव्याकृतावदत्। ते देवा इन्द्रमब्रुवन्, इमां नो वाचं व्याकुर्विति ..... तामिन्द्रोमध्यतोऽवक्रम्य व्याकरोत्।**[१४] मैत्रायणी संहिता में विभक्ति–संज्ञा का उल्लेख मिलता है– **तस्माद् षड् विभक्तयः।**[१५] अथर्ववेद में भी विभिन्न मन्त्रों में विभक्ति–संज्ञा का उल्लेख प्राप्त होता है। '**ये त्रिशप्ताः**'[१६] स्वतः सर्वाधिक प्रमाण है। इस प्रकार एक अन्य मन्त्र में अष्टापदी वाणी का ग्रहण किया गया है, जिससे सप्त विभक्तियाँ तथा सम्बोधन का बोध होता है – '**वाचमष्टापदीमहं नवस्त्रक्तिमृतस्पृशम्। इन्द्रात् परितन्वंममे।**'[१७]

उपर्युक्त विवरण से स्पष्ट हो जाता है, कि वेदों में व्याकरण के अनेक तत्त्वों का दर्शन होता है। वहाँ सप्त विभक्तियाँ, तीन काल, तीन वचन, चार पद, चार क्रम, द्विपद, चतुष्पद आदि व्याकरण के बहुत से सैद्धान्तिक आधार स्पष्टतः विद्यमान हैं।[१८]

(ख) **ब्राह्मण युग**

वेदों से प्रादुर्भूत व्याकरणशास्त्र का दर्शन ब्राह्मण युग में पर्याप्त विस्तार से प्राप्त होता है। यहाँ व्याकरणशास्त्र के अनेक पारिभाषिक शब्दों की स्थिति प्राप्त होती है, जो पाणिनीय व्याकरण का अंग है। ऐतरेय ब्राह्मण में विभक्ति रूप से सप्तधा विभक्त वाणी का उल्लेख है – '**सप्तधा वै वाग् वदत्। सप्त विभक्तय इति भट्टभास्करः।**[१९] गोपथ ब्राह्मण में अनेक व्याकरणात्मक पारिभाषिक शब्द वर्णित हैं –

ओंकारं पृच्छामः, को धातुः, किं प्रतिपदिकं, किं नामाख्यातं, किं लिङ्गं, किं वचनं, का विभक्तिः, कः प्रत्ययः, कः स्वर उपसर्गो निपातः, किं वै व्याकरणं, को विकारः, को विकारी, कतिमात्रः, कतिवर्णः, कत्यक्षरः, कतिपदः, कः संयोगः, किं स्नाानननादानुप्रदानानुकरणम्।[२०]

ब्राह्मण ग्रन्थों में निर्वचन सम्बन्धी अनेक उदाहरण मिलते हैं। शतपथ ब्राह्मण में यास्कीय परम्परा का पुननिर्देश प्राप्त होता है। यहाँ पर अर्थ की नित्यता का यास्कीय सिद्धान्त भी पूरी तरह अनुकृत हुआ है। इस आधार पर हम ब्राह्मण ग्रन्थों को निरुक्त का आधार ग्रन्थ भी कह सकते हैं।[२१] व्याकरणशास्त्र का भी पर्याप्त विकसित स्वरूप यहाँ दृष्टिगोचर होता है। श्री युधिष्ठिर

मीमांसक जी का मत है कि वर्तमान में उपलब्ध कृष्ण द्वैपायन के शिष्य-प्रशिष्य द्वारा प्रोक्त समस्त आर्ष वैदिक वाङ्मय की रचना से पूर्व व्याकरणशास्त्र पूर्णतया सुव्यवस्थित बन चुका था और वह पठन-पाठन में व्यवहृत होने लग गया था।[२२] सत्यकाम वर्मा के अनुसार भी सम्भवतः ब्राह्मण ग्रन्थों के समय तक ही वैयाकरणों की एक परम्परा स्थापित हो चुकी थी।[२३]

(ग) प्रातिशाख्य युग

वेदों की प्रत्येक शाखा के लिए प्रतिशाख्य नामक व्याकरण के ग्रन्थ लिखे गये। प्रतिशाख्यों में प्रत्येक वेद की विभिन्न शाखाओं के लिये व्याकरण नियम दिये हुए हैं। इनमें वर्णोच्चारण, शिक्षा, संहिता पाठ को पदपाठ में बदलना, पदपाठ को संहिता पाठ में बदलना, संधि-विधान, उदात्तादि स्वरों का विधान, समस्त पदों का विभाजन, स्वर संचार तथा शाखा विशेष से सम्बद्ध सभी विषयों का सूक्ष्म विवेचन किया गया है। इन प्रतिशाख्यों में ऋक्, साम और अथर्व के प्रतिशाख्यों के अतिरिक्त आश्वलायन, वाजसनेय, तैत्तिरीय, मैत्रायणी और चारायणीय प्रतिशाख्य भी उपलब्ध या ज्ञात हैं। तन्त्र ग्रन्थ प्रतिशाख्यों के ही सदृश हैं। इनमें ऋक्तन्त्र, लघुतन्त्र, अथर्वचतुरध्यायी, प्रतिज्ञासूत्र, भाषिकसूत्र, सामसूत्र और अक्षरतन्त्र प्राप्त हैं। जिनमें प्रथम पाँच वैदक स्वरों से तथा शेष दो सामगान से सम्बद्ध हैं।

प्रतिशाख्यों को व्याकरण का प्रारम्भिक रूप अर्थात् वैदिक व्याकरण कह सकते हैं। इन प्रतिशाख्यों में ह्रस्व, दीर्घ, प्लुत, उपसर्ग, निपात, आम्रेडित, अपृक्तादि अनेक व्याकरण सम्बन्धी पारिभाषिक शब्दों का प्रयोग मिलता है।[२४] जिनको परवर्ती वैयाकरणों ने ज्यों का त्यों स्वीकार कर लिया। पाणिनीय व्याकरण में भी अनेक संज्ञाओं का ग्रहण यहीं से लिया गया है, जैसे- उदात्त, अनुदात्त, स्वरित, आम्रेडित इत्यादि। ऋक् प्रतिशाख्य सर्वप्राचीन प्रतिशाख्य है। युधिष्ठिर मीमांसकजी का विचार है कि वैदिक पदपाठों की रचना से पूर्व व्याकरणशास्त्र अपनी पूर्णता को प्राप्त हो चुका था।[२५]

(घ) षड्वेदाङ्गों में व्याकरण

वेदों के ज्ञान परिज्ञानार्थ वेदार्थ सहायक अङ्ग के रूप में वेदाङ्ग ग्रन्थों की चर्चा विभिन्न ग्रन्थों में प्राप्त होती है। मुण्डकोपनिषद् में अपरा विद्या में वेद चतुष्ट्य के बाद षड् वेदाङ्गों का परिगणन किया गया है।[२६] शिक्षा, व्याकरण, निरुक्त, छन्द, कल्प और ज्योतिष इन छः वेदाङ्गों को षडङ्ग का निर्देश गोपथ ब्राह्मण, बौधायन धर्मसूत्र, गौतम धर्मसूत्र, रामायण,[२७] महाभारत[२८] आदि में मिलता है।

षडङ्गों में व्याकरण विशिष्ट है। इसे वेदपुरुष का मुख कहा गया है- **मुखं व्याकरणं स्मृतम्।** अर्थात् जिस प्रकार मुख हृदयगत भावों को व्यक्त करता है, उसी प्रकार व्याकरण भी किसी भी रचना के वैशिष्ट्य को प्रतिपादित करता है। भाष्यकार पतंजलि ने भी षडङ्गों में व्याकरण की प्रधानता को स्वीकार किया है- **ब्राह्मणेन निष्कारणो धर्मः षडङ्गो वेदोऽध्येयो ज्ञेयश्च इति। प्रधानं च षट्स्वङ्गेषु व्याकरणम्।**[२९] आचार्य यास्क के मतानुसार साक्षात्कृतधर्मा ऋषियों

ने व्याकरणादि वेदाङ्गों का अविष्कार, विस्तार एवं पल्लवन किया है – **साक्षात्कृतधर्माणः ऋषयो बभूवुः। तेऽवरेभ्यः असाक्षात्कृतधर्मेभ्यः उपदेशेन मन्त्रान् संप्रादुः। उपदेशाय ग्लायन्तः अवरे बिल्मग्रहणाय इमं ग्रन्थं समाम्नासिषुः। वेदं च वेदाङ्गानि च।**[३०]

यास्कीय निरुक्त में निर्वचन के नियमों का विशेष विस्तार के साथ प्रतिपादन किया गया है। इसमें अनेक वैयाकरणों का उल्लेख भी मिलता है।[३१] समस्त नाम शब्दों को धातुज मानने वाला शाकटायन व्याकरण भी यास्क से पूर्व बन चुका था।[३२] इसके अतिरिक्त औदुम्बरायण, औपमन्यव, काठक्य, चर्मशिरा, तैचिकी, शाकपूणि, शतबलाक्ष, मौद्गल्य, स्थौलस्थिवि आदि अनेक वैयाकरणों का उल्लेख भी निरुक्त में मिलता है।[३३] आचार्य यास्क कहते हैं – **तदिदं विद्यास्थानम्। व्याकरणस्य कात्स्न्र्यम्।**[३४] निरुक्तकार यास्क ने यहाँ तक कहा है, कि जो व्याकरण का ज्ञाता नहीं है, उसे निरुक्त का उपदेश देना व्यर्थ है। उनका कथन है – **नैकपदानि निब्रूर्यात्, न अवैयाकरणाय। न अनुपसन्नाय। अनिदंविदे वा।**[३५] निघण्टु की व्याख्या के लिए आचार्य यास्क ने धातु प्रकृति, प्रत्यय, लोप, आदेश, आगम, निवृत्तिस्थान, संप्रसारणादि व्याकरणात्मक विषयों पर चर्चा की है।

शब्दशास्त्र के लिए व्याकरण शब्द का प्रयोग गोपथ ब्राह्मण,[३६] मुण्डकोपनिषद्,[३७] रामायण,[३८] महाभारत आदि अनेक ग्रन्थों में मिलता है। वाल्कीकि रामायण से विदित होता है कि राजाराम के काल में व्याकरण का सुव्यवस्थित पठन–पाठन होता था। महाभाष्यकार पतंजलि के अनुसार भी अत्यन्त पुराकाल में व्याकरणशास्त्र का पठन–पाठन प्रचलित था – **पुराकल्प एतदासीत्, संस्कारोत्तरकालं ब्राह्मणा व्याकरणं स्माधीयते।**[३९] डॉ. वासुदेव शरण अग्रवाल के अनुसार 'श्यूआन चुआङ्' ने अपनी पुस्तक 'सियुति' में लिखा है, कि ब्रह्मदेव और शक्र ने व्याकरण सम्बन्धी नियम स्थित किये थे।[४०]

इस प्रकार इन सभी प्रमाणों के आधार पर कहा जा सकता है कि व्याकरण का आविर्भाव वेदों से ही हुआ है। वैदिक वाङ्मय में व्याकरण सम्बन्धी अनेक उद्धरणों का उल्लेख पर्याप्त रूप से प्राप्त होता है। जो व्याकरण के अस्तित्व को ही पर्याप्त विकसित रूप में सिद्ध करते हैं।

भारतीय इतिहास में सभी विद्याओं के आदि प्रवक्ता ब्रह्मा को स्वीकार किया जाता है। अतः परम्परानुसार व्याकरणशास्त्र के भी आदि प्रवक्ता भी ब्रह्मा हैं। जैसा कि ऋक्तन्त्र में कहा गया है– **ब्रह्मा बृहस्पतये प्रोवाच, बृहस्पतिरिन्द्राय, इन्द्रो भरद्वाजाय, भरद्वाज ऋषिभ्यः, ऋषयो ब्राह्मणेभ्यः।**[४१] ब्रह्मा द्वारा किया गया यह आदि प्रवचनशास्त्र कहलाया। उत्तरवर्ती प्रवचन मुख्यतया अनुशास्त्र, अनुतन्त्र अथवा अनुशासन कहलाते हैं। ब्रह्मा के पश्चात् द्वितीय व्याकरण प्रवक्ता बृहस्पति हैं। ब्राह्मण ग्रन्थों में इन्हें देवों का पुरोहित माना गया है। वैयाकरण समुदाय में इनके व्याकरणशास्त्र का नाम शब्दपारायण मान्य है। बृहस्पति ने इन्द्र को शब्दशास्त्र का प्रवचन किया था।[४२] अध्ययन की यह प्रक्रिया अतिकठिन एवं दुरूह थी।

व्याकरणशास्त्र के सम्प्रदाय

व्याकरणशास्त्र के दो मार्ग अथवा सम्प्रदाय प्रसिद्ध हैं – **१. ऐन्द्र सम्प्रदाय २. माहेश्वर सम्प्रदाय।**

ऐन्द्र सम्प्रदाय – इन्द्र सम्बन्धी सम्प्रदाय अर्थात् ऐन्द्र सम्प्रदाय। व्याकरण सम्प्रदाय में यह मान्य है कि इतिहास के गर्त में कभी न कभी ऐन्द्र सम्प्रदाय अथवा उसके व्याकरण का प्रचलन रहा होगा, जिसमें व्याकरण का प्रारम्भिक स्वरूप निर्धारित होगा। अष्टव्याकरण और नवव्याकरण के जो उल्लेख प्राप्त होते हैं, उनमें भी इन्द्र व्याकरण का नाम प्राप्त होता है। तैत्तिरीय संहिता में सर्वप्रथम इन्द्र को ही व्याकरण का प्रकृति-प्रत्यय विभागयुक्त करने का श्रेय दिया है – **वाग्वै पराच्यव्याकृतावदत्। ते देवा इन्द्रमब्रुवन, इमां नो वाचं व्याकुर्विति ..... तामिन्द्रो मध्यतोऽवक्रम्य व्याकरोत्।**[४३]

ऋक्तन्त्र में ब्रह्मा को आदि वैयाकरण माना गया है तथा ब्रह्मा से बृहस्पति और बृहस्पति से इन्द्र को व्याकरण के प्रवचन को पुष्ट किया है।[४४] महाभाष्यकार ने भी इसी बात का समर्थन किया है।[४५] कथासरित्सागर और बृहत्कथा मंजरी के अनुसार ऐन्द्र व्याकरण के स्थान पर पाणिनि व्याकरण का महत्त्व स्थापित हुआ है।[४६] ऐन्द्र व्याकरण के परिणाम के सन्दर्भ में माना जाता है, कि यह अतिविस्तृत था। तिब्बतीय ग्रन्थों के अनुसार इसका परिमाण २५००० श्लोक था।[४७] इसकी तुलना महाभारत के टीकाकार देवबोध ने अर्णव से की है। ए.सी. बर्नेल ने भी अपने लेख 'द ऐन्द्र स्कूल ऑफ संस्कृत ग्रामोरियन्स' में पाणिनीय व्याकरण में आये '**प्राचाम्**' पद से तात्पर्य ऐन्द्र व्याकरण से ही लिया है। वैयाकरण जगत् में कातन्त्र व्याकरण को ऐन्द्र सम्प्रदाय से सम्बद्ध करने पर विवाद बना हुआ है। बर्नेल ने तोलकाप्पियम् नामक दक्षिणात्य व्याकरण, कातन्त्र तथा पालि व्याकरण का सादृश्य दिखाते हुए ऐन्द्र व्याकरण के स्वरूप की अवधारणा की कल्पना को प्रस्तुत किया है।[४८] निरुक्त के '**अथः पदम्**' पर दुर्गाचार्य की '**नैकपदजातम्। यथा अर्थः पदमितयैन्द्राणाम्**' वृत्ति ऐन्द्र सम्प्रदाय में पद की परिभाषा को बताती है।[४९] इस प्रकार प्राप्त उद्धरण ऐन्द्र व्याकरण और उसके एक सम्प्रदाय के अस्तित्व को द्योतित करते हैं।

माहेश्वर सम्प्रदाय

आजकल जिस व्याकरण को हम पढते हैं, वह पाणिनीय व्याकरण वैयाकरण सम्मति से माहेश्वर सम्प्रदाय के अन्तर्गत स्वीकार किया जाता है। महाभारत के शान्तिपर्व मे उद्धृत किया गया है– '**वेदात् षडङ्गान्युद्धृत्य**'[५०] अर्थात् शिव ने षडङ्गों का प्रवर्तन किया था, जिसमें व्याकरणशास्त्र प्रमुख है। अन्यत्र भी माहेश्वर व्याकरण की विद्यमानता के पर्याप्त उद्धरण प्राप्त होते हैं। व्याकरण की परम्परा में ये दोनों ही सम्प्रदाय सुविख्यात हैं। इन सम्प्रदायों के मध्य क्या भेद है? इस सन्दर्भ में ज्ञात होता है कि ऐन्द्र सम्प्रदाय के अन्तर्गत व्याकरण के लौकिक और वैदिक भेद नहीं है। सामान्यतः सभी शब्दों के लिए प्रकृति-प्रत्यय नियम का विधान है। जबकि माहेश्वर सम्प्रदाय के अन्तर्गत सम्भवतः लौकिक-वैदिक उभयपदी प्रक्रिया बोधक व्याकरणग्रन्थों

का समावेश होता है।

पाणिनि पूर्व वैयाकरण

आचार्य पाणिनि से प्राचीन ८५ वैयाकरणों के नाम प्राप्त होते हैं। इनमें से १० वैयाकरणों के नाम आचार्य पाणिनि ने अष्टाध्यायी में दिये हैं। १६ वैयाकरणों के नाम अन्य ग्रन्थों में मिलते हैं। १० प्रतिशाख्य और ७ अन्य वैदिक व्याकरण ज्ञात होते हैं। प्रतिशाख्यादि में ५९ प्राचीन व्याकरणाचार्यों का उल्लेख मिलता है। पुनरुक्त नामों को छोड़ देने पर ८५ वैयाकरणों का ज्ञान प्राप्त होता है।[५१]

१. अष्टाध्यायी में उल्लिखित आचार्य पाणिनि से प्राचीन १० आचार्य

१. आपिशलि	२. काश्यप
३. गार्ग्य	४. गालव
५. चाक्रवर्मण	६. भारद्वाज
७. शाकटायन	८. शाकल्य
९. सेनक	१०. स्फोटायन

२. प्राचीन ग्रन्थों में उल्लिखित १६ आचार्य

१. शिव (महेश्वर)	२. बृहस्पति
३. इन्द्र	४. वायु
५. भारद्वाज	६. भागुरि
७. पौष्करसादि	८. चारायण
९. काशकृत्स्न	१०. शन्तनु
११. वैयाघ्रपद्य	१२. माध्यन्दिनी
१३. रौढ़ि	१४. शौनक
१५. गौतम	१६. व्याडि

३. दस प्रातिशाख्य

१. ऋक् प्रतिशाख्य (शौनककृत)	२. वाजसनेय प्रतिशाख्य (कात्यायनकृत)
३. सामप्रतिशाख्य (पुष्पसूत्र)	४. अथर्व प्रतिशाख्य
५. तैत्तिरीय प्रतिशाख्य	६. मैत्रायणी प्रतिशाख्य
७. आश्वलायन प्रतिशाख्य	८. वाश्कल प्रतिशाख्य
९. शांखायन प्रतिशाख्य	१०. चारायण प्रतिशाख्य

४. सात अन्य वैदिक व्याकरण

१. ऋक्तन्त्र (शाकल्य या औदव्रजिकृत)	२. लघु-ऋक्तन्त्र

३. अथर्वचतुरध्यायी (शौनक या कौत्सकृत) ४. प्रतिज्ञासूत्र (कात्यायनकृत)
५. भाषिक सूत्र (कात्यायनकृत) ६. सामतन्त्र (औदव्रजि या गार्ग्य कृत)
७. अक्षरतन्त्र (आपिशलिकृत)

५. प्रतिशाख्यादि में उद्धृत ५९ आचार्य

१. अग्निवैश्य	२. अग्निवेश्यायन	३. अन्तरेय	४. आगस्त्य
५. आत्रेय	६. इन्द्र	७. उरव्य	८. उत्तमोत्तरीय
९. औदव्रजि	१०. औपशवि	११. काण्डमायन	१२. कात्यायन
१३. काण्व	१४. काश्पय	१५. कौण्डिन्य	१६. कौहलीपुत्र
१७. गार्ग्य	१८. गौतम	१९. जातूकर्ण्य	२०. तैत्तिरीयक
२१. वाल्भ्य	२२. नैगी	२३. पंचाल	२४. पाणिनि
२५. पौष्करसादि	२६. प्राच्यपंचाल	२७. प्लाक्षायण	२८. प्लाक्षि
२९. बाभ्रव्य	३०. बृहस्पति	३१. ब्रह्मा	३२. भरद्वाज
३३. भारद्वाज	३४. माक्षव्य	३५. माचाकीय	३६. माण्डूकेय
३७. माध्यन्दिन	३८. मीमांसक	३९. यास्क	४०. बाडबीकर
४१. वात्सप्र	४२. बाल्मीकि	४३. वेदमित्र	४४. व्याडि
४५. शाकटायन	४६. शाकल	४७. शाकल्य	४८. शाकल्यपिता
४९. शांखमित्रि	५०. शांखायन	५१. शूरवीर	५२. शूरवीरसुत
५३. शैत्यायन	५४. शौनक	५५. स्थवीरकौण्डिन्य	५६. सांकृत्य
५७. हारीत	५८. नकुलमुख	५९. स्थविर शाकल्य	

इनमें कुछ वैयाकरण पुनरुक्त हैं, उनकी गणना न करने पर आचार्य पाणिनि से प्राचीन कुल ८५ वैयाकरण होते हैं।

अष्ट व्याकरण

प्राचीन समय में प्रचलित अष्ट शब्दिकों का उल्लेख प्राप्त होता है।[५२]

ब्राह्मैशानमैन्द्रं च प्राजापत्यं बृहस्पतिम्।
त्वाष्ट्रमापिशलं चेति पाणिनीयमथाष्टमम्।।[५३]

इनमें आठ व्याकरण ब्रह्म, ऐशान, ऐन्द्र, प्राजापत्य, बार्हस्पत्य, त्वाष्ट्र, आपिशल और पाणिनीय हैं। एक अन्य स्थान पर इन्द्र, चन्द्र, काशकृत्स्न, आपिशलि, शाकटायन, पाणिनि, अमर और जैनेन्द्र आठ वैयाकणों को उद्धृत किया गया है।[५४]

नव व्याकरण

विविध ग्रन्थों में नव व्याकरणों का भी उल्लेख मिलता है। वाल्मीकि रामायण के उत्तरकाण्ड

में श्री हनुमान् जी को नवव्याकरण को जानने वाला कहा गया है – **सोऽयं नवव्याकरणार्थवेत्ता।**[५५] युधिष्ठिर मीमांसक जी ने अपने ग्रन्थ में तत्त्वनिधि ग्रन्थ से नव प्रकार के व्याकरणों का उल्लेख किया है –

ऐन्द्रं चान्द्रं काशकृत्स्नं कौमारं शाकटायनम्।
सारस्वतं चापिशलं शाकल्यं पाणिनीयकम्।।[५६]

इस प्रकार इस समस्त अध्ययन से स्पष्ट है कि आचार्य पाणिनि से पूर्व संस्कृत व्याकरण अपने पूर्ण स्वरूप को प्राप्त कर चुका था। वेद, ब्राह्मण, प्रातिशाख्य तथा वेदाङ्गों में संस्कृत व्याकरण के विविध स्वरूपों को देखा जा सकता है। व्याकरण के दोनों सम्प्रदाय, अष्टव्याकरण, नवव्याकरण तथा आचार्य पाणिनि पूर्व ५९ व्याकरणाचार्यों के नाम संस्कृत व्याकरण की समृद्ध परम्परा का निर्देश करते हैं।

सन्दर्भ

१. मनुस्मृति, २.६
२. सं. व्या. भाा. इति., भाग ,१ पृ. ५८ से स्वीकृत।
३. निरुक्त, १.३.७, पृ. १२
४. यज्ञः कस्मात्? प्रख्यातं यजतिकर्म इति नैरुक्ताः। निरुक्त, ३.४.१९, पृ. ९४
५. ऋग्वेद, १.१६४.२४
६. संस्कृत व्याकरण, उद्. वि., पृ. २४
७. चत्वारि वाक् परिमिता पदानि तानि विदुर्ब्राह्मणा ये मनीषिणः।
गुहा त्रीणि निहिता नेङ्यन्ति तुरीयं वाचो मनुष्या वदन्ति।। ऋग्वेद, १.१६४.४५
८. चत्वारि शृङ्गा त्रयो अस्य पादा द्वे शीर्षे सप्त हस्तासो अस्य।
त्रिधा बद्धो वृषभो रोरवीति महो देवा मर्त्यां आ विवेश। तत्रैव, ४.५८.३
९. ऋग्वेद, १.१६४.४५
१०. उत त्वः पश्यन् न ददर्श वाचमुत त्वः शृण्वन् न शृणोत्येनाम्।
उतो त्वस्मै तन्वं विसस्रे जायेव पत्य उशती सुवासाः।। तत्रैव, १०.७१.४
११. सक्तुमिव तितउना पुनन्तो यत्र धीरा मनसा वाचमक्रत।
अत्रा सखायः सख्यानि जानते भद्रैषां लक्ष्मीर्निहिताधि वाचि।। तत्रैव, १०.७१.२
१२. सुदेवो असि वरुण यस्य ते सप्तसिन्धवः।
अनुक्षरिन्त काकुदं सूर्म्यं सुषिरामिव।। तत्रैव, ८.६९.१२
१३. यजुर्वेद, १९.७७
१४. तैत्तिरीय संहिता, ६.४.७
१५. मैत्रायणी संहिता, १.७.३
१६. अथर्ववेद, १.१.१
१७. तत्रैव, २०.४२.१

१८. स. व्या., उद् वि., पृ. २५
१९. ऐतरेय ब्राह्मण, ७.१.१
२०. गोपथ ब्राह्मण (पूर्व), १.१.२४
२१. स. व्या., एवं लघुसिद्धान्तकौमुदी, पृ. १२
२२. संस्कृत व्याकरणशास्त्र का इतिहास, (भाग – १), पृ. ६२
२३. स. व्या. उद्. वि., पृ. २५
२४. स. व्या. एवं ल. सि. कौ., पृ. १२
२५. संस्कृत व्याकरणशास्त्र का इतिहास, (भाग – १), पृ. ५९–६०
२६. तत्रापरा ऋग्वेदो यजुर्वेदः सामवेदो अथर्ववेदः।
शिक्षा कल्पो व्याकरणं निरुक्तं छन्दो ज्योतिषमिति।। (मुण्डकोपनिषद्, १.५)
२७. नाषडङ्गविदत्रासीन्नावृतो। रामायण, १.४.२१
२८. सं. व्या. शा. इति. (भाग १), पृ. ६१
२९. महाभाष्य (भाग– १), १.१.१, पृ. २३
३०. निरुक्त, १.६.२०, पृ. ३३
३१. न सर्वाणीति गार्ग्यो वैयाकरणानां चैके। तत्रैव, १.४.१२, पृ. १९
३२. तत्र नामान्याख्यातजानि इति शाकटायनः नैरुक्तसमयश्च। तत्रैव, १.४.१२, पृ. १९
३३. तत्रैव, द्रष्टव्य– परिशिष्ट – १, पृ. २५३
३४. तत्रैव. १.५.१५, पृ. २५
३५. तत्रैव, २.१.३, पृ. ४१
३६. गोपथ ब्राह्मण, १.१.२४
३७. मुण्डकोपनिषद्, १.५
३८. रामायण, ४.३.२९
३९. महाभाष्य, १.१.१, (भाग – १), पृ. ५१
४०. पाणिनिकालीन भारत, पृ. १६
४१. ऋक्तन्त्र, १.४
४२. महाभाष्य, १.१.१, (भाग – १), पृ. ५४
४३. तैत्तिरीय संहिता, ६.४.७
४४. ऋक्तन्त्र, १.४
४५. महाभाष्य, १.१.१, भाग – १, पृ. ५४
४६. पाणिनिकालीन भारत, पृ. १८
४७. यान्युज्जहार माहेन्द्राद् व्यासो व्याकरणार्णवात्।
पदरत्नानि किं तानि सन्ति पाणिनिगोष्पदे।। संस्कृत व्याकरणशास्त्र का इतिहास, (भाग – १), पृ. ९३
४८. पतंजलि भारत, पृ. ८
४९. सं. व्या. एवं. लघुसिद्धान्तकौमुदी, पृ. ७५
५०. संस्कृत व्याकरणशास्त्र का इतिहास, (भाग – १), पृ. ८३

५१. संस्कृत व्याकरणशास्त्र का इतिहास, (भाग – १), पृ. ६७–६८ एवं ७१–७७
५२. संस्कृत व्याकरणशास्त्र का इतिहास, (भाग – १), पृ. ६८, पादटिप्पणी– २
५३. तत्रैव,– पृ. ६८
५४. तत्रैव, पृ. ६९
५५. रामायण, ७.३६.४७
५६. संस्कृत व्याकरणशास्त्र का इतिहास, (भाग – १), पृ. ७०

सन्दर्भ-ग्रन्थसूची

- अथर्ववेद, श्रीपाद दामोदर सातवलेकर, स्वाध्याय मण्डल, पारडी, १९८५
- ऐतरेय ब्राह्मण, डॉ. पी.के. नारायणपिल्ल सुन्दरविलास मुद्रालय, अनन्तरायन सं. १९५२
- ऋग्वेद (भाग १–४), श्रीपाद दामोदर सातवलेकर, स्वाध्याय मण्डल, पारडी, १९८५
- गोपथ ब्राह्मण, श्रीजीवानन्द विद्यासागर एवं भट्टाचार्य नारायणयन्त्र, कलकत्ता, प्रथम संस्करण – १८९१
- तैत्तिरीय संहिता, श्रीपाद दामोदर सातवलेकर, स्वाध्याय मण्डल, पारडी द्वितीय संस्करण – १९५७
- निरुक्त, उमाशंकर शर्मा 'ऋषि', चौखम्बा विद्याभवन, वाराणसी, संस्करण – २००५
- मनुस्मृति, पं. रामेश्वर भट्ट, चौखम्बा संस्कृत प्रतिष्ठान, वाराणसी, संस्करण – २००३
- महाभाष्य (भाग १–४), श्री भार्गव शास्त्री, चौखम्बा संस्कृत प्रतिष्ठान, नई दिल्ली, संस्करण – १९८८
- मैत्रायणी संहिता, श्रीपाद दामोदर सातवलेकर, स्वाध्याय मण्डल, पारडी, १९५७
- यजुर्वेद, श्रीपाद दामोदर सातवलेकर, स्वाध्याय मण्डल, पारडी, १९८५
- पाणिनिकालीन भारत, डॉ. वासुदेव शरण अग्रवाल, चौखम्बा विद्याभवन, वाराणसी, संस्करण – १९९३
- संस्कृत व्याकरण शास्त्र का इतिहास (प्रथम भाग), युधिष्ठिर मीमांसक, श्रमलाल कपूर ट्रस्ट, बहालगढ़, सोनीपत, हरियाणा, संस्करण – १९८४

Shodh Navneet (International Peer-Reviewed Research Journal)
ISSN : 2321-6581, IIJ Impact Factor : 5.037, Vol. XIX, July - Dec. - 2022

संस्कृत काव्यों में आभूषण

कुलदीप*

शारीरिक सौन्दर्य की वृद्धि के लिए नाना प्रकार के वस्त्रों की भाँति विभिन्न प्रकार के आभूषणों को भी प्रधानता दी जाती है। रामकाव्यों के अध्ययन से यह ज्ञात होता है कि नर–नारी दोनों ही आभूषण प्रिय थे। पुरुष भी नारी की भाँति आभूषण पहनते थे। वाल्मीकि से लेकर सभी परवर्ती कवियों ने आभूषणों से सुशोभित नारी का चित्रण किया है। आदिकवि ने प्रकृति के सुन्दर दृश्यों की उपमा के लिए सुन्दर वस्त्रों तथा आभूषणों से अलंकृत नारी का चयन किया है। उदाहरणार्थ– आदिकवि ने फलों, पल्लवों, गुल्मों तथा पक्षियों से आवृत्त त्रिपथगामिनी दिव्य नदी गंगा की शोभा की तुलना उत्तम आभूषणों से सजी हुई युवती से करते हैं।

सुन्दर वस्त्र और आभूषण नारी के परिधान के आवश्यक अङ्ग माने जाते थे। उनके बिना नारी का दर्शन अत्यन्त कष्टकर माना जाता था। वनगमन के समय जब सीता ने चीर धारण किये थे तो राजपुरोहित वसिष्ठ का हृदय द्रवित हो उठा था, उन्होंने बार–बार कैकयी को कहा कि वह सीता को उत्तम वस्त्राभूषणों से अलंकृत करें। रावणवध के पश्चात् राम ने विभीषण को आज्ञा दी थी वह सीता को आभूषणों से विभूषित करके उनके समक्ष ले आए। कवियों ने आभूषणों का भूषण, विभूषण, अलङ्कार, आभरण आदि कई नामों से उल्लेख किया है। आभूषण दो प्रकार के थे। एक सुवर्ण आदि धातुओं से निर्मित तथा दूसरे पुष्पाभरण नारियों के विभिन्न अङ्गों को अलंकृत करने वाले धातुओं से निर्मित आभूषणों का वर्णन निम्नलिखित हैं।

शिरोभूषण

पूर्ववर्ती महाकाव्यों में नारियों के सिर में पहने जाने वाले आभूषणों में केवल चूड़ामणि का उल्लेख मिलता है। अभिनन्द ने सिर पर धारण किए जाने वाले आभूषण को शिरोमणि का नाम दिया है। आनन्दरामायणकार ने चूड़ामणि के साथ–साथ सुवर्ण की तारों मे गुंथे हुए मोतियों एवं रत्न निर्मित पुष्पों से सिर के अलङ्करण की प्रथा का वर्णन किया है।

मस्तकाभरण

आदिकाव्य में सोने के तिलक का वर्णन मिलता है। यह आधुनिक सुहाग टीके की भाँति होता था, जिसे नारियाँ माँग के ऊपर पहनती थी। यह माथे पर लटकता था। कालिदास भी ललाट पर धारण करने वाले तिलक का वर्णन करते हैं। आनन्दरामायणकार ने रत्नों एवं मणिमुक्ताओं से

* जेआरएफ, विषय– संस्कृत, गाँव– गांजबड़, जिला– पानीपत, हरियाणा

निर्मित तिलक का वर्णन किया है जो नारी के ललाट की शोभा का वर्द्धन करता है।

कर्णाभूषण

स्त्री और पुरुष दोनों के कानों में छिद्र होते थे। पुरुष केवल कुण्डल पहनता था, परन्तु नारियाँ कानों में कुण्डल के अतिरिक्त भी बहुत-से आभूषण पहनती थीं। नारी के कानों के सामान्य आभूषण कुण्डल थे। जो आभूषण सीता ने वानरों के बीच में फेकें थे उनमें कुण्डल भी थे। कुण्डल रत्न जड़ित भी होते थे। वनवास से वापिस आने पर सीता तथा वानर-पत्नियों ने आभूषणों से अलंकृत होते समय कानों में चमकते हुए कुण्डल डाले थे। आदिकाव्य में एक स्थान पर नारी के कर्णाभूषणों में कर्णवेष्ट (कर्णफूल) का उल्लेख भी मिलता है। कालिदास ने कर्णोत्पल का वर्णन किया है। ऐसा प्रतीत होता है कि ये आभूषण आधुनिक कर्णफूल की भाँति होते थे जिसे कान के छेद में डालकर पीछे से पेंच से बन्द कर दिया जाता है ताकि ये गिर न जायें। आनन्दरामायणकार ने मणि-माणिक्य तथा मोतियों के झुमके वाले, रत्न निर्मित पुष्पों से चित्रित ताटंक नामक कर्णाभूषण का वर्णन किया है। नारियाँ रत्नजड़ित तथा मोतियों के झुमके वाली सुवर्ण की बनी हुई कर्ण शृंखलाएं भी पहनती थी।

नासाभरण

वाल्मीकि, कालिदास आदि पूर्ववर्ती कवियों ने नाक के आभूषण का वर्णन नही किया है। आनन्दरामायणकार ने नारी की मणि-माणिक्य तथा मोतियों के झुमके वाली सुवर्ण मयूर की आकृति की नासामणि का वर्णन किया है।

कण्ठाभरण

वाल्मीकि रामायण में सुवर्णमाला का वर्णन मिलता है। कवि ने हेमसूत्र का कई बार उल्लेख किया है। ऐसा प्रतीत होता है कि यह गले में पहनने वाली सोने की जंजीर या मंगलसूत्र की भाँति होता था। आदिकाव्य में मुक्ताहार, मणियों के हार, नीलम के हार का वर्णन मिलता है। रामायण में हंसली और कंठी का वर्णन भी मिलता है। कवि कालिदास का कथन है कि नारियों के हार स्तनमण्डल पर लटकते थे। मुक्ताहार मोतियों की धागे में पिराही हुई माला होती थी। आनन्दरामायण में कण्ठाभरणों में नवरत्नमाला, मुक्ताहारों, दानों वाली सुवर्ण मालाओं, सुवर्ण निर्मित आंवलों की मालाओं, मणियों की मिश्रित मालाओं तथा मंगलसूत्रों का वर्णन मिलता है।

हस्ताभरण

स्त्रियाँ हाथों तथा भुजाओं में कंगन, केयूर, अंगद आदि विभिन्न प्रकार के आभूषण पहनती थी। वाल्मीकि के नारियों के हस्ताभरण और अंगद का उल्लेख किया है। हस्ताभरणों में मणि तथा मूंगे जड़े होते थे। कवि ने पारिहार्य (हाथ का कड़ा) तथा वलय (कंगन) का भी उल्लेख किया है। अंगद तथा केयूर का वर्णन भी मिलता है। ये दोनों आभूषण बाजू में बाँधे जाते थे। राम की परिचारिकाएं मणि तथा सुवर्ण निर्मित केयूर धारण किया करती थी। स्पष्ट होता है कि अंगद और केयूर आभूषण सर्वसाधारण थे। कवि कालिदास ने भी अंगद और वलय का उल्लेख किया है।

महाकवि भष्टि वलय को नारियों का अनिवार्य आभूषण मानते हैं। कवि कुमारदास ने शंख के बने हुए वलयों का उल्लेख किया है। इनके अतिरिक्त सुवर्ण पुष्पों से विरचित करचूड़ (कंगनों) काँच की चूड़ियों, सोने के कड़े का भी उल्लेख किया गया है।

कटि आभूषण

करधनियों के मेखला, रशना, काञ्जी आदि विभिन्न प्रकार है। रामकाव्य में कटि प्रदेश में बाँधे जाने वाले आभूषणों का प्रचुर वर्णन ही इनकी लोकप्रियता को सिद्ध करता है।

(अ) मेखला – मणियों की दानेदार करधनी मेखला कहलाती थी। आदिकवि ने लड़ियों वाली मेखला का वर्णन किया है। कवि कुमारदास ने डोरी वाली मेखला का वर्णन किया है। अभिनन्द भी मेखला को नारी की कटि के सौन्दर्य का वर्धक मानते हैं।

(ब) रशना – रशना लड़ियों वाली होती थी। राजपरिवार की रानियाँ तथा दासियाँ रशनाएँ पहनती थीं। कालिदास स्पष्ट कहते हैं कि नारियाँ मोतियों के धागों में पिरोकर रशनाएँ बनाती थी। उन्होंने हेमरशना का वर्णन किया है। इससे ज्ञात होता है कि रशना सोने की होती थी।

(स) काञ्जी – यह एक प्रकार की घुंघरूदार करधनी होती थी जो मेखला तथा रशना से चौड़ी होती थी। इसका निर्माण सोने से किया जाता था। वाल्मीकीय रामायण में इसका सबसे अधिक वर्णन मिलता है। कवि कुमारदास ने नारी की काञ्जी से उत्पन्न मधुर नाद की तुलना कलहंस के नाद से की है।

पादाभूषण

नारियाँ अन्य अङ्गों की भाँति पैरों को भी आभूषणों से भूषित किया करती थी। रामायण, रघुवंश, भट्टिकाव्य आदि महाकाव्यों में पैरों में पहने जाने वाले आभूषणों में केवल नूपुरों का वर्णन मिलता है। परन्तु परवर्ती महाकाव्यों में पाँव की अंगुलियों में पहने जाने वाले विधुओं आदि का वर्णन मिलता है। महाकवि वाल्मीकि ने नुपूरों की झनकार की तुलना हंसों की कलनाद से करते हैं। सीता ने वानरों के बीच में फेंके गए आभूषणों में एक नूपुर भी फेंका था। कालिदास भी मधुर शब्द करने वाले तथा उद्भासित होने वाले नूपुरों का वर्णन करते हैं। कुमारदास ने भी नूपुरों को नारी के पैरों के सौन्दर्य का वर्धक माना है। आनन्दरामायणकार ने नूपुरों के साथ-साथ मछली, कछुए, नक्र आदि के आकार वाले पाँव की अंगुलियों में पहनने वाले आभूषणों का उल्लेख किया है। स्पष्ट है नूपुर नारियों के सर्वप्रिय आभूषण रहे थे। ये आधुनिक काल की पायजेल की भाँति के होते थे।

पुष्पाभरण

सुवर्ण, हीरे, जवाहरों तथा मणिरत्न के आभूषणों के अतिरिक्त नारियाँ, पुष्पों से बने हुए आभूषणों से अपने शरीर का अलंकरण किया करती थी। आदिकवि ने फूलों के हारों तथा केशों में गुंथे जाने वाले पुष्पाभूषणों का वर्णन अनेक स्थलों पर किया है। उदाहरणार्थ कोपभवन में प्रवेश करने पर कैकेयी ने अपने पुष्पहार उतार कर फेंक दिये थे। रावण द्वारा अपहृत की जाती हुई सीता के पुष्पहार छिन्न-भिन्न हो गए थे। कालिदास ने केशपाश में बाँधी जाने वाली पुष्पमालाओं का वर्णन

किया है। बालों में फूल गुंथे जाते थे। अशोक पुष्पों से केश के आभूषण बनाए जाते थे। मौलश्री के पुष्पों की विलास मेखलायें बनाई जाती थी। फूलों के कर्णाभूषण बनाए जाते थे। भट्टिकाव्य में पुष्पदाम का उल्लेख मिलता है। कवि कुमारदास का कथन है कि नारियाँ अशोक वृक्ष के कोमल पल्लवों के कर्णाभूषण बनाती थी। आनन्दरामायणकार पारिजात और मन्दार वृक्षों की फूल-मालाओं को नारियों के सौन्दर्य को बढ़ानें के लिए सर्वोत्तम मानते हैं। उपर्युक्त सभी उद्धरण नारी की पुष्पाभरणों में विशेष रुचि के परिचायक हैं।

इस प्रकार स्पष्ट है कि नारियों की आभूषण प्रियता उत्तरोत्तर बढ़ती गई थी। आभूषण की संख्या में समय के साथ-साथ वृद्धि होती गई थी। आभूषण सुहाग के चिह्न माने जाते थे। अतः साधवी नारी वस्त्राभूषणों से सुसज्जित रहती थी। वाल्मीकि से लेकर सभी परवर्ती कवियों ने आभूषणों से सुशोभित नारी का चित्रण किया है।

सन्दर्भग्रन्थ

- भट्टिकाव्यम् (व्याख्या सहित), चौखम्भा सुरभारती प्रकाशन, गोपाल मंदिर लेन, वाराणसी
- महाकवि कुमारदास, जानकीहरण, वीरेन्द्रनाथ घोष, मित्र प्रकाशन प्राइवेट् लिमिटेड, इलाहाबाद
- श्रीमद्वाल्मीकीय रामायण (हिन्दी भाषान्तर सहित), गोविन्द भवन कार्यालय, गीता प्रेस, गोरखपुर
- आनन्दरामायण (व्याख्या सहित), श्री वेंगटेश्वर प्रेस, ७ खेमराज जी कृष्णादास मार्ग खेतवाड़ी मुंबई, महाराष्ट्र
- महाकवि कालिदास, रघुवंश महाकाव्य, चौखम्भा सुरभारती प्रकाशन, गोपाल मंदिर लेन, वाराणसी

Shodh Navneet (International Peer-Reviewed Research Journal)
ISSN : 2321-6581, IIJ Impact Factor : 5.037, Vol. XIX, July - Dec. - 2022

Sapta Dhātu : Seven Essential Body Tissues in Principal Upaniṣads

Jyothi L*

Abstract

There are ten main Upaniṣads known as Daśopaniṣad and these are studied from ancient times onwards and still studied. The feather in the crown of these ten Upaniṣads is that the commentaries for these Upaniṣad were written by the famous scholar and philosopher Śri Śaṅkarācārya. There is a false belief that Upaniṣads contains only the knowledge pertaining to spirituality. But the Upaniṣad has in it many aspects of physical elements also. In the commentaries of Daśopaniṣad by Śri Śaṅkarācārya, there are ample references to Saptadhātus.

Key Words : Śaṅkarācārya, Upaniṣads, Saptadhātus.

Introduction

The Principal Upaniṣads considered to be the most significant and important were interpreted by Śri Ādi Śaṅkarācārya, a knowledgeable and enlightened man. The Principal Upaniṣads or Daśopaniṣads are Īśāvāsya Upaniṣad, Kena Upaniṣad, Kaṭha Upaniṣad, Praśna Upaniṣad, Muṇḍaka Upaniṣad, Māṇḍūkya Upaniṣad, Taittirīya Upaniṣad, Aitareya Upaniṣad, Chāndogya Upaniṣad and Bṛhadāraṇyaka Upaniṣad. The Principal Upaniṣads have received extensive study from a variety of perspectives, primarily as philosophical writings with profound implications for several important ontological questions. In actuality, they also deal with materialistic knowledge. Śaṅkara provides a wealth of materialistic knowledge in this primary Upaniṣad. Saptadhātus, or the "Basic Elements" of the human body, is one of them.

The human body is mostly composed of Saptadhātus, according to Ayurveda. The Sanskrit word "Saptadhātus" (Sapta=seven, dhātus=tissues) denotes the word's seven constituent parts. The

* Research Scholar, Department of Vedanta, Sree Shankaracharya University of Sanskrit Kalady, Kerala

entirety of the body's structure is controlled by these seven dhātus. The dhātus are important for the growth and nourishment of the body as well as for maintaining the functionality of many systems, organs, and vital body parts.

In the Chāndogyopaniṣad commentary, Śaṅkara outlines how the food consumed breaks down, combines with the Sapta Dhātu, and energises the body (Chāndogya Upaniṣad Śāṅkarabhāṣyaṁ, 6.8.6). The Sapta Dhātus are:

1. Bodily Juice or Plasma (Rasa).
2. Blood (Raktaṁ).
3. Flesh (Māṁsaṁ).
4. Fat (Medas).
5. Bones (Asthi).
6. Marrow (Majja), and
7. Semen (Retas).

These seven elements help a body become healthy by burning food. This is acknowledged by Ayurvedic experts as well (Aṣṭāngaśārīra, 3.62). These elements are necessary for the operation of all the major bodily parts. Only five elements are mentioned in the Taittirīya Upanishad. (1.7.1)

They are formally divided into seven categories, or Sapta dhātus.

1. Rasaṁ or Bodily Juice

The first component is "Rasa "or juice." The most crucial component is this. When food is consumed with water, it becomes a liquid, and when this liquid is heated by the body's internal fire, biological juice is created (Chāndogya Upaniṣad Śāṅkarabhāṣyaṁ, 6.8.4). The blood ingredient comes from this juice.

2. Raktaṁ or Blood

The fluid that is present in humans and other animals is called “blood.” Blood is referred to in the Upaniṣads as "Rudhira" (Bṛhadāraṇyaka Upaniṣad 3.9.28) and "Lohita" (Bṛhadāraṇyaka Upaniṣad 3.2.13, Chāndogya Upaniṣad 6.5.2). As previously said, the blood develops from bodily juice (Chāndogya Upaniṣad Śāṅkarabhāṣyaṁ, 6.8.4). We can see how the blood enters the body in the Chāndogya Upanishad commentary (Chāndogya Upaniṣad Śāṅkarabhāṣyaṁ, 6.5.2). The water that is consumed is split into three parts. They go by the names "Sthūla," "Madhyama," and "Sūkṣma."

The "Madhyama" portion forms the blood. Additionally, the Bṛhadāraṇyaka Bṛhadāraṇyaka Upaniṣad asserts that water contains blood (3.2.13). The blood from a human body seep out, just like sap does when a tree is cut(Bṛhadāraṇyaka Upaniṣad, 3.9.28).

3. Māṁsaṁ or Flesh

In between the skin and bones of both people and animals, there is Flesh. This has a soft tone. Blood is the source of the flesh (Chāndogya Upaniṣad Śāṅkarabhāṣyaṁ, 6.8.4). The Chāndogya Upaniṣad makes reference of the origin of flesh on the body. (6.5.1). The ingested food is separated into three parts, with the centre part turning into the flesh. In the Taittirīya Upaniṣad, it is emphasised that the flesh is a part of the body. (1.7.1).

4. Medas or Fat

The origin of the fat is from the flesh (Chāndogya Upaniṣad Śāṅkarabhāṣyaṁ, 6.8.4). There not many references about this component in the Upaniṣad.

5. Asthi or Bones

The bones are the ones which the body depends upon as well as helps in the movement of the body. Besides it helps to protect the inner organs from being wounded. In the Chāndogya Upaniṣad one can see the reference of how the bones are created. (6.5.3). The food that is consumed especially that which gives 'Tejus' or strength is dived into three parts and the strongest part becomes the bones. Śri Śaṅkara makes it clear which food gives 'Tejus' or strength, in his commentary. The foods that give the above-mentioned component are the oil or 'Tailaṁ' especially the sesame oil and 'Ghṛtaṁ' ghee and the consumption of this food provides energy or 'Tejus' which is of three kinds. The strongest kind of energy becomes the bones. In the Chāndogya Upaniṣad the bones are called the Pratihāraṁ (2.19.1), because according to Śri Śaṅkara the bones are the strongest part of the body.

The Ayurveda scholars and physicians have acclaimed that the sesame and ghee are very good for the strength of the bones. (Carakasaṁhita, Sūtrasthānaṁ, 13-41,42,43). In the Ayurveda medicine the weakness of bones is treated by using 'Tailaṁ' or sesame to make the bones strong (Aṣṭṭāngahṛdayaṁ, 17-36,41). The deficiency of mineral is treated in the Ayurveda medicine is done by

giving enema to the patient and in order to strength the bones the enema is given by using ghee. (Carakasaṁhita, Sūtrasthānaṁ, 27.28). The ghee is given to old people, weak people and the ones suffering from rheumatism in order to strengthen their bones. (Suśruta Saṁhita Sūtrasthānaṁ, 15-19, 15-13) (www.Ayurhelp.com).

6. Majja or Marrow

The marrow is a slippery one seen inside the bones. It is one of the components of the body says the Taittirīya Upaniṣad. (1.7.1). The Chāndogya Upaniṣad explains the formation of the marrow. (6.5.3.) The food containing the 'Tejus' like the 'Tailaṁ' and 'Ghṛtaṁ' when consumed breaks into three. The middle section becomes the marrow. The Bṛhadāraṇyaka Upaniṣad states about the marrow as an imagined one (3.9.28.). The human marrow is like that of the one seen in the trees.

In the Ayurveda medicine the strengthening of marrow is done by using 'Tailaṁ'. The taste of 'tilaṁ' or sesame is sweet and bitter. In the strengthening of marrow, the treatment insists of giving the patient sweet and bitter tasted food. (Carakasaṁhita Sūtrasthānaṁ, 17-67,28-16).

7. Retas or Semen

The marrow of male gives rise to semen and from that of the female the blood forms. The male semen is called 'Retas' it is from food the progeny semen originates. (Chāndogya Upaniṣad (Śāṅkarabhāṣyaṁ), 6.8.4). The 'Retas' is the reason for all elements. It is from the intercourse the 'Retas' originates (Bṛhadāraṇyaka Upaniṣad (Śāṅkarabhāṣyaṁ), 6.4.3,1.2.4). The Bṛhadāraṇyaka Upaniṣad names the 'Retas' as 'Prajāti' (6.1.14). During the intercourse the male inserts his genital organ and by the process of Āapanakriya' and 'Abhiprāṅanakriya' deposits 'Retas' into the vagina of the female. (Bṛhadāraṇyaka Upaniṣad, 6.4.11). This leads the female to conceive. The Retas thus deposited takes the form of a man and the subjects are born (Pras. Up.1.14). The child who takes birth thus gets the skin, flesh and blood from mother and the bones, marrow and semen from the father. (Bṛhadāraṇyaka Upaniṣad (Śāṅkarabhāṣyaṁ), 3.9.10).

Conclusion

Despite what many people think, the Daśopaniṣads does not

confine itself to the study of Ātman and makes extensive use of references to physical science. The study of Saptadhātus is merely one component of physical science. When we flip the pages of Śri Śaṅkarācārya's commentary on the Daśopaniṣads, we find several references to it, which is a goldmine of useful knowledge. The seven dhatus are all linked to one another. All of the dhatus may be affected if one of them becomes dysfunctional.

References

- *Brihadaranyaka Upanishad with the Commentary of Shankaracharya.* Gita Press, Gorakhpur, 2014.
- "About Ayurveda." *Ayurveda Help*, 26 Aug. 2022, www.ayurhelp.com.
- Anonymous. *Complete Works of Sri Sankaracharya in the Original Sanskrit Vol.8 (Commentaries on the Upanishads) 1910 [Leather Bound].* Generic, 2022.
- Bhishagratna, Kaviraj Kunja Lal. *An English Translation of The Sushrutha Samhita.* Forgotten Books, 2017.
- Brown, George William 1870. *The Human Body in the Upanishads.* Legare Street Press, 2021.
- Caraka, Kaviratna. *Charaka-Samhita* : *[The Greatest Scientific Work of Ancient Indian Wisdom] – Translated in to English and Published by KavirajAvinash Chandra Kaviratna ... ;* [Parts XXXIX- LI] Publish *[LEATHER BOUND].* Generic, 2022.
- Pisharodi, Sanjay. *Acharya Vagbhata's Ashtanga Hridayam(Vol 1).* Create Space Independent Publishing Platform, 2015.
- S. S. SubrahamanyaShastri : *Upanishads with Commentaries of Shankaracharya, Anandagiri and Sureshvaracharya (Set of 3 Volumes).* 2011th ed., Dakshinamurti Math, Varanasi, 2011.

Shodh Navneet (International Peer-Reviewed Research Journal)
ISSN : 2321-6581, IIJ Impact Factor : 5.037, Vol. XIX, July - Dec. - 2022

Tribal class, their world in the view of Mahasweta Devi

Dr. Priyanka Sharma*

Mahashweta Devi was not just an onlooker, but a responsible representative of the subaltern, the downtrodden and the ignored population of the country. It is through her fierce writing that millions of tribal people in India could manifest their misery. This leading Bengali fiction writer and an eminent social activist wrote extensively on emaciated existence of the most marginalized and dispossessed of our people. Her indictment of the society "for the indignity it heaps on its most oppressed constituents" has always been strong.

From depicting brutal oppression of the untouchables by authoritarian upper-caste landlords to narrating stories on how scheduled tribes and their traditions are closely wound up with the forest they live in, her writings have raised hackles of the local and state governments.

One of the major issues in tribal studies today, and it is clear from the draft as well, pertains to the "definition" of "tribe" (from now on, whenever the term draft is used, it refers to its second version). Many of us think that since we are concerned with communities of people classified as scheduled tribes (STs) and there is less ambiguity about this term, although some communities classified so may not deserve the appellation of tribe, not much will be gained by getting bogged down into the ever-polemical and inconclusive issues of the definition. As per this argument, our concern is with the "scheduled tribes", and not with "tribes"; the former category includes about 700 communities, according to the draft, which notwithstanding their inter-cultural differences share the same relation of deprivation with respect to nontribal people. The other view is that in India, the continuities between tribes and castes are so much that it often becomes difficult to

* Assistant Professor (English), Govt. Girls College Mukundgarh (Jhunjhunu) (RES-Laxmangarh (Sikar) Rajsthan).

distinguish (or separate) one from the other. Not only is this the experience of contemporary students of tribal societies, but was also of the census enumerators in the late 19th century.

The survival of tribal communities critically depends on land and forest resources. For historical and ecological reasons, most tribal people inhabit the forest and highly inaccessible regions of the state. These communities practise various customary land tenure systems, which have often been modified by state policies and legislation. The clan-based land tenure system was based on customary rights over land, trees and forest. For example, the Kondhs clans were called muttas, who may be further sub-divided into their linkage-based territories, as observed in the case of Dongaria Kondhs and Kutia Kondhs The land use and tenure systems vary from tribe to tribe, as reflected in the practice of swidden and terraced cultivation. In general, tribal communities cultivate valley bottoms as paddy lands and kitchen gardens, while in the uplands they pracitise swidden or shifting cultivation as observed among the Kondhs, Saoras, Parojas, Gadabas, Bondas, Juangs and Bhuiyans. Juangs, Bhuiyans and Kondha enjoy community ownership over certain valleys and hillsides.

The big leaders will say that the tribal culture should be preserved but the truth is that the tribal culture is still as advanced as it was in history, but these leaders repeatedly repeating such stories; they themselves put them in the last line of society. You will be surprised to know that part of the tribal culture is also a 'Dance' in which there is no audience, but the whole village dances together which represents their strong unity. It will be the courage of Adivasis who have been fighting for their existence for centuries, but till now they did not give up.

Rural India is characterized by lack of infrastructural facilities, poverty and indebtedness, which has led to the perpetuation of lay-ers of inequalities and disparities at various levels. As a result, notonly have certain deprived groups and sections of the population been unable to partake in the process of development, but also af-fected has been the very pace of the country's process of socio-eco-nomic development. This is particularly severe in the case of Sched-uled Tribes as they not only live in hinterlands, bereft of basic ameni-ties of modern life, but are also socially and economically marginalized. Their social deprivation is aptly reflected in their edu-cational backwardness. In this context it can be said that tribal Indiais the least developed area

and the tribals are the worst sufferers asthey are doubly disadvantaged.

Tribal community in India has been the most vulnerable community. Their fundamental human rights are violated in every step of life. Tribals are backward and poor, living in naturally isolated regional inhabitant. Tribals in remote areas are still devoid of common infrastructure facilities of road and communication, health and education and safe drinking water and sanitation, which do not allow them to absorb technological and financial help provided by government. Scheduled tribes are indications of primitive traits, distinctive culture, geographical isolation, shyness of contact with the community at large, and backwardness. The tribal population of the country is 10.43 crore, constituting 8.61% of the total population. Madhya Pradesh has the largest number of ST's contributing 14.69% to the total percentage of ST population of India. The paper tries to understand the different aspects of Indian tribal life, like distribution of tribes in India, history of tribes, etc. The paper highlighted the major issues like, social, religious, educational, health related problems and many more. The researcher also recommended some suggestions regarding the issues or challenges of tribes.

Article 342 of the Constitution says that- 'The Scheduled Tribes are the tribes or tribal communities or part of or groups within these tribes and tribal communities which have been declared as such by the President through a public notification'. Among the tribal groups, several have adapted to modern life but there are tribal groups who are more vulnerable. The **Dhebar Commission (1973) created a separate category** "Primitive Tribal Groups (PTGs)". Their vulnerability is not because of their primitive existence and non-inclusion in modern practices of societies, but due to their significant culture and diverse livelihood practices. They are important for India's diversity which is our strength and world know us for our **'Unity in Diversity'**.

There are more than 550 tribes of India that have had their presence in the country for a long time. Each community has its own individuality that separates it from the other tribes. All of these communities share one thing in common and that's the disconnection from the outside world. They are unaware of the technology and developments going around the globe and somehow they are happy with this decision. Amongst the huge number of tribes existing across the country, we have profiled the 30 most interesting and comparatively popular indigenous tribes in India and their culture this blog. Check out the names, areas they belong and what makes them so different from others.

India's caste system assigns individuals a certain hierarchical status according to Hindu beliefs. As members of the lowest rank of Indian society, the Scheduled Castes (SCs) face discrimination at almost every level. Structural discrimination against these groups takes the form of physical, psychological, emotional and cultural exploitation. This is legitimized by the social structure and the social system. These groups have been physically segregated into settlements on the fringes of the villages, forcing them to live in unhygienic and inhabitable conditions. All these factors affect their health status, access to healthcare and quality of life. Access to and utilization of healthcare among the marginalized groups is determined by their socio-economic standing within the society.

There are several opportunities and interventions for the inclusion of tribes in India. The central government and respective state government have brought many structural and procedural measures, policy intervention and initiates to create an inclusive

environment and provide facilities and opportunities to the tribal people for their educational advancement and improving the quality of life in particular and their economic, social and political inclusion at large.

People who belong to the middle-class sometimes tend to internalize the dominant society's belief and attitude towards them. They tend to play these against others. Internalized superiority is the justification and acceptance of class privilege by the middle class people. Class privilege could be manifest in several ways. This includes the tangible or intangible benefits such as: better contacts with employers, inherited money, "legacy admissions' to higher education, good health care, quality education, speaking with the same accent and language as people with institutional powers and having inside knowledge of how systems of powers operate.

Tribal communities are vulnerable to climate change and need adaptation strategies that will protect health of the community and health of natural forest mosaic landscape ecosystem. It requires the understanding of not only the climate vulnerability and assessments but also creating awareness, building capacity of the tribal and the co existing community for developing and implementing tribal climate change adaptation based sustainable livelihood.

Strategic plan has been designed to improve education, awareness- raising and building institutional capacity on climate change mitigation, adaptation, impact reduction and early warning for sustainable agriculture as an action to combat climate change and its impacts . A team of proactive leaders has been engaged for raising capacity for effective climate change-related planning and management and monitoring.

Classism is the systematic oppression of subordinated class groups to advantage and strengthen the dominant class groups Although Indian society has depicted tolerance and flourishing pluralism, certain divisive forces have resulted in different forms of marginalization and exclusion of minorities.

The Dalit standpoint theory's emphasis is on individual experiences within socially constructed groups. It focuses on the hierarchical, multiple, changing structural power relations of caste, class and ethnicity which construct such groups.

Culture is often described as social rather than individual, local rather than universal, learned rather than instinctive, historical rather than biological, evolved rather than planned, distributed rather than centralized, and cultivated rather than coarse. Scholars distinguish between cultural expressions and their foundations. Expressions include activities such as singing, dancing, dressing, and artistry-the usual media representations of Indians. The foundations include marrying, child- rearing, socializing, worshipping, governing, and working.

The tribal population in India, though a numerically small minority, represents an enormous diversity of groups.

They vary among themselves in respect of language and linguistic traits, ecological settings in which they live, physical features, size of the population, the extent of acculturation, dominant modes of making a livelihood, level of development and social stratification.

While tribes have a distinct culture and history, they also share commonalities with other marginalised sections of Indian society, such as the lack of adequate political representation, economic deprivation and cultural discrimination.

- As per Census-1931, Schedule tribes are termed as "backward tribes" living in the "Excluded" and "Partially Excluded" areas. The Government of India Act of 1935 called for the first time for representatives of "backward tribes" in provincial assemblies.
- The Constitution does not define the criteria for recognition of Scheduled Tribes and hence the definition contained in 1931 Census was used in initial years after independence.
- However, Article 366 (25) of the Constitution only provides process to define Scheduled Tribes: "Scheduled Tribes means such tribes or tribal communities or parts of or groups within such tribes or tribal communities as are deemed under Article 342 to be Scheduled Tribes for the purposes of this Constitution."
- The first Backward Classes Commission **(Kaka Kalelkar Commission, 1953)** appointed by the President of India under Article 340, defined Scheduled Tribes as "They lead a separate exclusive existence and are not fully assimilated in the main

body of the people. They may belong to any religion."

- **Elwin Committee** (1959) was constituted to examine the functioning of Multi-Purpose Development Blocks, the basic administrative unit for all tribal development programmes.
- **U.N. Dhebar Commission,** constituted in 1960 to address the overall situation of tribal groups, including the issue of land alienation in tribal areas.
- **The Lokur Committee (1965)** was set up to look into criteria for defining Schedule Tribes. The Committee recommended five criteria for identification, namely, primitive traits, distinct culture, geographical isolation, shyness of contact with the community at large, and backwardness.
- **The Shilu Ao committee, 1966,** like the Elwin committee, addressed the issue of tribal development and welfare.
- Tribal Sub-Plan approach of the government emerged on the recommendations of several committees constituted during 1970.
- **The Bhuria Committee (1991)** recommendations paved the way for the enactment of the **PESA Act, 1996**.
- **Bhuria Commission (2002-2004)** focused on a wide range of issues from the Fifth Schedule to tribal land and forests, health and education, the working of Panchayats and the status of tribal women.
- **Bandopadhyay Committee (2006)** looked at development and governance in Left-Wing Extremist areas.
- **Mungekar Committee (2005)** examined issues of administration and governance.

The governments both at the Centre and States must recognize improvement in the health status of the tribal population as among the topmost priorities from policy point of view and ensure adequate budget allocations made including under the National Tribal Plan. The Government of India (GOI) constituted Expert Committee on Tribal Health has recommended that the government per capita expenditure on tribal health should be substantially enhanced and that 70 per cent of this should be spent on primary health care.

Allocation of at least eight per cent of the national budget assigned for tribal welfare in accordance with population size, a dedicated focus on infrastructure development and ensuring service delivery in an efficient manner will make a difference. Besides augmenting resource allocation, the common practice in the governments of diverting the scant resources meant for tribal development for other purposes, as indicated also by CAG report must be stopped.

The Scheduled Tribes are notified in 30 States/UTs and the number of individual ethnic groups, etc. notified as Scheduled Tribes is 705. The tribal population of the country, as per 2011 census, is 10.43 crore, constituting 8.6% of the total population. 89.97% of them live in rural areas and 10.03% in urban areas. The decadal population growth of the tribal's from Census 2001 to 2011 has been 23.66% against the 17.69% of the entire population. The sex ratio for the overall population is 940 females per 1000 males and that of Scheduled Tribes 990 females per thousand males.

Broadly the STs inhabit two distinct geographical area - the Central India and the North- Eastern Area. More than half of the Scheduled Tribe population is concentrated in Central India, i.e., Madhya Pradesh (14.69%), Chhattisgarh (7.5%), Jharkhand (8.29%), Andhra Pradesh (5.7%), Maharashtra (10.08%), Orissa (9.2%), Gujarat (8.55%) and Rajasthan (8.86%). The other distinct area is the North East (Assam, Nagaland, Mizoram, Manipur, Meghalaya, Tripura, Sikkim and Arunachal Pradesh).

More than two-third of the ST population is concentrated only in the seven States of the country, viz. Madhya Pradesh, Maharashtra, Orissa, Gujarat, Rajasthan, Jharkhand and Chhattisgarh. There is no ST population in 3 States (Delhi NCR, Punjab and Haryana) and 2 UTs (Puducherry and Chandigarh), as no Scheduled Tribe is notified.

The overall impact of developmental projects on tribes has been often loss of livelihood, massive displacement and involuntary migration. This is the conclusion drawn by the High-Level Committee on the Status of Tribals. In this light, critically examine how tribals are affected and what needs to be done to protect their interests.

The condition of tribes is so worst that their share in the population belongs to below poverty line is very high as compare to their share in total population. At the same time they are being

displaced by large-scale development of industries, mining, infrastructure projects such as road and railways, hydraulic projects such as dams and irrigation, this has made their life miserable on different fronts like-income level, education, health and other developmental indices. The fact is that, government's strategy in tribal area is assimilation instead of integration.

Committee reveals that laws and rules that provide protection to tribes are being routinely manipulated and subverted to accommodate corporate interests.Armed forces of centre and states are used to suppress their peaceful protests. It recommended to strenghten the role of gram sabha on one hand and enhancing the participation of tribals through tribals cooperatives on other hand. High level committee recommended few more suggestion of amending acts like-

(A) Coal bearing act should be amended in a way to firming up the actual control of tribal communities over their resources through primary level democratic bodies.

(B) Laws and policies enacted by the parliament should not be automatically applied in the 5^{th} schedule.

(C) The Governor must take advice of the Tribal Advisory Council to examine the implication of polices and legislations.

(D) Tribal Advisory Councils should be given more teeth and make them work for welfare of tribal communities.

(E) Legislative laws should be made in a manner to handle backdoor entries like- declaring a tribal region an urban area and removal of particular region from Scheduled area.

These recommendations would provide better education, health and opportunities to tribal communities across the country.

The current discourse on tribal movements and tribal empowerment mainly revolves around securing well-defined rights to land and forests through participatory practices. At a more fundamental level, the question of abuse of tribal people's human rights - violation of rights to life and livelihood - is a central concern. All this is very well. However, it is important to recognize that, by the very nature of the issues involved, tribal people's protest movements, however well organized, have to contend with the powerful interests of a local economic elite and industrial capital - both domestic and foreign - who wield considerable political power.

To summarize, tribal communities face disregard for their values and culture, breach of protective legislations, serious material and social deprivation, and aggressive resource alienation. Hence, the solution to these issues should enable the tribes to protect their own interests.

- An empowered citizenry and a functioning, participatory (including participation of women) self-governance is the best guarantee for a democratic nation;
- Due share in socio-economic progress for tribal people and their habitations, including facilities like health, education, livelihood, drinking water, sanitation, roads, electricity and sustainable income, in situ;
- Protecting the land and forest rights of tribal communities is equivalent to protecting their livelihoods, life and liberty.
- The right to natural resources in tribal lands has to be protected. They should only be accessed with the consent of the Gram Sabah's of the villages.
- While tribal lands hold much of the natural and mineral wealth of the nation, these resources cannot be alienated against their will. Moreover, communities who part with their lands have the right to share in the wealth and income so generated from its resources.

Refrences

- The Policy Time.
- A Day in The Life of A Tribal- Venktesh Bhayya.
- Tribal Life in India - Harish Babu.
- Tribal Life in india: Defining, Structure & other Details - Puja Mandal.
- Xaxa Committee on Tribal Communities of India.
- Sociology- Marginalized gropus & Communities : Caste, Tribes & Gehnder- University of Mumbai.
- Understanding the Indian Tribal Life & their Issues by Purshottam and Dr. Vanita Dhingra.
- Tribal Movements and Livelihoods : Recent Developments in Orissa Sakti Padhi Nilakantha Panigrahi.
- Significance of Mahasweta Devi's Literary Works In Tribal Historiography- Mr. Vaibhav D Masram.
- Xaxa Committee on Tribal Communities of India.

Shodh Navneet (International Peer-Reviewed Research Journal)
ISSN : 2321-6581, IIJ Impact Factor : 5.037, Vol. XIX, July - Dec. - 2022

RFID Technology Application in Libraries

Seema Yadav*

Abstract

The purpose of this paper is to provide an overview of the perceived threats of radio frequency identification (RFID) systems in libraries. In this paper the components and technical features of a modern RFID library system are described to provide a guideline for the evaluation of different systems. This paper also discusses the security concerns in RFID technology.

Keywords : Readers, Technology, antennae, Security

Introduction

Radio frequency identification (RFID) systems were developed about 30 years ago and were originally niche products. They were used for "radio tracking" of wild and agricultural animals, and evolved later into a technology which is used in many industrial applications today.

Librarians have a long history in protecting the privacy of their readers, the library patron. As technology has ushered in more methodologies for the invasion of privacy through electronic means, librarians have become increasingly concerned. The escalating use of radio frequency identification (RFID) tags concern many people because they open opportunities for inconspicuous scanning of any items a person has with these tags, including their library books. RFIDs are small adhesive backed tags that transmit a radio signal that easily can be read by a receiver, or reader. These tags can be attached to books found in a library or bookstore. While some librarians and the vendors of RFID products for libraries remain convinced that they are secure, the evidence shows that RFIDs create numerous opportunities for privacy invasions. For this reason, librarians must take additional measures to protect patron privacy.

Technology Background

For more than 30 years radio frequency has been used for tracking

* Library Traniee, NITI Aayog, New Delhi

and in theft detection. This process is very similar to the rather large theft detection clip-on tags used today in many clothing stores, and in other places, except the stores remove those tags. Libraries also made use of this security technology, originally as thin wires hidden in the books that would trigger an alarm if a patron tried to remove the books prior to checkout. The technology worked on the bypass principle in which the trigger in the book was always on, with the staff taking the books from the patron and retuning them once the patron was on the exit side of the security gate. These security systems have evolved into the RFID technology with its fuller integration into some library systems of today.

Library RFID technology uses radio waves operating at 13.56 MHz to automatically identify individual items, such as each individual book. Specific information about that book is stored on a microchip that is attached to a coiled antenna. Often these tags are made from a special silver ink printed on paper or they can be etched. The chip and the antenna together become what is called an RFID tag. RFID tags can be either active – having their own battery power source, or passive – having no power source of its own. Currently libraries only make use of passive tags, in part due to lower costs, size, and the inability to replace those tags over the lifetime of the battery.

Since a ***passive RFID*** does not have its own power source, it draws power from the reader's magnetic field and uses it to power the microchip's circuits and antenna, which in turn enables the chip to transmit the identification information to the reader. The tag can be placed inside the book to reduce wear and the read time for a tag is typically less than 100 milliseconds. Additionally multiple books with the corresponding tags can be read at once rather than one at a time.

Component involved in RFID Technology

I. RFID Tags
II. RFID reader
III. Antennae
IV. RFID hand reader

RFID Tags

The tag can be paper thin or thick and flexible which allows it to be placed inconspicuously on the inside cover of each book in a library's collection and user's library card. It consists of an etched antenna and

a tiny chip, which stores vital bibliographic data including a unique ID number to identify each item. This contrasts with a barcode label, which does not store any information, but merely points to a database. RFID tags can be either active – having their own battery power source, or passive – having no power source of its own. Currently libraries only make use of passive tags, in part due to lower costs, size, and the inability to replace those tags over the lifetime of the battery.

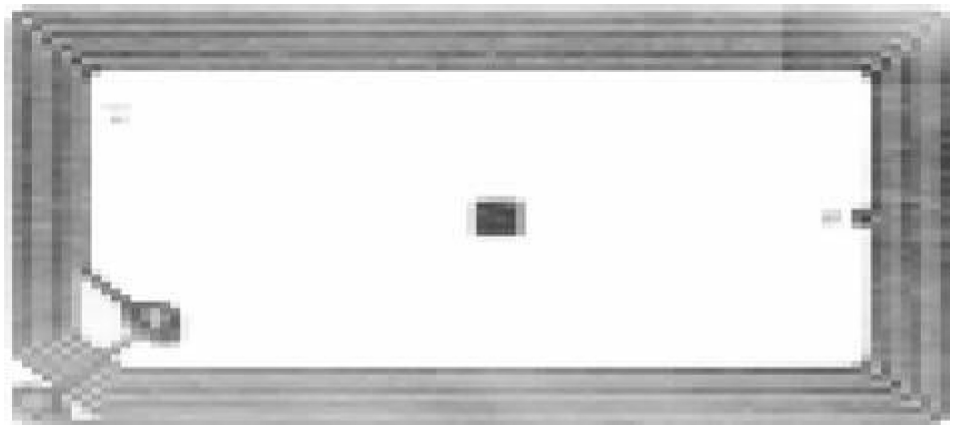

Image of the tag

RFID reader

RFID readers consist of a transmitter, receiver, antennae and a decoder. They communicate with RFID tags, identify them and retrieve data stored on the tag. Readers can read documents from 30 to 45 cm. The reader is flat like a slate and it is necessary for it to be fixed to a desktop computer and configured with the library software. Since a passive RFID does not have its own power source, it draws power from the reader's magnetic field and uses it to power the microchip's circuits and antenna, which in turn enables the chip to transmit the identification information to the reader. The tag can be placed inside the book to reduce wear and tear. The read time for a tag is typically, 100 ms. Additionally, multiple books with corresponding tags can be read at once rather than one at a time.

Antennae

The RFID antenna connected to the RFID reader, can vary in size and structure, depending on the communication distance required for

a given system performance. The antenna activates the RFID tag and transfers data by emitting wireless pulses. Antennae are of two types:

(1) long-range reader; and

(2) medium-range reader.

RFID hand reader

The function of an RFID hand reader is the same as that of a flat reader but it is handy and can move around the stacks. It can be connected and configured with a palmtop computer. It needs software to run the program from the palmtop with a wireless connection. The RFID hand reader used in Jayakar Library can store 164,000 accession numbers in one scan.

Advantages of RFID technology in library

1. It saves time at the circulation counter.
2. Theft detection is easy with RFID technology.
3. It is easy to trace missing books in library using RFID hand reader.
4. Shelving of books is easy with the help of RFID technology.
5. RFID made easy to do stock verification.

Disadvantages of RFID technology in library

1. The major disadvantage of RFID technology is its cost.
2. Lack of standard.
3. Lack of RFID compatible software in India.
4. Lack of skilled RFID workers.
5. Data security.

Conclusion

RFID technology has provided major benefits for Library. Because of the growth in its collections the functions like stock verification and tracking of missing books was becoming almost impossible for the library. RFID technology has enabled the library to provide a quick, accurate and timely service to the users. Quick circulation of books means no queuing in front of the circulation counter, and tracking and shelving of the books has become much easier. The manpower required to perform all these functions is now being reduced and is being utilized for providing some extra services. Most importantly the system has already put a check on the theft and misuse of documents, as users understand that the system is in place and capable of detecting

theft. The RFID technology has been a boon for the library, as it requires less manpower to service more books and users.

References

1. Alan Butters, (2007),"RFID systems, standards and privacy within libraries", The Electronic Library, Vol. 25 Iss 4 pp. 430 – 439
2. Bhuptani, M. and Moradpour, S. (2005), RFID Field Guide: Deploying Radio Frequency Identification Systems, Sun MicroSystems, Prentice-Hall PTR, Upper Saddle River, NJ.
3. Boss, R.W. (2004), "RFID technology for libraries", available at: www.ftrf.org/ala/mgrps/divs/pla/plapublications/platechnotes/RFID-2007.pdf
4. Mulla, K.R. and Chandrashekara, M. (2006), "Application of RFID in libraries for physical information security – a view", in Murthy, T.A.V. et al. (Eds), Dynamic Interoperable Web Based Information System, INFLIBNET, Gulbarga, pp. 500-6.
5. Tagsys (2008), "RFID tags", available at: www.tagsysrfid.com/systems/flexible-hf tags.cfm
6. Yu, S.-C. (2008), "Implementation of an innovative RFID application in libraries", Library Hi Tech, Vol. 26 No. 3, pp. 398-410.

Shodh Navneet (International Peer-Reviewed Research Journal)
ISSN : 2321-6581, IIJ Impact Factor : 5.037, Vol. XIX, July - Dec. - 2022

Web Page Analysis of National Institute of Pharmaceutical Education and Research (NIPER) Websites in India: A Webometric Study

Manish Kumar Yadav*, Dr. Rajani Mishra**

ABSTRACT

Websites are the medium for getting information in one click from anywhere across the globe at any time. Thus it became essential to assess the websites for better performance. Webometrics is the study which helps us to know the overall health of a website. With the result of the webometric study, we can improve a particular website in terms of simple web impact factor, internal web impact factor and external web impact factor. Webometrics is the quantitative analysis of web phenomena, drawing upon informetric methods and typically addressing problems related to bibliometrics. The primary aim of this study is to find out the total page size of the NIPER websites and how much time it takes to load on the web browser, to discover the global and national ranking of the NIPER websites, to find out the domain authority and page authority of the websites, to calculate the number of web pages, internal, external and total links of selected NIPER websites, to calculate the Simple WIF, Internal link WIF, External link WIF and rank them accordingly. In this paper, all the National Institute of Pharmaceutical Education and Research (NIPER) websites in India are scanned, and it is found that NIPER Raebareli is the best ranked among all the NIPER websites participated in this study in terms of the load time of the website. It is also found that NIPER Guwahati has the best global ranked website, and NIPER Ahmedabad is the best-ranked Indian website according to SEO Alexa ranking system. The website of NIPER Mohali examined in this study and found rank one in terms of Web Impact Factor among all the NIPER

* Librarian, SPM Government PG College, Prayagraj, India

** Associate Professor, Department of Library & Information Science, Banaras Hindu University, Varanasi, India

websites in India.

KEYWORDS: Webometrics, NIPER, Web Page, Domain, Ranking, Web Impact Factor, Internet, SEO, Search Engine, Page Authority.

INTRODUCTION

Nowadays, the internet became an essential part of everyone's life. It acts as a medium for getting information in no time from anywhere across the globe. The World Wide Web (WWW) is a system of interlinked hypertext documents accessed via the internet. With a web browser, one can view web pages that may contain text, images, videos and other multimedia, and navigate between them via hyperlinks (Webopedia). Tim Berners-Lee was the person who invented the World Wide Web in 1989. All the websites which are available in the public domain for the access collectively constitute the World Wide Web. A website is a collection of webpage interlinked with each other.

WEBOMETRICS

The Webometrics (sometimes also called Cybermetrics) is the quantitative approach which measures the knowledge available through the World Wide Web or study of web-related phenomena. According to BjĬrneborn and Ingwersen (2004), the definition of webometrics is "the study of the quantitative aspects of the construction and use of information resources, structures and technologies on the Web drawing on bibliometric and informetric approaches." The term webometrics was first coined by Almind and Ingwersen (1997).

National Institute of Pharmaceutical Education and Research

National Institute of Pharmaceutical Education and Research (NIPER) is the institutes in the field of pharmaceutical sciences with a proclaimed objective of becoming a centre of excellence for advanced studies and research in pharmaceutical sciences. The Government of India has declared NIPER as an 'Institute of National Importance'. It is an autonomous body set up under the aegis of Department of Pharmaceuticals, Ministry of Chemicals and Fertilizers, India (Wikipedia). Government of India has established the first NIPER in Mohali, Punjab with the aim discussed above.

REVIEW OF LITERATURE

Ramalingam and Nachiappan (2018) have analyzed the CSIR institutes websites and found that all the CSIR institutes have their

websites. Among them, Industrial Toxicology Research Centre stands first in ranking based on the Simple Web Impact Factor. It is also found that the Institute of Microbial Technology has the highest number of web pages among all the 41 CSIR institutes in India.

Sujithai and Jeyshankar (2013) found that IIT Bombay has the most number of web pages among all the IITs in India and IIT Patna got the first position & IIT Mandi got the last place based on simple web impact factor. They also stated that IIT websites provide a better medium to get information rather than physically in institutions.

Thanuskodi (2011) stated that most of the engineering colleges in Tamil Nadu are not aware of web ranking; they do not perceive its necessity to make websites active and rich in a way to be attractive and usable for students, professors, both in Tamil Nadu and global internet users. On the other hand, using traditional methods of publishing scientific productions and information resources in most of the private engineering college causes lower inlinks and WIFs.

Brahma and Verma (2018) stated in their study that a website provides a quick and easy way of communicating information between information providers and information seekers. They observed most of the public library website has very low WIF, so they need to improve it.

Stephen (2019), in his study, stated that based on traffic rank in India North Eastern Hill University got the highest rank among Central Universities in the North East region. He also noted that commercial SEO is changing rapidly, and it is necessary to analyze and make an essential change in the websites for better performance for the user.

SCOPE OF THE STUDY

The present study explores the seven websites of ***the National Institute of Pharmaceutical Education and Research (NIPER) in India.*** Table 1 contains the details of all the NIPERs in India with their establishment year, websites and their mentor institutes.

Sl No	NIPER	Mentor Institute	Establishment Year	Website
1.	NIPER , Mohali	No Mentor institute	1998	niper.gov.in
2.	NIPER , Hajipur	Rajendra Memorial Research Institute of Medical Science (RMRIMS-Patna) under ICMR	2007	www.niperhajipur.ac.
3.	NIPER , Hyderabad	CSIR-Indian Institute of Chemical Technology, Tarnaka, Hyderabad	2007	www.niperhyd.ac.in
4.	NIPER , Kolkata	CSIR-Indian Institute of Chemical Biology, Kolkata	2007	www.niperkolkata.edu.in
5.	NIPER , Guwahati	Guwahati Medical College, Guwahati	2008	www.niperguwahati.ac.in
6.	NIPER , Raebareli	CDIR-Central Drug Research Institute, Lukhnow	2008	niperraebareli.edu.in
7.	NIPER , Ahmedabad	B V Patel PERD Center, Ahmedabad	2007	www.niperahm.ac.in

Table 1: Details of NIPERs in India

OBJECTIVES OF THE STUDY

- To find out the page size and load time of the NIPER websites.
- To discover the global and national ranking of the NIPER websites.
- To find out the domain authority and page authority of the websites.
- To calculate the number of web pages, internal, external and total links of selected NIPER websites.
- To calculate the Simple WIF, Internal link WIF, External link WIF and rank them accordingly.

METHODOLOGY

An observation method was adopted for this study. All the data were collected from the NIPERs websites using an online webpage

analyzer tool (www.moz.com). Data were fetched and tabulated using MS-Excel and further used for findings of the study. For calculating the total number of web pages (indexed by Google) of NIPERs websites, a syntax ("site:domain name") has been used to fetch the desired data from the search engine. SEO Alexa, an online tool is used for the global and national ranking of the NIPER websites.

The formula for calculation of Web Impact Factors-

Simple WIF= C/D

Internal WIF= A/D

External WIF= B/D

A=Total No. of Internal Links

B=Total No. of External Links

C=Total No of Links

D=Total No of Web pages of NIPER Website

DATA ANALYSIS

Page size and Load time of NIPER Websites

Figure-1 describes the distribution of page size and load time of the websites of NIPER in India. It can be seen in figure-1 that NIPER Hajipur has the heaviest size of website with 16.9 MB followed by NIPER Ahmedabad with a page size of 14.9 MB. NIPER Kolkata takes 38.47 seconds to load the website that is not the fascinating thing. NIPER Raebareli with a load time of 1.71 seconds has got the best position in the table, and NIPER Mohali got the second rank with a load time of 2.25 seconds.

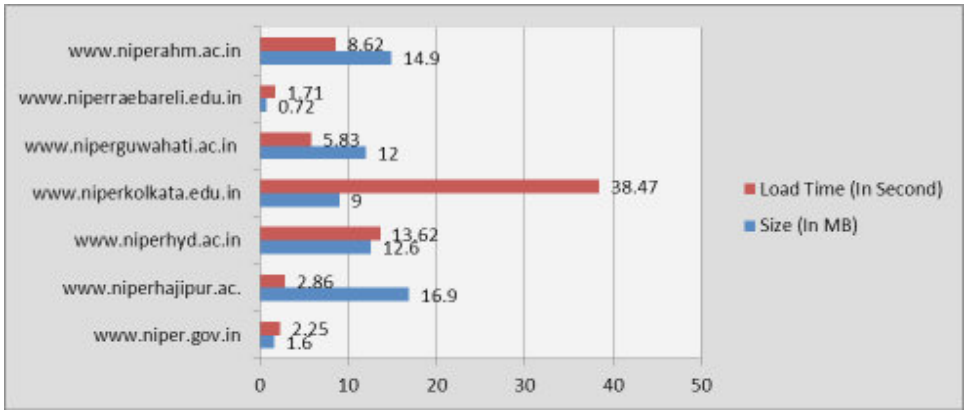

Figure 1: Page size and Load time of NIPER Websites

Global Ranking of NIPER Websites

For the better promotion of the website, its ranking is a significant indicator. Ranking of a website is based on a combined measure of page views and unique site users. The popularity ranking of NIPER websites is portrayed through table-2. Alexa ranking system is applied for the global and Indian ranking of NIPER websites.

Heitzman (2018) Stated that Alexa is a global ranking system that utilizes web traffic data to compile a list of the most popular websites, the Alexa Rank. The lower the Alexa rank, the more popular the website (for example, a site with the rank of 1 has the most visitors on the internet). Alexa itself has been around since 1996 but was shortly thereafter acquired by Amazon in 1999.

Sl No.	NIPER	Global Rank	Indian Rank
1.	Guwahati	469,775	69,747
2.	Hajipur	2,336,583	N/A
3.	Hyderabad	593,378	129,185
4.	Kolkata	599,595	N/A
5.	Mohali	525,620	N/A
6.	Raebareli	4,039,135	N/A
7.	Ahmedabad	511,603	43,931

Table 2: Ranking of NIPER Websites (As on 14th April 2020)

If we go through the above table, it is clearly seen that among all the NIPER websites NIPER Guwahati holds the best global rank with 469775. NIPER Ahmedabad secured the best ranking with 43,931 in India followed by NIPER Guwahati with 69,747. Alexa does not rank the national ranking of many other websites of NIPER.

Domain and Page Authority

Domain Authority is a search engine ranking score developed by Moz that predicts how well a website will rank on search engine result pages. A Domain Authority score ranges from one to 100, with higher scores corresponding to a greater ability to rank.

Page Authority is a score that predicts how well a specific page will rank on search engine result pages. Page Authority scores range from 1 to 100, with higher scores corresponding to a greater ability to rank.

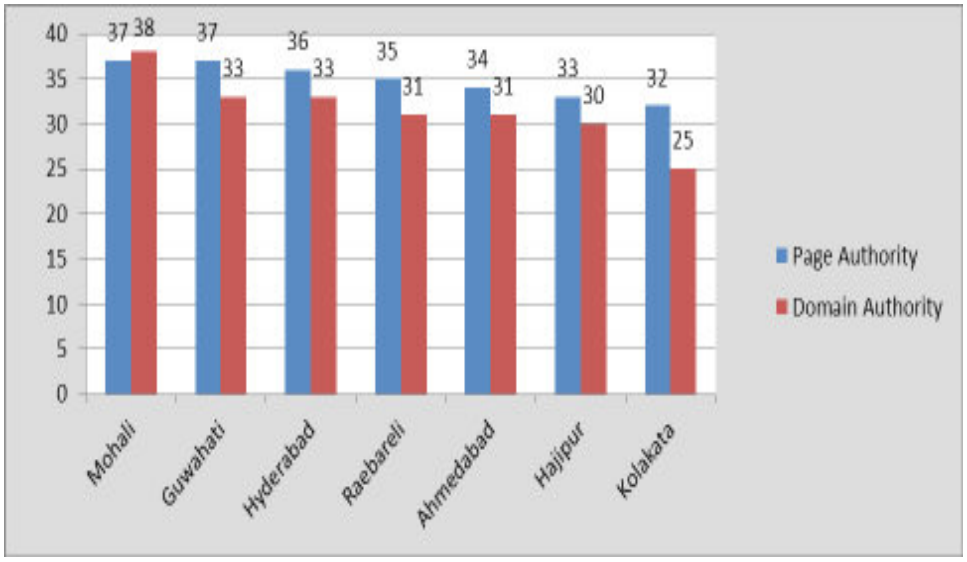

Figure 2: Distribution of Domain and Page Authority

It can be observed from figure 2 that the website of NIPER Mohali having domain authority 38 ranks highest while NIPER Kolkata obtained the lowest rank 25 out of a total of 100 points. If we see page authority, it can be easily observed that the websites of NIPER Mohali and Guwahati jointly ranks first with a page authority score of 37. Again the last rank is secured by NIPER Kolkata with a score of (25) out of 100 point scale of page authority.

Number of web pages, internal, external and total link pages of NIPERs websites

Table 3 illustrates the total number of the web page, total internal links, total external links and total links of NIPER websites in India. It is clearly seen that NIPER Mohali has the highest number of web pages on its website, i.e. 1090, followed by NIPER Ahmedabad with 971 web pages and NIPER Hajipur has the least number of web pages. Further, it can also be seen that NIPER Ahmedabad secured the first position with 40,986 internal links and NIPER Kolkata has the lowest number of internal links with 861 in its website. In terms of total external links

NIPER Mohali occupied the top position with 154,715 external links, followed by NIPER Kolkata with 4264 external links and NIPER Hyderabad with 2018 external links. NIPER Mohali has the highest number of links on its website, i.e. 159,831, followed by NIPER Ahmedabad with 42404 and NIPER Hyderabad with 16,905 total links.

Sl No.	NIPER	Total No. of Web Page (As per Google indexing)	Total No. of Internal Links	Total No. of External Links	Total Links
1.	Guwahati	225	1398	1082	2480
2.	Hajipur	192	4708	662	5370
3.	Hyderabad	847	14887	2018	16905
4.	Kolkata	243	861	4264	5125
5.	Mohali	1090	5116	154715	159831
6.	Raebareli	310	1027	1625	2652
7.	Ahmedabad	971	40986	1418	42404

Table 3: Distribution of web page, internal links, external links and total links of NIPER websites

Web Impact Factors of NIPER websites

Table-4 and Figure-3 focus on the Web Impact Factor of NIPER websites in India. It can be easily seen that the SWIF of NIPER Mohali is highest with 146.6 SWIF score followed by NIPER Ahmedabad with 43.67 SWIF score and NIPER Hajipur with 27.97 SWIF score. NIPER Ahmedabad got the top position in terms of IWIF with 42.21 IWIF score, followed by NIPER Hajipur with 24.52 score and NIPER Hyderabad with 17.58 IWIF score. Based on EWIF again NIPER Mohali got the highest score with 141.9 EWIF score afterwards NIPER Kolkata with 17.55 and NIPER Raebareli with 5.24 EWIF score.

Sl No.	NIPER	Internal WIF	External WIF	Simple WIF	Ranked by SWIF
1.	Mohali	4.69	141.9	146.6	1
2.	Ahmedabad	42.21	1.46	43.67	2
3.	Hajipur	24.52	3.45	27.97	3
4.	Kolkata	3.54	17.55	21.09	4
5.	Hyderabad	17.58	2.38	19.96	5
6.	Guwahati	6.21	4.81	11.02	6
7.	Raebareli	3.31	5.24	8.55	7

Table 4: Distribution of Web Impact Factors of NIPER Websites in India

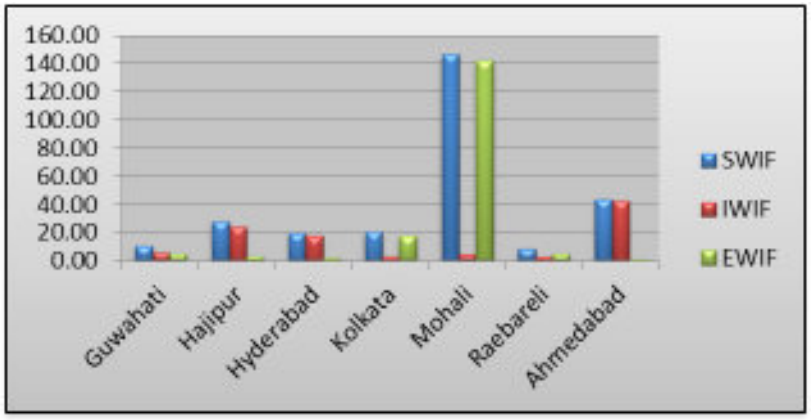

Figure 3 Distribution Web Impact Factors of NIPER Websites in India

CONCLUSION

A website heavy in size comes with many problems like more load time in comparison to other websites etc. NIPER Hajipur has the most massive website among all the NIPERs in India, and NIPER Raebareli has a very small website in terms of size in MB. Due to small in size website of NIPER, Raebareli takes less time to load on the web browser. NIPER Mohali with highest simple web impact factor indicates that their website is best among other NIPERs in India. Improvement is suggested for most of the NIPER websites. This study has been investigated, and there is a possibility of future research in this field.

The result of this study will be helpful for the improvement of all these websites in future.

REFERENCES

1. Bjorneborne, L., & Ingwersen, P. (2004). Toward a Basic Framework for Webometrics, Journal of the American Society for Information Science and Technology, 55 (1), 1216 - 1227.
2. Almind T.C., & Ingwersen, P. (1998). Informetric Analysis on the World Wide Web: Methodological Approaches to 'Webometrics', Journal of Documentation, 53(4), 404 -426.
3. Ingwersen, P. (1998). The calculation of web impact factors, Journal of Documentation, 54 (2), 236 - 243.
4. Ramalingam, Jeyshankar and N, Nachiappan. (2018). Council of Scientific and Industrial Research (CSIR - India) Institutes Website: A Webometric Analysis. Library Philosophy and Practice (e-journal). https://digitalcommons.unl.edu/libphilprac/2098/
5. Maria Sujitha, I, & Jeyshankar, R. (2013). Web page analysis of Indian Institute of Technologies' (IITs) websites: A webometric study. International Journal of Digital Library Services, 3(1), 55-65. http://www.ijodls.in/uploads/3/6/0/3/3603729/55-65313.pdf
6. Thanuskodi, S. (2011). Webometric Analysis of Private Engineering College Websites in Tamil Nadu. J Communication, 2(2): 73-81. https://www.tandfonline.com/doi/full/10.1080/0976691X.2011.11884784
7. Brahma, Krishna and Verma, Manoj Kumar (2018). Web Presence of Selected Iconic Public Libraries' of India: Webometric Analysis. International Journal of Information Studies, 10(4), 127-135.
8. Stephen,G. (2019). Webometric analysis of Central universities in North Eastern region, India. A Study of Using Alexa Internet. Library Philosophy and Practice (e-journal). https://digitalcommons.unl.edu/libphilprac/3041/
9. Heitzman, Adam (2018, April 1). What is the value of alexa rank in SEO? [Blog Post]. Retrieved from (https://www.highervisibility.com/blog/what-is-the-value-of-alexa-rank-in-seo/)
10. Wikipedia (n.d.). Retrieved April, 2020, from https://en.wikipedia.org/wiki/National_Institute_of_Pharmaceutical_Education_and_Research

---

Shodh Navneet (International Peer-Reviewed Research Journal)
ISSN : 2321-6581, IIJ Impact Factor : 5.037, Vol. XIX, July - Dec. - 2022

हिन्दी-मराठी स्त्री आत्मकथाओं में व्यक्त जीवन संघर्ष

(जमाने में हम व आयदान के विशेष सन्दर्भ में)

चाईना मीणा*

स्त्री आत्मकथाओं पर विचार करने के लिए मौटे तौर पर हम चार निष्कर्ष ग्रहण कर सकते हैं। जिनमें जाति, वर्ग, वर्ण, जेण्डर के साथ ही संप्रदाय या धर्म को भी देखा जाना चाहिए। आपस में गुंथे हुए ये निष्कर्ष यानी कि प्रतिच्छेदी अवस्था में अपना वजूद रखते हैं। विभिन्न पदानुक्रमों में यदि भारतीय समाज की संरचना देखें तो यहाँ सत्ता और शक्ति के केन्द्रों पर वर्ग, जाति, जेण्डर या संप्रदाय का आधिपत्य होता है। जिसे सामाजिक संरचना के भीतर बहुस्तरीयता के साथ देख सकते हैं। जिसका आधार किसी वर्ग जाति, जेण्डर या नस्ल का उत्पीड़न होता है।

जिसमें किसी एक वर्ग या जाति के प्रभुत्व की स्थापना के लिए अन्य को दमित-उत्पीड़ित किया जाता है। समाज और इतिहास में अन्तर्विभाजक पदानुक्रमिकता का निर्माण होता है। विभिन्न अस्मिताएं जो केन्द्र के आस-पास मंडराती रहती है। उनमें जाति और जेण्डर को प्रवेश बिन्दुओं के तौर पर देखा जा सकता है। अस्मिताओं के विभिन्न आयाम अपने दैनन्दिन प्रतिरोध के तरीकों और रणनीतियों के साथ संघर्षरत रहती हैं, वहीं दूसरी और सामाजिक पदानुक्रमिकता को बनाये भी रखना चाहती हैं, एक ओर जहाँ जाति व्यवस्था को तोड़ने का प्रयास भी करती हैं। दूसरी और अपनी ही जाति के भीतर पदसोपानिकता को भी प्रश्रय भी देती हैं।

विभिन्न शोध एवं अध्ययन केन्द्रों में आत्मकथा और आत्मकथात्मक लेखन को समाज वैज्ञानिक शोध के लिए आधार स्त्रोतों के रूप में शामिल किया जाने लगा। अपने बारे में लिखकर या कहकर अपने साथ-साथ समुदाय और वर्ग के बारे में प्रामाणिक सूचनाएं देने का काम आख्यान कर्ता करता है। अपने जीवन की विभिन्न स्मृतियों को मौखिक या लिखित रूप में आख्यान का आधार बनाकर वह अगली पीढ़ी में अपने अनुभवों को अंतरित करता है। अक्सर वैयक्तिक अनुभवों की अपेक्षा सामुदायिक अनुभवों को तरजीह दी जाती है और ज्यादा प्रामाणिक भी माना जाता है; क्योंकि लोग उसी को दुहराते हैं, बारम्बार सुनते हैं और फिर उसी को दुहराने लगते हैं। लेकिन सत्य वहीं नहीं है जो समाज या समुदाय की वर्चस्वशाली शक्तियों द्वारा दुहराया और दर्ज किया जाता है। जिसकी तेज आवाज के शोर में हाशिये की आवाजें कमजोर होती हैं। भारत में अस्सी के दशक में हम विभिन्न सामाजिक वर्गों की आपसी आवाजाही के बीच अन्तर्विरोध को एक

* शोधार्थी, हिन्दी विभाग, राजऋषि भर्तृहरि मत्स्य विश्वविद्यालय अलवर, राजस्थान।

विश्लेषणात्मक ढाँचे के रूप में उभरता हुआ देखते हैं। यह वहीं दौर है जब जाति, जेण्डर और कई तरह के वर्गों के आधार पर उत्पीड़न, वर्चस्व और भेदभाव की राजनीति को नए ढंग से समझने के प्रयास शुरु हुए।

दरअसल 'आत्म' का निर्माण जाति, लिंग, वर्ग और वर्ण के साथ नैतिकता को सुदृढ़ करने वाले परस्पर प्रतिच्छेदी (इण्टर सेक्शनल) वाहकों के द्वारा होता है। इस जटिलता के मद्देनजर जब सामाजिक जीवन की बहुआयामी कोटियाँ विश्लेषण का आधार बनती हैं तो ऐसे में जाति, वर्ग, वर्ण, जेण्डर की कई कोटियाँ हमारे सम्मुख होती हैं जिनमें किसी एक अस्मिता या किसी एक कोटि से नहीं बल्कि परस्पर विलयित होती हुई अस्थिर स्वभाव की अस्मिताओं से हमारा सामना होता है और यहीं पर विभिन्न वर्गों संप्रदायों, जातियों की अस्मिताएं अपने तमाम अन्तर्विरोधों के साथ और भी अधिक जटिल रूप में उजागर हो जाती है।

इन कमजोर आवाजों को आत्मकथन के माध्यम से अपनी बात कहने, 'टेस्टीमोनिया' (सामुदायिक साक्ष्य) प्रस्तुत करने का अवसर मिलता है। वर्ण व्यवस्था को अपनाकर जाति व्यवस्था का आधार पुख्ता किया गया और इस तरह भारतीय सामाजिक संरचना को एक जटिल बहु-आयामी स्वरूप मिला। समाज की सोपानिक-व्यवस्था या जाति ने जीवन के प्रत्येक क्षेत्र को प्रभावित किया। जाति के कारण स्त्री शोषण की प्रक्रिया और परिणाम में बहु-आयामिता का प्रवेश होता है। जहाँ ऊँची जाति की स्त्री अपने जेण्डर के कारण परिवार और समाज के हनन, पर्दा और अभिव्यक्ति पर पाबंदी लगाने जैसे अनेक मुखौटों के साथ उनकी रचनाओं में झाँकती हैं, वहीं निम्न जाति की स्त्री का शोषण वर्ग, जाति और जेण्डर के कारण त्रिस्तरीय हो जाता है। कहीं वह पति की मार खाती है। कहीं अपमान का शिकार होती हैं। कहीं उसे विद्यालय में घुसने से रोका जाता है। कहीं मंदिर में आर्थिक और सामाजिक समानता के सपने देखने वाले समाज में व्याप्त लैंगिक और जाति विभेद के बहुआयामी पक्ष इन स्त्रियों की आत्मकथाओं को बहुआयामी बनाते हैं। मैनेजर पाण्डेय लिखते हैं कि "स्त्रियों की आत्मकथाएं तो इसलिए नही है कि उन्हें हमारे सामाजिक ढाँचे में बोलने की स्वतन्त्रता नहीं है, लेकिन पुरुषों की आत्मकथाएं इसलिए बहुत नहीं है कि स्वतंत्रता तो है, पर आदत नहीं हैं।"[१]

हिन्दी भाषा में निर्मला जैन 'जमाने में हम' आत्मकथा में सामान्य परिवार से दिल्ली विश्वविद्यालय तक का सफर कैसे तय किया व किस परिस्थितियों में किया उसका विस्तृत वर्णन किया है। इनका जन्म सन् १९३२ ई. में दिल्ली के व्यापारी परिवार में हुआ। इन्होंने दिल्ली विश्वविद्यालय से बी.ए., एम.ए., पीएच.डी. और डी.लिट् की उपाधिाँ प्राप्त कीं। लेडी श्रीराम कॉलेज (१९५६-१९७०) तथा दिल्ली विश्वविद्यालय के हिन्दी विभाग (१९७०-१९९६) में अध्यापन कार्य किया तथा कई वर्षों तक इन्हीं दिनों दक्षिण परिसर में विभाग की प्रभारी प्रोफेसर तथा हिन्दी विभाग की अध्यक्ष १९८१-८४ ई. तक रही। इन्होंने कई रचनाओं का अनुवाद किया तथा कहीं मौलिक उद्धृत की है।

प्रस्तुत आत्मकथा में लेखिका ने पाठकों के समक्ष ऐसी अकथ्य कहानी को स्वयं के बीते कल को साहित्यिक बौद्धिक जगत् का चित्रण इस तरह उद्धृत किया है जो आजादी के बाद हिन्दी साहित्य की समीक्षा बनकर उभरी है। अपनी पुरानी यादों के दौर से लेखिका ने अपनी कहानी की शुरुआत की तथा निरन्तर जीवन में कठिन संघर्षों तथा साहित्य जगत् के सच को पाठकों के समक्ष सत्यता के साथ उद्धृत किया है। एक स्त्री के जीवन की मार्मिक व्याख्या का जीवन्त दस्तावेज लेखिका ने पाठकों के समक्ष प्रस्तुत किया है। जिसमें लेखिका ने संयुक्त परिवार के बनते-बिगड़ते ढाँचे को तथा बालविवाह अनमेल विवाह का भी खुलकर चित्रण अपने घर से ही किया है। लेखिका उल्लेख करती है कि उनके पिता के तीन पत्नियाँ थी। जिसमें क्रमशः उनकी प्रथम पत्नी एक पुत्र के जन्म के बाद संसार से विदाई ले लेती थी। द्वितीय पत्नी के चार पुत्र और दो पुत्रियाँ हुई थीं व लेखिका की माँ उनके पिताजी से २० वर्ष छोटी थी पर पिताजी अपनी दूसरी पत्नी के कलह से तंग आकर तीसरी शादी हेतु मान जाते हैं। जो एक अनमेल विवाह था तब लेखिका अपनी माँ के स्वभाव के बारे में प्रस्तुत करती है "वे बड़े सलीके से अपनी गृहस्थी चलाने लगी।"

उर्वशी-मेनका वे भले न रही हों, पर औरत रूप रंग से लैस वे सुदर्शन कर्म महिला थी। उनके व्यक्तित्व में एक खास आभिजात्य था। उनके आचार-विचार पर तत्कालीन आर्यसमाज का तथा जीवन-शैली और घरेलू रखरखाव पर उनके पड़ोस के खत्री परिवारों का गहरा असर था। उत्तर-पूर्वी भारत के खत्री परिवार अपने रूप, रहन-सहन के साफ-सुथरे ढंग और सलीके के लिए बहुत प्रसिद्ध थे।[२]

आर्य समाज का उस काल में लोक मानस पर ठीक-ठाक असर दिखाई पड़ रहा था। उनका जिक्र भी लेखिका ने किया है। पिताजी का भी लेखिका पर विशेष अनुराग था इसलिए तो वे अपनी बेटी का चहुंमुखी विकास देखना चाहते थे। लेखिका को उस जमाने में भी जब नाचना गलत माना जाता था। उस समय कथक की शिक्षा दिलवाई थी। परन्तु यहाँ तक जब पिताजी का साया जब सिर से उठ गया तो लेखिका को घुंघरुओं को छोड़कर पुस्तक थामना पड़ा। माँ का सबसे बड़ा योगदान यह था कि उन्होंने हमारे भीतर सही और गलत का विवेक पैदा किया। आचरण में करणीयस और अकरणीय की चेतना जगाई और संघर्ष एवं कर्म का महत्त्व समझाया, उपदेश से नहीं, आचरण से। चरखा कातना मैंने उनकी संगत में उनका अनुसरण करते हुए सीखा; क्योंकि उन्होंने मुझे ऐसा करने का आदेश नहीं दिया।[३] उनकी माँ की उम्र करीब ३५ साल की ही थी जिन्होंने लेखिका का कदम-कदम पर साथ दिया।

शादी के बाद का सफर जहाँ जैन साहब ने उनका कदम-कदम पर सहयोग किया। परन्तु ग्रामीण परिवेश में ससुराल होने के कारण वहाँ अनेक कुरीतियों से पाला पड़ा। जैसे पर्दा प्रथा के बारे में वो लिखती हैं - "मैंने 'अम्मा' की अगुवाई में सम्भलकर चढ़ना-उतरना शुरू किया तो माँ जी सीढ़ी के शुरुआती सिरे पर बतौर निगरानी खड़ी थी। दो-तीन सीढ़ियाँ उतरी होंगी कि पीछे से माँ जी की कड़क आवाज सुनाई दी बहू कोहनी ढक। मुझे दिन में तारे नजर आ गए।"[४]

अतः इन सबके बावजूद जब दो बच्चों की माँ होने के बाद उन्होंने पढ़ाई वापसी शुरू की। वे दिल्ली विश्वविद्यालय से डी.लिट् करने वाली प्रथम छात्रा थी। दिल्ली विश्वविद्यालय में रीडर के पद पर भी नियुक्त हुई थी। साक्षात्कार से पहले चांसलर को प्रधानमंत्री जी को फोन भी आया था। परन्तु लेखिका तो अपना भाग्य आजमाना चाहती थी। इंटरव्यू हेतु पहुँच गयी और सफलता भी हासिल की। आज के इंटरव्यू में एक महिला कैंडीडेट है, वह सी.पी.एम.फिल. की सक्रिय मेम्बर हैं, उनकी नियुक्त किसी हालत में नहीं होनी चाहिए।[५] इस प्रकार प्रस्तुत आत्मकथा में दिल्ली विश्वविद्यालय के अन्तर्गत चलने वाली राजनीति कैसे पीएच.डी. शोधछात्रों के साथ भी कई बार एक अध्यापक के एकमात्र अहंकार (Ego) के कारण जीवन चौपट होते दिखाई पड़ते हैं। इंटरव्यू के वक्त चाहे वो इंटरव्यू शोधछात्रों का हो अध्यक्ष पद हेतु हो या फिर प्रोफेसर हेतु नियुक्ति के वक्त किसी तरह की राजनीति से गुजरना होता है इंटरव्यू बोर्ड का भी प्रेशर झेलना पड़ता है। उसका लेखिका ने साक्षात् विवरण दिया है।

मराठी आत्मकथा 'आयदान' उर्मिला पंवार

लेखिका का जन्म १९४५ ई. में बॉम्बे प्रेसीडेंसी (महाराष्ट्र) के कोंकण क्षेत्र में रत्नागिरी जिले अदगाँव में हुआ था। यह भारतीय मराठी भाषा की लेखिका और कार्यकर्ता हैं। माँ ने जो जीवन भर ढ़ोया उसी भोक्तव्य को अपने जीवन में उतरता देखने वाली लेखिका उर्मिला पंवार, एक जाग्रत सक्षम तथा संवेदनशील नारी की हैसियत से अपने अनुभवों को जब प्रकट करती है तब वह अभिव्यक्ति मराठी आत्मकथा में अपनी छाप छोड़ जाती है। वर्तमान सामाजिक जीवन में एक स्त्री बनकर जीना ..... बन्धनों में रहना ..... बंद दरवाजों पर सर पटककर ..... बेवजह ..... अन्याय, लांछनों के तमगे पहनना ..... फिर वह देहात में पली-बढ़ी उपर से दलित ..... किन्तु परिस्थिति की भट्टी में तप-निखर कर उसने जो समक्ष पायी उसी को कागज पर उतारने का नाम है- 'आयदान' उनकी माँ बाँस छीलकर आयदान बुनती थीं तो बेटी ने लेखनी का उपयोग किया लेकिन धागे तो वही थी ..... पीड़ा के .....।

प्रस्तुत आत्मकथा में लेखिका ने शुरुआत 'फणसवले गाँव के विकट रास्तों का वर्णन करते हुए की है तथा दलित स्त्रियाँ कैसे अपना जीवन निर्वाह करने के लिए अपनी आय के लिए गाँव से शहर रत्नगीर जाती थी तथा लकड़ियाँ बेचकर जो पैसे मिलते थे उससे चावल मछली लाती थी।' इस आत्मकथा में लेखिका ने सामाजिक आर्थिक व राजनीतिक के साथ सांस्कृतिक व साहित्यिक सभी पहलुओं को बड़ी अच्छी तरह से उकेरा है। ग्रामीण परिवेश की आर्थिक स्थिति ठीक न होने के कारण स्त्रियों को गाँव से शहर जाना पड़ता था। अतः यहाँ अशिक्षा व पिछड़ापन व गाँव से शहर जाने का विकट रास्ता था। महार जाति में शिक्षा का अभाव था। इसी के चलते समाज में जाति-पाँति व छुआछूत का भी बुरा प्रभाव था। स्त्री की स्थिति बेहद की खराब थी। उन्हें बस सारे दिन मरकर काम करना होता था। अपने बच्चों का पालन करना होता साथ ही जाति के लोग अपने पिछड़ेपन का सबूत शराब आदि पीकर भी देते थे। उस धूत नसे की हालत में औरत को पीटते थे। प्रस्तुत

आत्मकथा स्त्री दलित जीवन की चरम सीमा को महसूस कराती है। इन सब को सहने के बावजूद वह उस विकट रास्ते को इन ही सब बातों के सहारे अपने साथ की स्त्री को सुना-सुनाकर पीड़ा व्यक्त करती थी।

समाज में इतनी छुआ-छूत थी कि पंडित शादी विवाह में पहली बात तो घर पर तो कभी मन्त्र उच्चारण नहीं करता था। अगर शादी में मन्त्रोच्चारण करता था तो किसी पेड़ पर चढ़कर मन्त्र उच्चारण करता था। पण्डित जी कभी महारों की बस्ती में परिवेश नहीं करते थे बल्कि बस्ती के बाहर किसी पेड़ पर चढ़कर दूर से ही मन्त्र पढ़कर पूजाविधि सम्पन्न करवाते थे। शादी में वर-वधू तथा बराती मंडप में होते, लेकिन पण्डित जी पेड़ पर चढ़े होते थे। वे पेड़ से ही मन्त्र पढ़कर 'सावधान' चिल्लाते और यहाँ मंडप में ढोप-ताशे के साथ विवाह सम्पन्न होता था। फिर पण्डित पेड़ से नीचे उतरकर दक्षिणा के पैसों पर पानी छिड़ककर उन्हें पवित्र करता और अपनी अन्टी में रख लेता था। दक्षिणारूपी दाल चावल नारियल आदि नौकर से घर भिजवाये जाते थे।[६] इस प्रकार का व्यवहार लेखिका के परदादा को बेहद ही अपमानजनक लगता था और लेखिका का घर थोड़ा शिक्षित था। पिता मास्टर थे और उसी के चलते वे शहर तथा गाँव की सीमा जो शहर के ज्यादा निकट थी। वहाँ आकर बसे गये थे। शिक्षक भी इसी प्रकार छुआ-छूत का व्यवहार करते थे। "शिक्षक इन अछूत बच्चों को दूर से पढ़ाते, स्लेट पट्टी दूर ही से जाँचते तथा गलती होने पर दूर से ही कंकड़ या मिट्टी का ढ़ेला फेंककर मारते थे।"[७]

लड़कियों की शिक्षा के लिए गाँव में परिवेश वर्जित था। इसी के चलते लेखिका की बहिन शान्ति अक्का पटवणे गाँव में पिता के मित्र के घर पर रहकर पढ़ाई की थी। पिताजी का मानना था कि लड़कियों को पढ़लिख कर नौकरी कर अपने पाँव पर खड़ा होना चाहिए। लेकिन अन्य सदस्य इसके विपरीत सोच रखते थे "लड़की की जात, पढ़-लिख के करेगी क्या ? ..... चूल्हो ही तो फूँकना है न आखिर ?" या फिर पढ़-लिखकर शान्ति क्या मास्टरनी बनेगी या बामणी? "अतः पिताजी का इच्छा तथा आये के संघर्ष ने लेखिका के समेत सभी भाई-बहिनों ने नौकरी पा ली थी तथा अपने पैरों पर खड़े हो गये थे। कहीं बार लेखिका को माँ के बनाये 'आयदान' ग्राहकों के घर जाकर देकर आना पड़ता था। वो लिखती है "मुझे यह काम जरा भी पसन्द नहीं था; क्योंकि कई ग्राहक मुझे घर में घुसने तक नहीं देते थे। दरवाजे से बाहर ही खड़ा कर, मेरे हाथ आयदान जमीन पर रखवा कर पहले उस पर पानी छिड़कते फिर उठाते थे। पैसे भी हाथ में ऊपर से ही डाले जाते थे। मेरे स्पर्श से जैसे उनका हाथ जल जाता। ऐसे घरों में अगर मेरा सहपाठी होता तो मैं और भी शर्म से मर जाती थी।

आर्थिक स्थिति ऐसी थी कि लेखिका के पास बचपन में एक जोड़ी कपड़े थे उनको भी ८/१० दिन में धोया जाता था। इस कारण स्कूल में बच्चे उन्हें उपेक्षित नजर से देखते थे। पिता के देहान्त के पश्चात् आर्थिक स्थिति और कमजोर हो गयी थी सिर्फ आये ही कमायी से घर चलता था। समाज में जाति धर्म के संस्कार गुरु द्वारा दिये जाते थे। परन्तु धर्म परिवर्तन हो जाने के बाद यह भी

परिवर्तित हो गया था। अम्बेडकर के विचारों को समाज में अपनाया जाने लगा। साथ ही लेखिका ने हरिश्चन्द्र के साथ प्रेम विवाह का वर्णन किया है। जनसंख्या वृद्धि का कारण पुत्र इच्छा को माना था। लेखिका का मानना था कि परिवर्तन होना चाहिये और उन्होंने बम्बई की गन्दी बस्तियों में दलितों को जागरूक करने का भी उन्होंने कार्य किया। जिसकी समझ उन्हें 'मैत्रीण' से मिली थी। लेखिका ने प्रस्तुत आत्मकथा के जरिये न्याय के प्रश्नों को पाठकों के समक्ष रखती है। दलित होने पर किस प्रकार उसे दोहरा अभिशाप मिलता है उसको जीवन्त बताती है व परिवर्तन के लिए शिक्षा जागरूकता तथा अपने हक हेतु निरन्तर संघर्ष का एक सन्देश देती है।

सन्दर्भ-सूची

१. पंकज चतुर्वेदी, आत्मकथा की संस्कृति, वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली, २००३ आवृत्ति २०११, पृ. सं. ५७
२. जमाने में हम, निर्मला जैन, राजकमल प्रकाशन, पैपरबेक्स में संस्करण प्रथम, २०१५, द्वितीय २०१६, पृ. सं. १८
३. वहीं, पृ. सं. ५२
४. वहीं, पृ. सं. ६६
५. जमाने में हम, निर्मला जैन, राजकमल प्रकाशन, प्रथम संस्करण २०१५ व द्वितीय २०१६, पृ. सं. ८५
६. आयदान, उर्मिला पंवार, वाणी प्रकाशन २०१०, पृ. सं. २४-२५
७. आयदान, उर्मिला पंवार, वाणी प्रकाशन २०१०, पृ. सं. २८
८. आयदान, उर्मिला पंवार, वाणी प्रकाशन २०१०, पृ. सं. ६१

Shodh Navneet (International Peer-Reviewed Research Journal)
ISSN : 2321-6581, IIJ Impact Factor : 5.037, Vol. XIX, July - Dec. - 2022

हिन्दी कथा साहित्य में किसान जीवन

डॉ. सविता टाक*

भारत हमेशा से एक कृषिप्रधान देश रहा है। यहाँ की अधिकांश आबादी गाँवों में निवास करती है। इन ग्रामवासियों का प्रधान कार्य कृषि है। इनकी आजीविका का प्रमुख जरिया खेती भारतीय अर्थव्यवस्था का आधार रही है। हिन्दी साहित्य का चित्रण कालक्रमों में विभिन्न विधाओं में किसान जीवन का चित्रण मिलता है। कविता, उपन्यास और कहानी में कृषक जीवन के दर्शन होते हैं। हिन्दी लेखकों ने किसानों के जीवन के प्रत्येक पक्ष को छूने का प्रयास किया है।

हिन्दी साहित्य में प्रेमचंद पहले रचनाकार हैं, जिन्होंने किसानों को केन्द्र में रखकर साहित्य रचना की। इसलिए डॉ. रामविलास शर्मा ने उन्हें अद्वितीय उपन्यासकार कहा है। वह किसान को रंगमंच के केन्द्र में रखते हैं। उन्होंने पहली बार किसानों के जीवन को भीतर से देखा और उनकी पीड़ा को उनके हास्य रुदन को उनकी गरीबी, उनके सीधेपन को उपन्यासों में सजीव ढंग से चित्रित किया, तभी तो उन्होंने होरी को व्यक्ति चरित्र से वर्ग चरित्र बना दिया।

प्रेमचंद की परम्परा को आगे ले जाने वाले उपन्यासकारों में नागर्जुन, भैरव प्रसाद, फणीश्वर नाथ रेणु, राही मासूम राजा, श्रीलाल शुक्ल, विवेकी राय, भगवानदास मोरवाल, वीरेन्द्र जैन, राजू शर्मा आदि प्रमुख हैं। इसके अतिरिक्त कहानीकारों और कवियों ने भी किसान जीवन की त्रासदियों को अपनी रचनाओं में उकेरा है। आज खेती, किसानी और किसान दोनों संकट के दौर से गुजर रहे हैं। किसान लगातार आत्महत्या करते जा रहे हैं। ऐसे समय में जब देश की बहुसंख्यक आबादी की सामाजिक संरचना छिन्न-भिन्न हो चुकी है। किसान तबाही के कगार पर खड़ा है। धरती और किसान का अटूट रिश्ता है। वह अपनी जमीन में सर्वाधिक लगाव रखता है। आज भूमण्डलीकरण के इस दौर में उसके इस धरोहर को छीनने की कोशिश की जा रही है।

देश की तत्कालीन परिस्थितियों का प्रभाव हिन्दी साहित्य पर भी दिखाई देता है। किसानों की दशा का वर्णन आधुनिक युग में भारतेन्दु जी साहित्य में थी। किसानों के प्रति सहानुभूति की भावना दिखाई देती है। किसानों की दीनहीन दशा का वर्णन बद्रीनाथ चौधरी 'प्रेमधन' ने ''जीर्ण जनपद'' शीर्षक प्रबन्ध काव्य में किया है। इसमे किसानों के अभिशप्त जीवन का यथार्थ चित्रण प्रस्तुत किया गया है।

द्विवेदी युग में भी कवियों ने किसान जीवन के यथार्थ को विषय बनाकर रचनाएं की। स्नेही द्वारा लिखित (दुखिया किसान) सरस्वती जनवरी १९१२ मैथिलीशरण गुप्त द्वारा रचित (कृषक

* सह-आचार्य-हिन्दी, माणिक्य लाल वर्मा राजकीय महाविद्यालय भीलवाड़ा, राजस्थान

गाथा) और भारतीय कृषक किसानों की दयनीय दशा का चित्रण किया है। इस युग में दो प्रमुख काव्यों की रचना हुई। गया प्रसाद शुक्ल के स्नेहीकृत (कृषक क्रन्दन) १९१६ मैथिलीशरण गुप्त द्वारा लिखित किसान प्रमुख काव्यों के नायक किसान हैं। इनमें सूदखोरी, महाजनी व्यवस्था पुलिस के अत्याचार भूख से तड़पकर दम तोड़नें वाले किसान की दीनदशा का वर्णन किया गया है। छायावाद में निराला ने (बादलराग) के माध्यम से दीनहीन किसान की कहानी को सुनाया गया है। प्रगतिवाद में सुमित्रानन्दन पंत नें (युगान्त) (युगवाणी) (ग्राम्या) की कविताओं में किसान जीवन की झलक देखने को मिलती है। केदारनाथ अग्रवाल की (धरती और किसान स्तवन) रचनाओं में किसानों की स्थिति का चित्रण देखने को मिलता है। नागार्जुन की (अकाल और उसके बाद) कविता में अकाल के बाद किसान की दशा का जीवन्त वर्णन किया गया है। इसके अतिरिक्त अन्य कवियों ने अपनी रचनाओं में किसान जीवन का चित्रण किया। प्रभाकर माचवे (गेंहू की सोच) भवानी प्रसाद मिश्र (किसान का गीत), सर्वेश्वरदयाल सक्सेना (कुंआनो नदी), अरुण कमल (कालाहाण्डी) (ऋतुराज) आदि में किसानों की व्यथा का सजीव चित्रण देखने को मिलता है।

हिन्दी कथा साहित्य में प्रेमचन्द युग में किसानों को अपने साहित्य का आधार बनाया। कर्मभूमि, प्रेमाश्रय, गोदान जैसे उपन्यासों की रचना की। ये उपन्यास कृषक जीवन व्यथा को प्रस्तुत करते हैं। कृषि ही किसान जीवन की संस्कृति का आधार है। प्रेमचन्द ने कृषि व्यवस्था के कर्ता-धर्ता किसानों को अपने उपन्यासों और कहानियों का मुख्य विषय बनाया। (पूस की रात, दो बैलों की कथा, बलिदान, सवासेर गेहूँ) आदि किसान जीवन पर आधारित कहानियाँ हैं। इसी समय शिवपूजन सहाय का (देहाती दुनिया) उपन्यास प्रकाशित हुआ; हालांकि यह उपन्यास ९० वर्ष पूर्व लिखा गया था, किन्तु इस उपन्यास में वर्णित कृषक जीवन की समस्याएं आज भी विद्यमान हैं। पाण्डेय बैचेन शर्मा उग्र कहानी (अभागा किसान) की इसी समय लिखी गयी जो कृषक जीवन की मार्मिक स्थिति का चित्रण करती है।

स्वातंत्र्योत्तर कथा साहित्य में फणीश्वर रेणू का (मैला आंचल, परती परी कथा) की रचना की, जिसमें ग्रामीण जीवन की झलक आंचलिक भाषा में देखने को मिलती है। नागार्जुन (बलचनावानमा) एवं भैरवप्रसाद गुप्त के (सती मैया का चौरा, गंगा मैया) आदि उपन्यासों में जमीदारी प्रथा से किसान वर्ग की दयनीय स्थिति को उजागर किया। जगदीशचन्द्र के उपन्यास (धरती धन न अपना घास गोदाम) में पंजाब के किसानों का चित्रण किया गया है। सजीव द्वारा रचित (तीस साल का सफरनामा, राख, जोहि एहि पद का अरथ लगावे, एवं दो बीघा जमीन) आदि कहानियों में भारतीय किसान के लिए उसकी जमीन के महत्त्व को दर्शाया गया है। इस प्रकार स्वातंत्र्योत्तर युग के कथा साहित्य में किसानों पर हो रहे अत्याचारों एवं उनकी स्थिति को उजागर किया गया है।

सन् १९९० के बाद भूमण्डलीकरण, उदारीकरण और वैश्वीकरण का दौर शुरू हुआ। इन आर्थिक नीतियों ने बाज़ारवाद को जन्म दिया। बाज़ारवाद ने मानव जीवन को स्थापित किया।

जिससे किसान जीवन सबसे अधिक प्रभावित हुआ है। साहित्य समाज का प्रतिबिम्ब होता है, इसलिए इसकी स्पष्ट झलक हिन्दी कथा साहित्य में देखने को मिलती है। उदारीकरण ने किसान जीवन में ऐसा परिवर्तन किया, जिससे कृषकों की दशा ही बदल गयी। वह रूढ़ियों, परम्पराओं से दूर होता चला गया। किसानों को विस्थापन, बेरोजगारी की समस्या, बीज, खाद, जल संकट आदि का सामना करना पड़ा। यहाँ तक कि वह आत्महत्या करने के लिए भी विवश हो गया। इन सभी समस्याओं को लेकर रचनाकारों ने कथा साहित्य की रचना की।

नब्बे के दशक में हिन्दी कहानियों पर उदारीकरण का प्रभाव को लेकर हिन्दी में अनेक कहानियाँ लिखी गयीं। किसान जीवन पर कैलाश वनवासी की कहानी (बाजार में रामधन) में बाज़ारवाद की अनिवार्यता एवं कृषक पर उनके प्रभाव को दर्शाते हुए कवियों एवं बाज़ारवाद पर प्रहार किया है। अविनाश झा के कहानी संग्रह (बटेसर ओझा) अन्य कहानियों में भी भूमण्डलीकरण के दौर में किसान पर पड़ने वाले बाज़ारवाद के प्रभाव का चित्रण मिलता है। मिथलेश (अकेला) कहानी संग्रह (उल्टी उड़ान) आज के बदलते परिवेश में किसानों की विस्थापन तथा उदारीकरण के दौर में किसानों की स्थिति का चित्रण किया गया है। इस प्रकार किसान जीवन पर आधारित उपन्यासों और कहानियों में किसानों की मार्मिक दशा अभिव्यक्त की गई है। हिन्दी कथा साहित्य में हाशिए पर खड़े कृषक वर्ग की समस्याओं का चित्रण किया गया है। जिसमें किसान जीवन के यथार्थता से परिचित हो जाता है।

सन्दर्भग्रन्थ

- बटेसर ओझा और अन्य कहानियाँ, अविनाश झा, रश्मि प्रकाशन, लखनऊ, २०१९
- बाज़ार में रामधन, कैलाश वनवासा, भारतीय ज्ञानपीठ, दिल्ली, २००४
- उल्टी उड़ान, मिथलेश अकेला, रश्मि प्रकाशन, लखनऊ, २०१९
- मानव मूल्य और स्वातंत्र्योत्तर उपन्यास, बलराज सिंहमार, खामा पब्लिकेशन, दिल्ली, २००२
- आधुनिकता और हिन्दी उपन्यास, इन्द्रनाथ मदान, राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली, २०१३
- भूण्डलीकरण और हिन्दी उपन्यास, पुष्पपाल सिंह, राधाकृष्ण प्रकाशन, २०१२

Shodh Navneet (International Peer-Reviewed Research Journal)
ISSN : 2321-6581, IIJ Impact Factor : 5.037, Vol. XIX, July - Dec. - 2022

अमरकांत के पात्रों में जीवन-जीने की लालसा

जिज्ञासा मिश्रा*, डॉ. महेन्द्र कुमार त्रिपाठी**

प्रेमचंद की परम्परा को आगे बढ़ाने वाले अमरकांत को हिन्दी साहित्य का गोर्की कहा गया है। अमरकांत अनेक पक्षों में प्रेमचंद के उत्तराधिकारी के रूप में देखे गये हैं। अमरकांत तथा उनके समकालीन लेखकों ने कहानी का दायरा गाँव तक ही न रखकर कस्बों, शहरों तथा दाम्पत्य जीवन की असंगतियों तक पहुँचा दिया है। जब कहानियों की कथावस्तु मानसिक विकार में उलझता जा रहा था तब अमरकांत ने गाँव, कस्बों, शहरों तथा दाम्पत्य जीवन की असंगतियों तक पहुँचा दिया है। जब कहानियों की कथावस्तु मानसिक विकास में उलझता जा रहा था तब अमरकांत ने गाँव तथा कस्बो की सहायता से मध्यवर्गीय जीवन के यथार्थ को नया करने वाली कहानी अमरकांत को प्रेमचंद का वास्तविक उत्तराधिकारी बना देती है। अतः यह कहा जा सकता है जहाँ 'कफ़न' कहानी प्रेमचंद की लेखनी का विराम है वही 'डिप्टी कलेक्टरी' कहानी अमरकांत की शुरुआत है। अमरकांत के यहाँ पात्र प्रेमचंद के होरी, गोबर के आगे दबी कुचली पीढ़ी ने लिया है। अमरकांत की सहजबयानी कहानी को और भी ज्यादा संवेदनशील बना देती है। इनकी कहानियों के पात्र हमें ज्यादा करीब लगते हैं, क्योंकि ये पात्र मात्र काल्पनिक रूप से ही नहीं गढ़े गये हैं बल्कि ये हम या हमारे आस-पास के लोगों में से एक है। अमरकांत अपने कथानक के लिए कहा भी है कि 'जो आपके सामने घटित हो रहा है वही घटना नहीं बल्कि उसे देखकर, अपने चारों ओर देखने के बाद आपके अंदर घटित हो रहा है वह रचना है।[१] अमरकांत के रचना साहित्य में प्रवाह, प्रभाव, प्रहार का सामंजस्य है। कथा का निश्चित प्रवाह कहानी को उसके उद्देश्य तक पहुँचाने में पूरी सहायता करता है। इसी क्रम में मध्यवर्गीय व्यवस्था की कमियों पर अमरकांत ने करारा प्रहार किया है। यही विशेषता अमरकांत की कहानी को प्रभावशील बनाती है और अमरकांत को मध्यवर्ग के प्रतिनिधि लेखक के रूप में स्थापित करती है।

आज के दौर में टूटते हुए जीवन मूल्यों और इस आधुनिक व्यवस्था का शिकार बनते उसूलों एवं आदर्शों के बिखने के दर्द को बयां करते हुए अपनी आस्था के लिए बेहतर विकल्प की तलाश अमरकांत को अन्य लेखकों से अलग करती है। अमरकांत का लेखन कहानी के बदलते स्वरूप का गवाह है। अमरकांत ने अपने कथा के आधार पर यह बताने का प्रयास

* शोधछात्रा, टी०डी० कॉलेज जौनपुर, उत्तर प्रदेश
** एसोसिएट प्रोफेसर, हिन्दी विभाग, टी०डी० कॉलेज जौनपुर (उ.प्र.)

किया है कि शिल्प के नयापन से ज्यादा प्रभाव संवेदना की गहनता का होता है। 'डिप्टी कलक्टरी' कहानी में ऐसे ही संसार को दिखाया गया है। जहाँ एक परिवार बेहतर जीवन की इच्छा रखने के लिए अपने क्षमता से ज्यादा प्रयास और कहानी के अन्त में उन सारे सहेजकर रखे सपनों का निखर जाना, परन्तु वह परिवर अपने मूल संवेदना और संतोष को विखरने नहीं देता। ये कहानी मध्यवर्गीय परिवार की अनेक चिंता तथा संवेदना की परत को खोलती है। अमरकांत का रचना क्षेत्र बहुत व्यापक न होकर सीमित एवं सूक्ष्म मनोविश्लेषण से भरा हुआ है। इनका कथ्य क्षेत्र मध्य वर्ग ही है परन्तु अपनी सम्पूर्णता के साथ। अमरकांत के पात्र के सपने बहुत साधारण होते हैं उसकी चिंता रोटी, कपड़ा और मकान तक सीमित है। इन परिस्थिति में पात्रों द्वारा देखे गये थोड़े से सुख एवं व्यवस्थित जीवन का सपना पाठक को बहुत मार्मिक भाव से भर देता है। इलाहाबाद डिप्टी कलेक्टरी की परीक्षा दे रहे बेटे को शिवमंदिर का प्रसाद देने के लिए ट्रेन के पीछे दौड़े शकलबाबू का ये दृश्य अत्यन्त कारुणिक प्रसंग का सृजन है। 'उनके पैर थप-थप की आवाज के साथ प्लेटफॉर्म पर गिर हे थे और उनकी हरकतों का उनके मुख पर कोई विशेष प्रभाव दृष्टिगोचर नहीं हो रहा था, बस यही मालूम होता कि कुछ परेशान है। प्लेटफार्म पर एकत्रित लोगों का ध्यान उनकी ओर आकर्षित हो गया। कुछ लोग ने जोर से ललकारा, कुछ ने मौज में आकर किलकारियाँ मारी और कुछ लोगों ने दौढ़ के उनके प्रति तटस्थ मुद्रा को देखकर बेतहाशा हँसना आरंभ किया। उन्होंने डिब्बे के सामने पहुँचकर उत्सुक और चिंतित मुद्रा में डिब्बे से सिर निकालकर झाँकते हुए नारायण के हाथ में एक पुड़िया देते हुए कहा कि 'बेटा' इसे श्रद्धा के साथ खा लेना, भगवान शंकर का प्रसाद है।[२] आर्थिक अभाव के साथ उनकी जिन्दगी के प्रति जिंदादिली अमरकांत के पात्रों को अलग पहचान दिलाती है।

'डिप्टी कलेक्टरी' की तरह दोपहर का भोजन मध्यवर्गीय परिवार के भूख और भोजन की कहानी न केवल कहानी में व्यक्त संवेदना के घनत्व को बढ़ाती है बल्कि पाठक के मन को झकझोर देती है। अमरकांत भले ही मध्यवर्ग के चितेरे लेखक थे या उनका काल बदलाव का था। उस समय नेहरू के प्रभाव से देश का बड़ा वर्ग सृजित हो रहा था। धीरे-धीरे देश में समता और समानता की बातें मात्र किताबों तक सीमित रहने लगी। ऐसे में कहानी में आये यात्री की विडम्ब ना को सामाजिक यथार्थ के रूप में आँका जाना आवश्यक है। इस कहानी में तटस्था के साथ चंद्रिका प्रसाद और सिद्धेश्वरी के परिवार को आधार बनाकर पूरे निम्न मध्यवर्ग की अभाव पीड़ा को उभारा गया है। सम्पूर्ण कहानी मानो दोपहर की चने की तरकारी और रोटी की रोधांस से ओतप्रोत हो गई है। घर के बाहर और अंदर दोनों वातावरण की सजीवता और सिद्धेश्वरी का अभाव के बाद भी घर के सभी सदस्यों का पेट भरने का प्रयास करती है और अन्त में सुद पनियाई दाल पीना निम्न मध्य वर्ग की भारत में स्थिथि को खोलने का प्रयास है। साथ ही भारतीय परिवार की उस आस्था को बल देता है जिसमें नारी को गृहलक्ष्मी कहा जाता है। घर

की वास्तविक स्थिति जानने के बाद भी उसे छिपाने का सिद्धेश्वरी का कमजोर प्रयास कहानी को कारुणिक बना देता है। रोटी के अभाव में यह कहना की पेट इतना भरा है और ज्यादा खिलाकर क्या मुझे बीमार करना है? यह व्यंग्य ही तो है आजाद भारत की व्यवस्था पर।

अमरकांत ने अपनी कहानी में मध्य वर्ग के जीवन का यथार्थ दिखाया है। 'पलाश के फूल' 'जिंदगी और जोंक' मूस, दो चरित्र तथा असमर्थ हिलता हाथ। आदि कहानियों में मध्यवर्गीय तथा निम्न-मध्यवर्गीय पात्र जूझते हुए अपनी आवश्यकता को पूरा कर रहे हैं। 'शाम' कहानी की नायिका लता चाहती है कि उसका पति दफ्तर में अतिरिक्त काम करके ज्यादा पैसे कमाये। लता में अपने छोटे से सुख भी न पा सकने की तड़प दिखायी देती है। हमारे भारतीय समाज में कहा जाता है कि संतोष परमसुख होता है परन्तु संतोष भी तभी होता है जब जरूरत का निम्न स्तर पूरा सके। मध्यवर्ग और निम्न वर्ग की रोजमर्रा जीवन की वास्तविकता को दिखलाया है।

भूख जैसी आदिम जरूरत भी निम्न मध्य वर्ग को बैल या कुत्ते जैसे जीवन जीने पर मजबूर कर देती है। 'जिंदगी और जोंक' कहानी का रजुआ इसका जीवंत उदाहरण है। रजुआ कुछ भी काम करके कैसे भी पेट भरके जीना चाहता है। ''उसके हाथ में एक रोटी और थोड़ा आचार था वह सुअर की भांति चापुड़-चापुड़ खा रहा था। बीच-बीच में मुस्कुरा पड़ता, जैसे कोई बड़ी मंजिल सर करके बैठा हो।[३] रजुआ किस प्रकार गोपाल से रजुआ, रजुआ से रजुआ साला और बाद में रज्जू भगत बना, जिंदगी से जोक की तरह चिपटा हुआ रजुआ जीना चाहता है बस जीना चाहता है। अपनी खास सैली में अमरकांत ने रजुआ के माध्यम से जिंदगी के काइयांपन को दर्शाया है। शिवनाथ बाबू का यह कहना मध्यवर्ग की अपने से नीचे के आदमी के लिए सोच को व्यक्त करता है कि नीच और नींबू निचोड़ने से ही रस देते हैं। रजुआ में जिन्दा रहने की प्रवृत्ति घीसू और माधव जैसे पात्रों से धीरे-धीरे आगे बढ़ी है। रजुआ मात्र एक पात्र ही नहीं बल्कि उसका काइयांपन और जीने की ललक मध्यवर्ग तथा निम्न मध्य वर्ग की प्रवृत्ति है। 'जिन्दगी और जोंक' के बारे में राजेन्द्र यादव का कहना है कि ''मैं आज तक तय नहीं कर पाया कि 'जिंदगी और जोंक' जीवन के प्रति आस्था की कहानी है या जुगुप्सा, आस्थाहीनता या डिस्गास्ट की।''[४]

अमरकांत ने आम आदमी के जीवन की कहानियाँ लिखी हैं। इनकी कहानियाँ में जीवन के लिए लड़ता सर्वहारा वर्ग है। इनके पात्र अपना जीवन किसी तरह व्यतीत करने का प्रयास करते हैं, परन्तु अनजाने में ही वे पूरे मध्यवर्ग का प्रतिनिधित्व करते दिखायी देते हैं। अमरकांत ने हिंदी साहित्य में नये पात्रों को गढ़ा है। भारत के इस वर्ग की विवशता को रेखांकित करने वाले 'रजुआ' और 'मूस' जैसे पात्रों को सृजित करके अमरकांत ने अपने यथार्थवादी दृष्टिकोण का परिचय दिया है। ''अमरकांत ने पात्रों और उनकी स्थितियों में हो रहे घात-प्रतिघात से उत्पन्न विकारों को एक नए अनुभवों से वर्णित किया है।''

इन कहानियों के अलावा 'मौत का नगर', जांच और बच्चे, एक धनी व्यक्ति का बयान आदि कहानियों में पात्रों की जीवन जीने की जिजीविषा तथा अपने जीवन के लिए संघर्ष को दिखाया है। यह संघर्ष उसके जीवन में कभी खत्म न होने वाला है, जिसका कोई अंत नहीं मध्य वर्ग का संघर्ष अंतहीन है। यही जीवन जीने का अंतहीन संघर्ष किसी समाज और उसके साहित्य के लिए भाती है, परन्तु अमरकांत के लिए वह पूँजी है जो उनको मध्य वर्ग के चितेरे लेखक के रूप में स्थापित करती है।

संदर्भ सूची

१. मार्कण्डेय, कहानी की बात, लोकभारती प्रकाशन, प्रयागराज।
२. अमरकांत, डिप्टी कलेक्टरी, अमरकांत की सम्पूर्ण कहानियाँ।
३. अमरकांत, 'जिंदगी और जोंक' अमरकांत की सम्पूर्ण कहानियाँ।
४. रवीन्द्र कालिया, अमरकांत कृतित्व एवं व्यक्तित्व की पड़ताल।

Shodh Navneet (International Peer-Reviewed Research Journal)
ISSN : 2321-6581, IIJ Impact Factor : 5.037, Vol. XIX, July - Dec. - 2022

उदात्त वैचारिक पृष्ठभूमि पर निर्मित उपन्यास : पुनर्नवा

अरविंद कृष्ण उपाध्याय*

आाचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी जी ने चार उपन्यासों की रचना की है–बाणभट्ट की आत्मकथा, चारुचंद लेख, पुनर्नवा और अनामदाम का पोथा। पुनर्नवा १९७३ में प्रकाशित हजारी प्रसाद द्विवेदी जी का तीसरा उपन्यास है उदात्त वैचारिकी, महत्त्वपूर्ण मूल्य, वर्ण व्यवस्था और समाज में नारियों की वास्तविक स्थिति पूर्वोक्त विषय ही इस उपन्यास के प्रमुख विषय हैं। जिसमें उदात्त वैचारिकी ही इस उपन्यास का केन्द्रीय विषय है। मानव जीवन के कुशल संचालन एवं उज्ज्वल भविष्य निर्मिति हेतु यह आवश्यक है कि उसके कुछ आदर्श एवं मानक मूल्य हों, इन्हीं आदर्शों के अनुगमन में समाज जितना भी प्रगति कर पाता है उतना ही उसके लिए हितकर एवं बेहतर होता है। इन्हीं आदर्शों की स्थापना का प्रयास पुनर्नवा उपन्यास के कथानक में हजारी प्रसाद द्विवेदी जी ने किया है। इस उपन्यास का कथानक मध्य युगीन संदर्भों पर आधारित है लेकिन इस कथानक में व्याप्त मूल्य और आदर्श आधुनिक समय में भी पूरी तरह से प्रभावी और उपयोगी हैं।

उच्चादर्श ही मानव समाज को उचित गति प्रदान करते हैं और श्रेष्ठ मूल्यों के प्रतिपादन से ही मनुष्य सर्वोत्तम जीवन प्राप्त कर सकता है। अपने काम के प्रति समर्पण और अपने काम/लक्ष्य में ही लीन हो जाना तथा उसके लिए हर आवश्यक त्याग करने को तैयार रहना ही हमें सफलता के सर्वोत्तम शिखर तक पहुँचाता है। पुनर्नवा उपन्यास की पात्र मंजुला अपने नृत्य के समय पूरी तरह उसी में तल्लीन हो जाती है तब आर्य देवरात कहते हैं कि–

''बड़ा ही रमणीय साधन तुम्हें मिला है देवि! अपने को खोकर ही अपने को पाया जा सकता है। तुम्हारा नृत्य उसी महासाधना की ओर अग्रसर हो रहा है। इस महाविद्या के बल पर ही एक दिन तुम स्वयं को दलित द्राक्षा की तरह निचोड़कर महा अज्ञात के चरणों में दे सकोगी।''[१]

रूप और सौंदर्य की आभा, उसकी ओरा, उसका वर्णन उसका स्वरूप सदा से ही मनुष्य के आकर्षण का विषय रहा है। मनुष्य सौंदर्य के प्रति, सौंदर्य के केन्द्र के प्रति सदैव अनुरक्त रहता है। सौंदर्य सदैव से इस संसार के लिए सुखद अनुभूति का विषय रहा है। हिन्दी साहित्य में भी सौंदर्य वर्णन की बहुत पुरानी परंपरा गतिमान रही है। प्रारंभिक दौर के रासो साहित्य में फिर विद्यापति से होते हुये भक्तिकाल, रीतिकाल व आधुनिक काल तक के साहित्य में सौंदर्य वर्णन पूर्ण प्रभावी रूप में उपस्थित रहा है। हर बार सौंदर्योद्घाटन की उपमायें और मानक अलग–अलग रहे हैं। हजारी

* शोधछात्र, हिंदी विभाग, बुंदेलखंड विश्वविद्यालय, झाँसी

प्रसाद द्विवेदी जी का सौंदर्य वर्णन बहुत सुसंस्कृत और अनुपम है जब वो सौंदर्य वर्णन प्रारम्भ करते हैं तो लगता है कि जैसे संसार की सभी श्रेष्ठ और पवित्र उपमायें उपयोग में ले ली गयी हों। पुनर्नवा उपन्यास में मंजुला का सौंदर्य वर्णन अद्वितीय एवं अभूतपूर्व है, उदाहरण द्रष्टव्य है– ''ऐसा जान पड़ता था कि शोभा ने ही वैराग्य धारण किया है, कांति ने ही व्रतोद्यापन किया है। चन्द्रमा की स्निग्ध ज्योत्स्ना की धरती पर उतर आयी है, पद्मवन की चारुता ने ही धूल पर चलने का संकल्प किया है और रति ने ही उदास भाव ग्रहण करके धरती को धन्य किया है।''[२]

मनुष्य को समभाव रखना चाहिए वह अधिक दुख में दुखी न हो, अधिक सुख में उसे बदहवाशी न हो, उसके पाँव जमीन पर ही रहें, ऐसी प्रारंभिक भारतीय मान्यता है। महापंडित, लंकाधिपति रावण भी शिव ताण्डव स्त्रोत में भगवान शिव से यह प्रार्थना करता है कि मेरी स्थिति इतनी गंभीर और तटस्थ कर दो कि मेरी दृष्टि से सुख-दुःख, धन-निर्धन, कामिनी कन्या और तृण में भेद मिट जाये। लेकिन इसके विपरीत समाज में एक ऐसी स्थिति भी देखने को मिलती है जिसमें मनुष्य को अपनी भौतिक उपलब्धियों पर अहंकार होने लगता है उसे यह बोध नहीं रह जाता कि यह धन संपत्ति चलायमान हैं सदैव किसी के पास नहीं रहती। वह अपने भौतिक संसाधनों के चकाचौंध में अंधा हो जाता है परिणामस्वरूप उसका विवेक नष्ट हो जाता है जो उसके नाश का कारण बनता है। पुनर्नवा उपन्यास में सुमेर काका कहते हैं कि–

''तेरे बाप का दिमाग भी खराब हो गया है। समझता है राजा को समझा-बुझाकर मना लेगा। बम-भोलानाथ है। आज तक समझ ही नहीं पाया कि विधाता जिसे मारना चाहता उसकी बुद्धि पर सम्पत्तिमद का ताला लगा देता है।''[३]

जब मनुष्य की या मूल्यों की उदात्तता के मानक स्तर के ऊपर उठकर चरम स्तर को प्राप्त कर लेती है तब उस पर किसी नकारात्मक शक्ति का प्रभाव आरोपित नहीं हो पाता है बल्कि उसकी आभा, उसकी ओरा हर सम-विषम परिस्थिति में अपनी अनन्य पहचान के साथ स्पष्ट रहती है। हाँ यह भी सत्य है कि इस आभा की प्राप्ति के लिए अभूतपूर्व तेज और समर्पण की आवश्यकता होती है। लेकिन एक बार के त्याग, संघर्ष, परिश्रम, सद्विचार और उदात्त संकल्पों से युक्त आभा और ओज की कोई फिर कोई तुलना नहीं रह जाती है। उसकी भाषा, उसकी अस्मिता प्रतिकूल से प्रतिकूल परिस्थिति में भी अपनी अलग पहचान रखती है फिर पुनर्नवा उपन्यास से उदाहरण द्रष्टव्य है–

''असुर संसर्ग से लक्ष्मी दूषित नहीं होती है। अंधकार में दीपशिखा और भी अधिक चमकती है, मेघमाला में बिजली और भी उज्ज्वल हो जाती है।''[४]

राजनीति समाज की संचालक संस्था व्यवस्था है। वह समाज के विभिन्न अवयव-तत्त्वों के प्रबंधन का कार्य करती है।

मानव समाज में इतनी विभिन्नता के बाद भी सभी का सामूहिक प्रबंधन वास्तव में चुनौती पूर्ण

कार्य है। ऐसी चुनौतियों से घिरी व्यवस्था को बहुत संयत आचार संहिता का पालन करना चाहिए, जिससे उसके द्वारा न्यूनतम गलती का अवसर बने, इसके साथ-साथ यह आवश्यक है कि राजसत्ताओं को अपनी स्वस्थ आलोचना को सुनने का आत्मबल होना चाहिए। जिससे समय-समय पर उनके गुणों-दोषों का पृथक्करण होता रहे। लेकिन दुभाग्यपूर्ण स्थिति यह है कि आज के दौर में अधिकांश राजसत्तायें इसके विपरीत स्वभाव की होती जा रही हैं। आज उन्हें प्रिय बोलने वाले लोग ही अपने आसपास पसंद आते हैं, सच से सामना कराने वाले लोग उन्हें कतई पसंद नहीं हैं। अपनी प्रशंसा और तारीफों के लिए वो ढेर सारे खर्चे और आडंबर भी आयोजित करते हैं लेकिन इससे उन्हें भी और समाज को भी सिर्फ और सिर्फ नुकसान भर होता है उसका कोई अस्तित्व या महत्त्व नहीं होता, वो व्यवस्था प्रमुख के अहंकार की तुष्टि मात्र होती है। लोभवश की गयी राजस्तुतियों पर तंज कसते हुये पुनर्नवा उपन्यास में दृष्टांत आता है कि-

''राजस्तुति एक ऐसा विषय है, जिसका अर्थ कहीं नहीं रहता। वह मूर्खों द्वारा, मूर्खों का किया हुआ, मूर्खतापूर्ण कथन मात्र है।''[५]

मनुष्यता की रक्षा के लिए, समाज की रक्षा के लिए, उसके विकास एवं व्यवस्थित प्रबंधन के लिए सांस्कृतिक अवधारणा एवं संस्कृति अपरिहार्य है, अनिवार्य है। संस्कृति की ही उपजाऊ एवं उर्वर पृष्ठभूमि पर संस्कार और उदात्त विचार पल्लवित एवं पोषित होते हैं जिससे मानव जाति के जीवन में उत्कृष्टता आती है। लेकिन हर समय में मनुष्यता, सभ्यता के खतरे होते रहे हैं। जिनका सीधा हमला सांस्कृतिक तत्त्वों पर होता है, कल्याणकारी व्यवस्थाओं पर होता है, सद्विचारों पर होता है। ऐसी स्थिति में समाज का श्रेष्ठ और जागृत वर्ग इनसे दो-दो हाथ करके इन्हें परास्त करता है। इन्हीं बुरे विचारों से मुक्ति हेतु चिंता पुनर्नवा उपन्यास में भी मिलती है। उदाहरण द्रष्टव्य है- ''देवता और शास्त्रों को नष्ट करने वाले विचार कैसे नष्ट होंगे।''[६]

परिवर्तन किसी भी सभ्य और स्वस्थ समाज का नियम है। परिवर्तन के द्वारा ही हम नई मान्यताओं को स्वीकार कर पाते हैं और कुंद हो चुकी पुरानी रूढ़ियों से मुक्ति पाते हैं। हर समाज समय की गति के साथ विकसित और नवीन धारणाओं से युक्त होता जाता है यह संसार की गति के सापेक्ष होने वाला सामान्य परिवर्तन मात्र है व्यवस्थाओं के लिए भी यह आवश्यक है कि वे समय के सापेक्ष खुद में आवश्यक परिवर्तनों के लिए तैयार रहें, किसी तरह की रूढ़िगत ग्रंथि न पालें। अगर व्यवस्थायें आवश्यक परिवर्तनों को आत्मसात करती रहेंगी तो वो समय के साथ और दृढ़ होती जायेंगी, इसके विपरीत अगर व्यवस्थायें परिवर्तनों से इंकार करेंगी तो उनका भी अस्तित्व सुरक्षित नहीं रहेगा। पुनर्नवा उपन्यास में यही विषय स्पष्ट तौर पर मिलता है उदाहरण देखिये-

''इसी तरह विधि-व्यवस्था-सम्बन्धी परिस्थितियाँ बदलती रहती हैं, जिसे आज अधर्म समझा जा रहा है, वह किसी दिन लोक-मानस की कल्पना से उठकर व्यवहार की दुनिया में आ जायेगा। अगर निरंतर व्यवस्थाओं का संस्कार और परिमार्जन नहीं होता रहेगा तो एक दिन

व्यवस्थायें तो टूटेंगी ही, अपने साथ धर्म को भी तोड़ देंगी।"[७] एक आदर्श राजा का दायित्व है कि उसके राज्य में न्याय एवं धर्म का शासन स्थापित हो। समाज के प्रमुख लोगों तक सीमित न रहकर राज्य अंतिम व्यक्ति तक अपनी लोककल्याणकारी नीतियों को पहुँचायें, कमजोर से कमजोर नागरिक भी अपने को कानून द्वारा रक्षित महसूस करे। उसे यह बोध सदैव रहे कि मेरा राज्य न्याय एवं कानून के स्तंभों पर टिका है जिसमें लोकमंगल सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण है। किसी भी स्त्री को किसी के द्वारा दोयम व्यवहार का शिकार न होना पड़े। राज्य प्रमुख स्वयं स्त्रियों का सम्मान करने वाला होना चाहिए। पुनर्नवा में गोपाल आर्यक राज्य ग्रहण के साथ यही घोषणा करते हैं कि–

"किसी महिला का कोई असम्मान न होने पाये और नगर में जो भी दुःखी और सताया हुआ हो वह अबसे अपने को आर्यक के शस्त्र द्वारा रक्षित समझे। कहीं कोई कष्ट न पाए, भूखा न रहे, अत्याचारित न हो।"[८]

इसी तरह सम्राट समुद्रगुप्त में अनेक मानवोचित और सम्राटोचित गुणों का वर्णन मिलता है। कहते हैं कि वो शौर्यवान पुरुषों का सम्मान करते थे, भारतीय परंपरा में ऐसे राजसत्ता प्रमुखों का वर्णनीय स्थान है। उदाहरण देखिए–

"समुद्रगुप्त स्वयं वीर पुरुष थे और वीर पुरुषों का सम्मान करना भी जानते थे। वे दृढ़ चरित्र व्यक्ति थे और सम्पूर्ण देश में दृढ़ चरित्र व्यक्तियों का प्राधान्य स्थापित करना चाहते थे। वे परम्परागत भारतीय जीवन के नैतिक मूल्यों के पोषक भी थे और उन्नायक भी।"[९]

शौर्य, पराक्रम, परिश्रम, वीरता, साहस और उत्साह का महत्त्व भारतीय समाज–साहित्य में प्रारंभिक दौर से ही प्रतिपादित और स्थापित है। भारतवर्ष में देश और समाज की रक्षा के लिए लड़ते–लड़ते मर जाने को वीरगति की संज्ञा दी जाती है जो किसी राजा या सैनिक के लिए मृत्यु की सर्वोत्तम अवस्था थी। युद्ध में शहादत श्रेष्ठ है और युद्ध से भयवश पलायन अपमानजनक है। यही दृष्टांत पुनर्नवा उपन्यास में भी आता है। उदाहरण द्रष्टव्य है– "भय से भागते हुये मत मरो, मरना ही है तो लड़ के करो।"[१०]

मनुष्य द्वारा मनुष्य की मदद ही समाज को पुष्टि और मजबूती मिलती है। भारतीय परंपराओं में यह स्पष्ट मान्यता है कि दूसरे की मदद से बड़ा कोई पुण्य कार्य नहीं है, विपत्ति ग्रस्त मनुष्य की मदद ही सबसे बड़ा धर्म है। हजारी प्रसाद द्विवेदी जी तो अपनी लोकपक्षधरता के कारण प्रसिद्ध ही हैं। पुनर्नवा उपन्यास में भी सेवा के महत्त्व का प्रतिपादन मिलता है उदाहरण देखिए–

"विपत्ति के समय विपद्ग्रस्त लोगों की सेवा करना मनुष्य का परम धर्म है।"[११]

मनुष्य के जीवन का क्या उद्देश्य होना चाहिए? भारतीय संस्कृति एवं साहित्य में इस पर बहुत स्पष्ट उल्लेख मिलता है कि मनुष्य के जीवन का सर्वोच्च लक्ष्य यह है कि उसका व्यक्तित्व इतना विराट हो जाये कि उसके आश्रय से लोगों का हित होने लगे, उसके हर कदम जनकल्याणकारी हों, उनके सानिध्य मात्र से लोगों का दुःख दूर होने लगे। लोगों के सुख–दुःख का

वह सहभागी हो। अंततः यह की दूसरों का दुःख जब हमसे दूर होने लगे तो समझना चाहिए कि हम जीवन के लक्ष्य की ओर बढ़ चले हैं। इस प्रक्रिया के फलस्वरूप यश काया का निर्माण होता है जिससे मनुष्य का नाम समयातीत उपस्थिति अंकित कर लेता है। पुनर्नवा उपन्यास में भी इसी भाव की अभिव्यक्ति मिलती है। उदाहरण देखिए–

''मनुष्य जीवन का लक्ष्य यह होना चाहिए कि लोग अनंत काल तक यश गाते रहें। यह शरीर नाशवान है यह रुग्ण होता है, वृद्ध होता है मर जाता है। पर एक यश का शरीर है यशः काय। उसमें न रोग होता है, न जरा आती है, न मृत्यु का आक्रमण होता है। 'यह यशः काय' मनुष्य के पुरुषार्थ से प्राप्त होता है।''[१२]

इस प्रकार हम स्पष्ट देखते हैं कि हजारी प्रसाद द्विवेदी जी के तीसरे उपन्यास पुनर्नवा में अनेक उदात्त मानवीय मूल्य मिलते हैं दूसरे शब्दों में कहें तो मनुष्यता की स्थापना करने वाले ढेरों विषय ही मिलकर पुनर्नवा उपन्यास का कथानक तैयार करते हैं। विभिन्न मानवीय एवं सांस्कृतिक मूल्य जैसे, दया, करुणा, वीरता, त्याग, समर्पण, विनम्रता, पौरुष, आत्मबल, संस्कृति बोध, परिवर्तनशीलता और परहित इत्यादि का जीवंत चित्रण मिलता है। पुनर्नवा उपन्यास के महत्त्व को प्रतिपादित करते हुये 'मधुरेश' अपनी किताब 'हिन्दी उपन्यास का विकास' में लिखते हैं कि– ''पुनर्नवा की सार्थकता उस इतिहास दृष्टि में निहित है जो परिस्थितियों और काल के अनुरूप शास्त्रों और प्रचलित सामाजिक विधान में संशोधन एवं पुनर्विचार की संभावनाओं को रेखांकित करती है।''[१३]

अंततः हम कह सकते हैं कि पुनर्नवा उपन्यास सांस्कृतिक पृष्ठभूमि पर खड़ा होकर आधुनिकता का स्वागत करते हुये सांस्कृतिक मूल्यों के स्थापना की वकालत करता है।

संदर्भ ग्रंथ सूची

१. हजारी प्रसाद द्विवेदी, पुनर्नवा, २०१७, राजकमल प्रकाशन प्रा.लि. १–बी नेताजी सुभाष मार्ग, दरियागंज नई दिल्ली ११००२, पृ.– ११

२. हजारी प्रसाद द्विवेदी, पुनर्नवा, २०१७, राजकमल प्रकाशन प्रा.लि. १–बी नेताजी सुभाष मार्ग, दरियागंज नई दिल्ली ११००२, पृ.– १८

३. हजारी प्रसाद द्विवेदी, पुनर्नवा, २०१७, राजकमल प्रकाशन प्रा.लि. १–बी नेताजी सुभाष मार्ग, दरियागंज नई दिल्ली ११००२, पृ.– ४१

४. हजारी प्रसाद द्विवेदी, पुनर्नवा, २०१७, राजकमल प्रकाशन प्रा.लि. १–बी नेताजी सुभाष मार्ग, दरियागंज नई दिल्ली ११००२, पृ.– ५३

५. हजारी प्रसाद द्विवेदी, पुनर्नवा, २०१७, राजकमल प्रकाशन प्रा.लि. १–बी नेताजी सुभाष मार्ग, दरियागंज नई दिल्ली ११००२, पृ.– ९६

६. हजारी प्रसाद द्विवेदी, पुनर्नवा, २०१७, राजकमल प्रकाशन प्रा.लि. १–बी नेताजी सुभाष मार्ग, दरियागंज नई दिल्ली ११००२, पृ.– १००

७. हजारी प्रसाद द्विवेदी, पुनर्नवा, २०१७, राजकमल प्रकाशन प्रा.लि. १–बी नेताजी सुभाष मार्ग, दरियागंज

नई दिल्ली ११००२, पृ.– १६८

८. हजारी प्रसाद द्विवेदी, पुनर्नवा, २०१७, राजकमल प्रकाशन प्रा.लि. १–बी नेताजी सुभाष मार्ग, दरियागंज नई दिल्ली ११००२, पृ.– २०३

९. हजारी प्रसाद द्विवेदी, पुनर्नवा, २०१७, राजकमल प्रकाशन प्रा.लि. १–बी नेताजी सुभाष मार्ग, दरियागंज नई दिल्ली ११००२, पृ.– २३१

१०. हजारी प्रसाद द्विवेदी, पुनर्नवा, २०१७, राजकमल प्रकाशन प्रा.लि. १–बी नेताजी सुभाष मार्ग, दरियागंज नई दिल्ली ११००२, पृ.– २४६

११. हजारी प्रसाद द्विवेदी, पुनर्नवा, २०१७, राजकमल प्रकाशन प्रा.लि. १–बी नेताजी सुभाष मार्ग, दरियागंज नई दिल्ली ११००२, पृ.– २२६

१२. हजारी प्रसाद द्विवेदी, पुनर्नवा, २०१७, राजकमल प्रकाशन प्रा.लि. १–बी नेताजी सुभाष मार्ग, दरियागंज नई दिल्ली ११००२, पृ.– १०२–१०३

१३. मधुरेश, हिन्दी उपन्यास का विकास, २०१६, सुमित प्रकाशन, यू.एफ. ४२ अलोप शंकरी अपार्टमेंट, १०७/१७७ अलोपीबाग, इलाहाबाद, पृ.– १७१

———————

Shodh Navneet (International Peer-Reviewed Research Journal)
ISSN : 2321-6581, IIJ Impact Factor : 5.037, Vol. XIX, July - Dec. - 2022

वर्तमान में महात्मा गाँधी के शैक्षिक कार्यों की उपादेयता

डॉ. सीमा कुमारी*

प्रस्तावना

महात्मा गाँधी के शैक्षिक कार्य आदर्शवादी विचारधाराओं पर आधारित रहे हैं। वह स्वयं भी यह मानते थे कि यदि समाज का विकास करना है तो शिक्षा अत्यन्त महत्त्वपूर्ण है इसलिए उनका मूलमन्त्र था – ''शोषण विहीन समाज की स्थापना करना।'' क्योंकि जब सभी व्यक्ति शिक्षित होंगे तभी हम एक स्वस्थ्य समाज की कल्पना कर पायेंगे। उनका शिक्षा के प्रति जो समर्पण था वह अतुलनीय है। वह बच्चों में ३H की शिक्षा Head Hand Heart व ३R की शिक्षा Reading writing Arithmetic दिए जाने के पक्ष में थे।

वह बच्चों को शिल्प की शिक्षा देकर एक अच्छा शिल्पकार बनाना चाहते थे जिससे कि बच्चा स्वावलम्बी बन सके, अपने पैरों पर खड़ा हो सके। नई शिक्षा नीति २०२० में भी इसी विचार को इस प्रकार से व्यक्त किया गया है कि अब छठीं कक्षा से रोजगार परक शिक्षा के अन्तर्गत बच्चों को व्यावसायिक शिक्षा और कौशल विकास की शिक्षा दी जायेगी जिससे बच्चों को अच्छे रोजगार के अवसर प्राप्त हो सके।

गाँधी जी शिक्षा का माध्यम मातृभाषा मानते थे। उनका मानना था कि बच्चा जितने अच्छे से अपने विचार अपनी मातृभाषा में कह और सुन व सीख सकता है उतना किसी अन्य भाषा में नहीं इसलिए बच्चे को सदैव अपनी मातृभाषा में ही शिक्षा देनी चाहिए। नई शिक्षा नीति २०२० में गाँधी जी के इस विचार को अपनाते हुये बच्चों को पाँचवी कक्षा तक संभव हो सके तो आठवीं कक्षा तक मातृभाषा में ही शिक्षा उपलब्ध कराई जायेगी।

गाँधी द्वारा रचित बहुत सी कृतियाँ है पर यहाँ पर प्रमुख कृतियों का उल्लेख करना अनिवार्य है। गाँधी जी एक बहुत ही अच्छे लेखक भी रहे हैं, उन्होंने कई दशकों तक अनेक पत्रों का संपादन किया। जिसमें हरिजन, इंडियन ओपिनियन, यंग इंडिया व नवजीवन इत्यादि। गाँधी ज्यादातर गुजराती में ही लिखते थे, परन्तु पुस्तकों का हिन्दी और अंग्रेजी अनुवाद करते थे न करवाते थे। गाँधी जी द्वारा लिखित पुस्तकें हैं – **हिन्द स्वराज, मेरा सपनों का भारत, दक्षिण अफ्रीका के सत्याग्रह का इतिहास, सत्य के प्रयोग (आत्मकथा) गीता पदार्थ कोश सहित सम्पूर्ण गीता की टीका** ।इन सभी पुस्तकों पर विहंगम दृष्टि डालने पर यह पता चलता है कि वास्तव में

* असिस्टेंट प्रोफेसर, शिक्षाशास्त्र विभाग, डी. ए-वी. कॉलेज कानपुर (उ.प्र.)

गाँधी जी अपने महान् विचार और कार्यों की महानता के कारण ही युग निर्माता कहलायें।

समस्या का औचित्य

परम्परागत भारतीय शिक्षा पद्धति समाज द्वारा ही संचालित और संरक्षित थी, जिसे निर्णय लेने का अधिकार था, जो तदनुसार शिक्षा को सुनिश्चित करने के प्रति उत्तरदायी भी थी। अंग्रेजो ने अपने लाभ के लिए भारत की मूल शिक्षा पद्धति को ही नष्ट कर दिया। आजादी के बाद नौकरशाही के प्रभाव के कारण भारत ने एक विदेशी पद्धति को जारी रखा, जो देश की व्यवस्था के अनुसार नहीं थी।

सन् १९५९ में भारत में स्वतन्त्र शिक्षा विभाग की स्थापना हुई। कालान्तर में इसी विभाग ने शिक्षा मंत्रालय का रूप ले लिया। मौलाना अब्दुल कलाम आज़ाद प्रथम शिक्षा मंत्री बने। प्रशासन की दृष्टि से भारत की शिक्षा केन्द्र सरकार, प्रान्तीय सरकार तथा स्वायत्त शासन को सौंपी गयी। भारतीय संविधान के अनुसार शिक्षा समवर्ती सूची अर्थात् राज्य की विषय सूची में भी है और केन्द्र की विषय सूची में भी है। स्वतंत्रता के पश्चात् भारत में शिक्षा का प्रचार बहुत तीव्रता से हो रहा है, परन्तु आज भी भारत में शिक्षा सम्बन्धी समस्याएं, सामाजिक अन्याय, शोषण व अनुशासनहीनता प्रत्येक स्तर पर देखी जा सकती है। शिक्षा के पुनर्गठन हेतु समय-समय पर विभिन्न महान् विचारकों ने ऐसी शिक्षण व्यवस्था प्रदान की है जो निःसंदेह महत्त्वपूर्ण है।

मैं इसी क्रम में अपने शोध प्रबन्ध के माध्यम से गाँधी जी द्वारा प्रदान किये शैक्षिक कार्यों की उपलब्धियों को अपने समाज के सामने प्रस्तुत करना चाहती हूँ, जिससे भारत का हर व्यक्ति उनकी इन उपलब्धियों को पढ़े और उससे प्रेरित हो, उसे अपने जीवन में उतारे। यही शोधकर्त्री का प्रयास है।

समस्या कथन

वर्तमान में महात्मा गाँधी के शैक्षिक कार्यों की उपादेयता।

शोध के उद्देश्य

१. महात्मा गाँधी के शैक्षिक कार्यों की उपादेयता का अध्ययन करना।
२. महात्मा गाँधी के शिक्षा उद्देश्य का अध्ययन करना।
३. महात्मा गाँधी के शिक्षा-सम्बन्धी पाठ्यक्रम का अध्ययन करना।
४. महात्मा गाँधी के शिक्षण विधि का अध्ययन करना।
५. महात्मा गाँधी के बेसिक शिक्षा का अध्ययन करना।
६. शैक्षिक कार्यों की वर्तमान में प्रासङ्गिकता का अध्ययन करना।
७. शिक्षक व शिक्षार्थी का अध्ययन करना।
८. महात्मा गाँधी के अनुशासन से सम्बन्धित दृष्टिकोण का अध्ययन करना।

शोध विधि

किसी भी शोध कार्य को पूरा करने के लिए शोधार्थी का प्रमुख उद्देश्य अपनी समस्या का हल ढूंढना है। प्रस्तुत शोध प्रबन्ध में ऐतिहासिक अनुसंधान विधि का प्रयोग किया गया है।

शोध का क्षेत्र

वर्तमान में महात्मा गाँधी के शैक्षिक कार्यों की उपादेयता का विस्तृत अध्ययन।

शोध से सम्बन्धित मुख्य निष्कर्ष

शोधकर्त्री ने अपने शोध अध्ययन के आधार पर जो उद्देश्य निर्धारित किये हैं, उसके अनुसार ही महात्मा गाँधी के कृतित्व एवं व्यक्तित्व सम्बन्धी उपलब्ध साहित्य का अध्ययन किया गया। उन उद्देश्यों के आधार पर मुख्य निष्कर्ष इस प्रकार है।

(I) शैक्षिक कार्यों की उपादेयता सम्बन्धी निष्कर्ष

१. गाँधी जी के अनुसार विद्यार्थी सभी कार्यों को करने में सक्षम हो, इसलिए उसे सैद्धान्तिक एवं व्यावहारिक दोनों ही शिक्षा दी जाये।

२. महात्मा गाँधी जी यह मानते थे बच्चों की शिक्षा में स्वावलम्बन को जोड़ा जाए।

३. हस्तकार्य केन्द्रित शिक्षा की व्यवस्था पर बल दिया जाए।

४. शिक्षा का माध्यम मातृभाषा हो।

५. शिक्षा जीवन की वास्तविकता से सम्बन्धित हो।

६. शिक्षा में उत्पादकता हो।

(II) शिक्षा के उद्देश्य सम्बन्धी निष्कर्ष

१. महात्मा गाँधी के अनुसार शिक्षा का उद्देश्य सीमित न होकर पिछड़े शोषित क्षेत्र के विद्यार्थियों का शैक्षिक विकास करना।

२. महात्मा गाँधी के शैक्षिक विचारों में छात्रों के आत्मबल को मजबूत करना जिससे वह आने वाली चुनौतियों का सामना कर सके।

३. इनके शैक्षिक विचारों को बच्चों के चारित्रिक एवं आध्यात्मिक विकास को विकसित करना।

४. महात्मा गाँधी जी शिक्षा के साहित्यक पक्ष के स्थान पर सांस्कृतिक पक्ष को बढ़ाने पर बल देते हैं।

(III) पाठ्यक्रम सम्बन्धी निष्कर्ष

१. महात्मा गाँधी ने पाठ्यक्रम में ऐसे विषयों को सम्मिलित करने की बात कही जो जीवन के प्रत्येक पक्ष भौतिक, सामाजिक तथा आध्यात्मिक दृष्टि से उपयोगी है।

२. क्रिया प्रधान पाठ्यक्रम हो जो बालक को क्रियाशील रखे बालक मात्र निष्क्रिय श्रोता न बन जाये।

३. गाँधी ने विषयों को सह सम्बन्धित करने पर बल दिया है। शिल्प को केन्द्र में रखकर शेष विषयों को उनसे सम्बन्धित करके पढ़ाना।

(IV) शिक्षण विधि से सम्बन्धित निष्कर्ष

१. इस प्रकार की शिक्षण व्यवस्था हो जिससे विद्यार्थियों के मस्तिष्क का निर्माण हो इसके लिये अभ्यास तथा प्रशिक्षण पर बल दिया।

२. शिक्षण व्यवस्था में शिल्प केन्द्रित शिक्षण विधि, क्रिया प्रधान विधि, सह-सम्बन्ध विधि, खेल विधि को महत्त्व दिया।

(V) महात्मा गाँधी के बेसिक शिक्षा सम्बन्धी निष्कर्ष

महात्मा गाँधी बेसिक शिक्षा को ७ से १४ वर्ष के बालकों के लिए निःशुल्क एवं अनिवार्य मानते थे। उनका मानना था कि बेसिक शिक्षा के पाठ्यक्रम की अवधि ७ वर्ष की हो। महात्मा गाँधी शिक्षा का माध्यम मातृभाषा को मानते थे। संपूर्ण शिक्षा का सम्बन्ध आधारभूत शिल्प से होता है। इसलिए शिल्प शिक्षा देकर अच्छा शिल्पी बनाकर छात्रों को स्वावलम्बी बनाया जाए। शारीरिक श्रम को महत्त्व दिया गया, ताकि सीखे हुये शिल्प के द्वारा जीविकोपार्जन कर सके।

(VI) शैक्षिक कार्यों की वर्तमान में प्रासंगिकता

१. इनके अनुसार देश की भावी पीढ़ी को बचपन से ही भारतीय संस्कृति एवं परम्पराओं के अनुकूल शिक्षा व्यवस्था प्रदान करना।

२. महात्मा गाँधी के शैक्षिक विचार व कार्य आज भी प्रासंगिक है। उनके अनुसार विश्व के आधुनिक ज्ञान, विज्ञान एवं तकनीकी की उपलब्धियों का पूर्ण उपयोग करते हुये भारतीय जीवन मूल्यों पर आधारित शिक्षण पद्धति एवं साधन विकसित करना। जिससे विद्यार्थियों के लिए शैक्षिक उद्देश्य की प्राप्ति सरल व सुलभ हो।

३. महात्मा गाँधी जी का व्यक्तित्व का सर्वाङ्गीण विकास भी आज की परिस्थितियों में प्रासंगिक है अर्थात् बालक का शारीरिक, मानसिक, नैतिक, आध्यात्मिक, चारित्रिक विकास यदि यह पक्ष विकसित नहीं है तो छात्र पूर्ण नहीं कहलायेगा।

(VII) शिक्षक व शिक्षार्थी सम्बन्धी निष्कर्ष

१. गाँधी जी बाल-केन्द्रित शिक्षा में विश्वास करते थे और वे अध्यापक को शिक्षा का केन्द्र न मानकर उसे बालक का मित्र, परामर्शदाता एवं पथ-प्रदर्शक मानते थे।

२. शिक्षक को परिस्थिति का पूर्ण ज्ञान होना चाहिए उसे बालकों की जिज्ञासा तथा उत्सुकता को बढ़ाने वाला उनकी भावनाओं, रुचियों का मार्गदर्शन करने वाला होना चाहिए।

(VIII) महात्मा गाँधी के अनुशासन सम्बन्धी निष्कर्ष

१. महात्मा गाँधी आदर्शवादी दार्शनिक थे, अतः उनका अनुशासन सम्बन्धी दृष्टिकोण आदर्शवादी था।

२. वे प्रभावात्मक अनुशासन में विश्वास करते थे। उनका कहना था कि बालक के चारों ओर का वातावरण इतना शुद्ध तथा प्रभावी बना दो जिसे देकर बालक आत्म-अनुशासन को अनायास

ही ग्रहण कर ले।

३. गाँधी जी यह मानते थे कि बालक अनुकरण द्वारा सीखता है। उसके सामने यदि आदर्श जीवन का उदाहरण प्रस्तुत किया जायेगा तो बालक का नैतिक विकास होगा और वह स्वयं अनुशासित होगा।

शोध के शैक्षिक निहितार्थ

प्रस्तुत शोध के शैक्षिक निहितार्थ इस प्रकार है –

१. गाँधी जी का शिक्षा दर्शन वर्तमान युग संस्कृति संक्रान्ति के मूल्यों की स्थापना करने में सहायक है।

२. प्रस्तुत शोध में भौतिकता एवं आधुनिकता से प्रभावित मानव संस्कृति जो निर्जीव हो चली है, जिससे मानव जीवन में अनेक व्यक्तित्व, मनोवैज्ञानिक, सामाजिक, धार्मिक, राजनैतिक, शैक्षिक, सांस्कृतिक आध्यात्मिक समस्याओं को दूर करने में कारगर है।

३. प्रस्तुत शोध शिक्षक-शिक्षार्थी सम्बन्धी मधुर व घनिष्ठ बनाने तथा मौजूदा अनुशासनहीनता के उपाय सुझाने की दृष्टि से उपयोगी है।

४. शिक्षा ही मानव जीवन की समस्याओं की शक्ति रखती है। इसलिए आवश्यकता है ऐसी शिक्षा प्रणाली की जो विद्यार्थियों में उचित गुणों का विकास करे तथा पुस्तकीय ज्ञान के साथ संस्कारों की भावना जागृत करे। अतः यह शोध इन उद्देश्यों की पूर्ति में सहायक सिद्ध हो सकेगा।

५. प्रस्तुत शोध भारतीय शिक्षा दर्शन में नवाचारों के पक्ष में एक अनूठा प्रयोग सिद्ध होगा।

६. वर्तमान में भारतीय शिक्षा की चुनौतियों, समस्याओं, कठिनाइयों तथा शैक्षिक शोध की दृष्टि से उपयोगिता व सार्थकता रखता है।

सन्दर्भ-ग्रन्थसूची

- त्रिपाठी, श्याम सुन्दर, हमारे राष्ट्र निर्माता भाग एक विद्याभारती, अ. मा. शिक्षा संस्थान, सरस्वती कुंज निराला नगर, लखनऊ।
- भारतीय शिक्षा शोध संस्थान, वार्षिक प्रतिवेदन भारतीय शिक्षा शोध संस्थान, सरस्वती कुंज, निराला नगर, लखनऊ।
- त्रिपाठी, श्याम सुन्दर, हमारे राष्ट्र निर्माता भाग दो विद्याभारती, अ. भा. शिक्षा संस्थान, सरस्वती कुंज निराला नगर, लखनऊ।
- भारतीय शिक्षा शोध पंजिका, जनवरी से जून २०१५, भारतीय शिक्षा शोध संस्थान त्रिपाठी, श्याम सुन्दर हमारे राष्ट्र निर्माता भाग – एक विद्याभारती अ. भा. शिक्षा संस्थान, सरस्वती कुंज निराला नगर, लखनऊ।
- शर्मा, मदन लाल, शिक्षा का स्वरूप, हिन्दू शिक्षा समिति हरियाणा कुरुक्षेत्र द्वारा स्वर्ण जयन्ती अवसर पर प्रकाशित।
- डॉ. ऊमा रानी, शिक्षा के समाजशास्त्री आधार।
- डॉ. मिश्रा, शुक्ला, लहरी-शिक्षा के समाजशास्त्रीय आधार, अनुसंधान प्रकाशन।
- मिश्रा, तिवारी, अवस्थी, शिक्षा के दार्शनिक आधार अनुसंधान प्रकाशन।

Shodh Navneet (International Peer-Reviewed Research Journal)
ISSN : 2321-6581, IIJ Impact Factor : 5.037, Vol. XIX, July - Dec. - 2022

डिण्डौरी जिले के उच्च माध्यमिक विद्यालय स्तर के विधार्थियों की वैज्ञानिक अभिवृत्ति एवं समायोजन क्षमता का उनकी शैक्षणिक उपलब्धि पर प्रभाव का तुलनात्मक अध्ययन

किशन कुमार यादव*, डॉ. सुनील कुमार जैन**

भूमिका

स्वामी विवेकानन्द ने कहा है कि ''हमें उस शिक्षा की आवश्कता है, जिसके द्वारा चरित्र का निर्माण होता है, मस्तिष्क की शक्ति बढती है, बुद्धि का विकास होता है और मनुष्य अपने पैरों पर खड़ा हो सकता है।'' शिक्षा निरंतर चलने वाली एक प्रक्रिया है, जो जीवन पर्यंत चलती रहती है। जिसका एक मात्र उद्देश्य अच्छे व्यक्त्वि के विकास से है। इसके माध्यम से बालक के आन्तरिक शक्तियों को बाहर निकाला जाता है। शिक्षा एक त्रिमुखी प्रक्रिया है। शिक्षक, शिक्षार्थी व पाठ्यक्रम इसके तीन ध्रुव हैं। पाठ्यक्रम के माध्यम से शिक्षक व शिक्षार्थी की अन्तःक्रिया से ही अधिगम उद्देश्यों की प्राप्ति होती है। शैक्षिक प्रक्रिया में शिक्षक द्वारा शिक्षार्थी में केवल पाठ्यक्रम ही हस्तान्तरित नहीं किया जाता, बल्कि वह अपने व्यक्तित्व की छाप भी छोड़ता है। शिक्षण की प्रभावोत्पादकता बहुत कुछ अर्हता प्राप्त योग्यता, कुशलता व दक्षता पर अवलम्बित हैं। वर्तमान में जो शिक्षा के मूल्य निर्धारित किये गये हैं, उनके अनुसार राष्ट्रीय शिक्षा नीति के निर्माता ने ऐसे बालक का स्वप्न देखा है – ''जो इच्छुक हों, किन्तु दुराग्रही न हों और हठी न होकर व्यवहार कुशल हों पूर्वाग्रह से ग्रसित न होकर पक्षपाती न हों, विवेक और न्यायप्रिय हों, त्रुटि करने वाला न होकर दृढ़ निश्चयी हों, अन्धविश्वासी न होकर वैज्ञानिक अभिवृत्ति वाला हो।''

अतः आवश्यक है कि वर्तमान शिक्षा प्रणाली एवं वातावरण का निर्माण बालक में वैज्ञानिक अभिवृत्ति को विकसित करने के लक्ष्य को सम्मुख रखकर किया जाये।

प्रस्तावना

शिक्षा जीवन की आवश्यकताओं की पूर्ति करने का एक सशक्त माध्यम है। यह शिक्षक की नैसर्गिक प्रवृत्तियों का शोधन और मार्गन्तीकरण करके उसे समाज का सक्रिय सदस्य बनाती हैं।

* शोधकर्ता, शिक्षाशास्त्र विभाग, सरदार पटेल विश्वविद्यालय, बालाघाट (म.प्र.)।
** प्राचार्य, वर्णी दिगम्बर जैन गुरुकुल महाविद्यालय, जबलपुर (म.प्र.)।

जिससे वह अपने उत्तरदायित्वों का निवर्हन कुशलतापूर्वक कर सकता है। शिक्षक अपने ज्ञान, कौशल व शिक्षण व्यवहार से बालक के दृष्टिकोण, ज्ञान, चरित्र, व्यवहार व आदतों को स्थायी रूप देने व वांछित साँचें में ढ़ालने का प्रयास करता है। यह सर्वसत्य है कि अच्छी शिक्षा व्यवस्था ही प्रबुद्ध नागरिक तैयार करती है। शिक्षक व शिक्षण के महत्त्व को सर्वत्र स्वीकार किया गया है। ज्ञान का प्रत्यक्षीकरण कराने वाला शिक्षक ही है। जिसकी शिक्षण कला व व्यक्तित्व विद्यार्थी के व्यवहार में वांछित परिवर्तन ला सकते हैं।

वैज्ञानिक अभिवृत्ति मानव व्यवहार या अधिगम व्यवहार में वह परिवर्तन है। जिसके द्वारा प्राकृतिक वातावरण में परिस्थितियों या घटित घटनाओं की अधिकतम शुद्धता से व्याख्या करने का प्रयास किया जाता है। समय की माँग के अनुरूप अधिकांश विद्यार्थियों को हाईस्कूल स्तर के बाद विज्ञान विषय लेने के लिये अच्छे कैरियर को ध्यान में रखने की बाध्यता होती है, किन्तु यदि यह विषय हाईस्कूल स्तर पर बच्चों के दृष्टिकोण से नीरस व अरुचिकर है, तो वैज्ञानिक अभिवृत्ति को वैज्ञानिक अभियोग्यता एवं उसके विकास हेतु शोधार्थियों द्वारा अनेक अध्ययन किये गये हैं, किन्तु वैज्ञानिक अभिवृत्ति एवं शैक्षिक उपलब्धि के सह-संबंधात्मक विकास के प्रयास हेतु अध्ययन की नितान्त कमी है। अतः इस क्षेत्र में कार्य किया गया ताकि विद्यार्थियों की वैज्ञानिक अभिवृत्ति की सूक्ष्म जानकारी से उनकी शैक्षिक उपलब्धि में वृद्धि की जा सके।

अध्ययन की प्रासंगिकता

बालक के जीवन में शिक्षा का विशेष स्थान है, जहाँ बालकों में वैयक्तिक विभिन्नताओं के साथ-साथ भिन्न-भिन्न योग्यता होती है। बालक की समस्त उपलब्धि उसके योग्यता एवं तर्कशक्ति एवं क्षमताओं के आधार पर प्राप्त होती है। बालक में इस प्रकार योग्यता वैज्ञानिक सोच एवं क्षमता के आधार पर ही विकसित होती है। वर्तमान युग विज्ञान का है। यह आज हमारे जीवन का आवश्यक अंग बन चुका है। व्यक्ति के जीवन में प्रत्येक पक्ष को विज्ञान ने प्रभावित किया है तथा मनुष्य को उन्नति के चरम सीमा पर लाकर खड़ा कर दिया है।

प्रत्येक बालक में वैक्तिक भिन्नता पायी जाती है, जिसके आधार पर हम प्रत्येक बालक के बीच अन्तर स्पष्ट कर पाते हैं, जो कि अन्य बालकों से उसे अलग बताता है। ठीक इसी प्रकार प्रत्येक बालक में समायोजन की क्षमता अलग-अलग होती है, जिन बालकों में समायोजन की क्षमता अच्छी होती। उनका विकास एवं शैक्षिक उपलब्धि का आंकलन भी अन्य बालकों के अपेक्षा अलग होता है जो कि उसे अन्य बालकों से उसे श्रेष्ठ श्रेणी में रखता है। क्योंकि जिन बालकों समायोजन की क्षमता अच्छी होगी उनमें वैज्ञानिक क्षमता का विकास भी अच्छा होगा। शिक्षा पर ध्यान न देना या सहयोग न करने में माता-पिता का निरक्षर होना, कम शैक्षणिक योग्यता, हीनता का प्रभाव डालती है। इसी दृष्टिकोण से यह आवश्यक समझा गया कि उच्चत्तर माध्यमिक विद्यालय स्तर के विधार्थियों की वैज्ञानिक अभिवृत्ति एवं समायोजन क्षमता का उनकी शैक्षणिक

उपलब्धि पर प्रभाव का अध्ययन किया जाये ताकि बालकों के समायोजन क्षमता व उनकी वैज्ञानिक अभिवृत्ति का उनकी शैक्षिक उपलब्धि पर क्या प्रभाव पड़ता है? यही इस शोध कार्य की प्रासांगिकता है।

आवश्यकता एवं महत्त्व

आज हमारे जीवन में विज्ञान आवश्यक अंग बन चुका है। व्यक्ति के जीवन में प्रत्येक पक्ष को विज्ञान ने प्रभावित किया है तथा मनुष्य को उन्नति के चरम सीमा पर लाकर खड़ा कर दिया है। विज्ञान के ज्ञान के बिना मानव समाज के कल्याण की कल्पना ही नही की जा सकती। तकनीकि, जैविकी, चिकित्सा, कृषि एवं प्रौद्योगिकी की प्रगति विज्ञान की प्रगति पर प्रदान किया, जो जिससे वह वैज्ञानिक उपलब्धियों का लाभ उठाने में समर्थ हो सके उसके लिए आवश्यक है कि उनकी अभिवृत्ति वैज्ञानिक बनाई जाये।

वर्तमान समय में विज्ञान शिक्षण का उद्देश्य छात्र-छात्राओं में वैज्ञानिक अभिवृत्ति का विकास करना है, क्योंकि विज्ञान छात्र-छात्राओं के जीवन के प्रत्येक क्षेत्र में प्रभाव डालना है, आवश्यकता इस बात कि है कि उच्चत्तर विद्यालयों में विज्ञान शिक्षण को अधिक से अधिक व्यवहारिक एवं जीवनोपयोगी बनाया जाये। शोध कार्य चयन की आवश्कता को निम्न तथ्यों के आधार पर महत्त्वपूर्ण माना गया है -

१. विद्यार्थियों में वैज्ञानिक अभिवृत्ति का विकास करना।

२. वर्तमान बदलता परिवेश के साथ समायोजन स्थापित करने में सहायक।

३. समाज की आवश्यकताओं की पूर्ति हेतु व्यक्ति को सक्षम बनाया जाये।

४. वैज्ञानिक उपलब्धि प्राप्त करने के लिए छात्रों में रुचि जाग्रत करना।

५. विद्यार्थियों को विज्ञान का ज्ञान एवं उसका कराना।

परिभाषीकरण चर

स्वतंत्र चर	-	वैज्ञानिक अभिवृत्ति, समायोजन क्षमता।
परतंत्र चर	-	शैक्षणिक उपलब्धि।
अनियंत्रित चर	-	उच्चतर माध्यमिक स्तर के विद्यार्थी।

(अ) वैज्ञानिक अभिवृत्ति

अभिवृत्ति का शाब्दिक अर्थ-विशेष योग्यता या वृत्ति से है जो कि प्रत्येक व्यक्तियों या व्यक्तिगत भिन्नता के आधार पर भिन्न-भिन्न पाया जाता है। प्रत्येक की एक विशेष योग्यता होती है, जिसे अभिवृत्ति के नाम जाना जाता है।

सामाजिक मनोवैज्ञानिक मत के अनुसार-अभिवृत्ति का प्रयोग सामाजिक अर्थों में किया है, वहीं व्यक्ति की स्वयं के प्रति अभिवृत्तियों के तीन पहलू हैं - ज्ञानात्मक-स्वयं के प्रति अभिवृत्ति के ज्ञानात्मक पहलू का अर्थ आत्मा की अन्तर्वस्तु से है। जैसे मैं ईमानदार रहूँ।

भावात्मक–स्वयं के प्रति अभिवृत्ति में भावात्मक पहलू का अर्थ उन भावनाओं से है जो व्यक्ति का अपने स्वयं के प्रति रहता है। इन भावनाओं की अभिव्यक्ति शब्दों में व्यक्त करना कठिन है, क्योंकि उस में मूल्य से संबंधित सामाग्री होती है।

जॉन डी. वी. शिक्षा के माध्यम से मनुष्य अपनी अन्तर्निहित शक्तियों की पहचान कर उसे अपने व्यवहार में प्रकट करता है। अतः शिक्षा मानव व्यक्तित्त्व का सर्वाङ्गीण विकास की आधार शिला है। शिक्षा का उद्देश्य केवल ज्ञान प्राप्ति और कौशल सम्पन्न बनाना ही नहीं है, अपितु व्यक्ति को उसके जीवन की सार्थकता समझाना भी है। शिक्षा जीवन का वह आधार है, जिसके द्वारा विद्यार्थियों के स्थायी भविष्य का निर्धारण होता है। अतः शिक्षा का अभिप्राय बालक के शारीरिक, मानसिक और बौद्धिक विकास से है। वर्तमान युग ज्ञान व सूचना की क्रान्ति का युग है। ज्ञान व सूचना की इस क्रान्ति में विद्यार्थी समाज भी अछूता नहीं रहा; क्योंकि विद्यार्थी समाज के बिना शिक्षण प्रभाविता दुर्भर है। ज्ञान–विज्ञान के विकास व नित्य परिवर्तनों के दौर में यदि विद्यार्थी अपने माध्यम से सशक्त समाज निर्माता के रूप में उभरना चाहता है, तो उसे अपने शिक्षण प्रक्रिया में शिक्षा के क्षेत्र में नित्य विकसित होने वाले आयामों के साथ–साथ वैज्ञानिक अभिवृत्ति को समाविष्ट करना अनिवार्य है।

(ब) समायोजन– समायोजन वह प्रक्रिया है जिसके द्वारा जीव अपनी आवश्यकताओं की पूर्ति को प्रभावित करने वाली परिस्थितियों मे सन्तुलन रखता है। समायोजन एक महत्त्वपूर्ण मनोवैज्ञानिक चर है। क्योंकि प्रत्येक जीवित प्राणी के सामने कुछ न कुछ बाधाएँ और समस्याएँ होती हैं। एक व्यक्ति कितना प्रभावशाली है यह उसकी समस्याओं की संख्याओं से ज्ञात नहीं होता है, बल्कि उसकी प्रभावशीलता इस बात में स्पष्ट होती है कि वह इन समस्याओं तथा जीवन की चुनौतियों को किस प्रकार स्वीकार करता है। समायोजन मुख्यतः तीन बातों पर निर्भर करता है – व्यक्ति की इच्छाओं, विचारों और प्रेरणाओं में समन्वय जितना अधिक होता है कि समायोजन उतना ही अच्छा होता है कि यदि इनमें आवश्यकता से कम समन्वय है तो समायोजन दुर्बल होगा। व्यक्ति की इच्छाओं, विचारों, प्रेरणाओं आदि की पूर्ति किस मात्रा में और किस रूप में हुई हैं। इनकी पूर्ति जितनी ही अधिक होती है। समायोजन उतना ही अच्छा होता है कि व्यक्ति की इच्छाएँ और विचार, लक्ष्य आदि सामाजिक मूल्यों से कहाँ तक मेल खाते हैं। इनमें समन्वय जितना अधिक होगा व्यक्ति का समायोजन उतना ही अच्छा होगा।

(स) शैक्षणिक उपलब्धि– शैक्षणिक उपलब्धि से तात्यर्प किसी विषय या पाठ में छात्र द्वारा अर्जित ज्ञान या कुशलता से है। विद्यालय में पढ़ाये जाने वाले विभिन्न विषयों में से छात्रों द्वारा अर्जित ज्ञान से है। इसे उस छात्र की शैक्षणिक उपलब्धि द्वारा ही जाना जा सकता है। शैक्षणिक उपलब्धि का अर्थ व्यवहार में आये उन परिवर्तनों से है, जो शिक्षण के दौरान या सानिध्य में रहने के कारण सामान्य छात्रों से अपेक्षित होते हैं। यद्यपि ये व्यावहारिक परिवर्तन ज्ञानात्मक होते हैं तथापि उन्हें व्यक्तिगत और आचरण में उद्घटित होना चाहिए।

शैक्षणिक उपलब्धि से तात्पर्य शैक्षणिक कार्य में शिक्षकों द्वारा मानवीकृत परीक्षणों द्वारा या दोनों के संयोग द्वारा मूल्यांकित उपलब्धि या प्रवीणता के विशिष्ट स्तर से है।

(चैपलिन १९७५)

शैक्षणिक उपलब्धि किसी विशेष विषय या विषयों के समूह में ज्ञान, बोध या कौशल या मापन करती है।

(फ्रीमैन)

(द) उच्च माध्यमिक स्तर– विद्यालय का ऐसा वर्ग जिसमें बालकों को उच्च कक्षा के अन्तर्गत उनकी रुचि के अनुसार विषयों का चुनाव करा कर शिक्षा प्रदान किया जाता है, जो कि कक्षा १०वीं के बाद जब बालक कक्षा ११वीं में प्रवेश लेता है। शैक्षणिक संस्था बालक स्व–निर्माण व उसके व्यक्तिगत उत्तरोत्तर उन्नति व उसके व्यक्तित्व पर प्रभाव डालती है। इसका कारण यह है कि जब बालक बाल्यावस्था में अपने अनुभवों व उसके प्रति किये गये व्यवहारों के द्वारा व्यक्ति का निर्माण कर रहा होता है। उस समय शैक्षणिक संस्थाओं का प्रभाव उसके जीवन में व्यक्तित्व को बनाने या बिगाड़ने में प्रमुख भूमिका अदा करता है।

उद्देश्य

१. शहरी एवं ग्रामीण विद्यालयों में अध्ययनरत् विद्यार्थियों के शैक्षणिक उपलब्धि का अध्ययन करना।
२. विद्यार्थियों के व्यक्तित्व पर वैज्ञानिक अभिवृत्ति का अध्ययन करना।
३. विद्यार्थियों के शैक्षणिक उपलब्धि पर वैज्ञानिक अभिवृत्ति एवं समायोजन का अध्ययन करना।
४. शहरी एवं ग्रामीण विद्यालयों के विद्यार्थियों के शैक्षणिक उपलब्धि तुलनात्मक अध्ययन करना।
५. शासकीय एवं अशासकीय विद्यार्थियों की शैक्षिक उपलब्धि का अध्ययन करना।
६. शासकीय एवं अशासकीय विद्यार्थियों की शैक्षिक उपलब्धि एवं वैज्ञानिक अभिवृत्ति के बीच सह–सम्बध का अध्ययन करना।
७. ग्रामीण व शहरी पाठशालाओं में अध्ययनरत् छात्र–छात्राओं की वैज्ञानिक अभिवृत्ति का अध्ययन करना।

सीमांकन

१. प्रस्तुत कार्य में डिण्डौरी जिले परिवेश की प्रकृति उच्चत्तर माध्यमिक शासकीय विद्यालयों तक सीमित है।
२. प्रस्तुत शोध कार्य डिण्डौरी जिले के ग्रामीण एवं नगरीय क्षेत्र के विद्यालयों में अध्ययनरत् विद्यार्थियों तक सीमित है।

३. प्रस्तुत शोध कार्य में १६-१८ वर्ष के छात्र-छात्राओं को लिया गया।

४. शोध कार्य उच्चत्तर माध्यमिक स्तर के लगभग ८०० विद्यार्थियों तक सीमित है।

पूर्व शोधकार्य

वैज्ञानिक अभिवृत्ति से संबंधित पूर्व शोध कार्य

गुप्ता, लता (२००८) ने कटनी जिले के शहरी एवं ग्रामीण क्षेत्र के उच्चत्तर माध्यमिक कक्षाओं के गणित समूह के विद्यार्थियों की वैज्ञानिक अभिवृत्ति का तुलनात्मक अध्ययन में पाया कि शहरी एवं ग्रामीण क्षेत्र के उच्चत्तर माध्यमिक कक्षाओं के गणित समूह के विद्यार्थियों की वैज्ञानिक अभिवृत्ति में कोई सार्थक अन्तर नहीं पाया गया।

श्रीमती जोशी, उषा किरण (१९९७) ने अनुसंधानकर्ताओं के शोध कार्य के आधार पर यह निष्कर्ष निकाला कि इसमें आगे और काम किया जाये। वैज्ञानिक अभिवृत्ति का प्रभाव बच्चों के शैक्षणिक उपलब्धि पर पड़ता है और जानने की जिज्ञासा से शोध कार्य किया जाये यह प्रेरणा मिली। यह कार्य शिक्षा तथा समाज दोनों के लिए उपयोगी सिद्ध होगा।

रमा एस. एन. (२०००) ने समायोजन की समस्या का शैक्षणिक उपलब्धियों से संबंध का अध्ययन में पाया कि जिन विद्यार्थियों की कक्षागत समायोजन की क्षमता अधिक थी, उनकी शैक्षिक उपलब्धि उच्च पाई गई। जब कि जिन विद्यार्थियों की समायोजन क्षमता कम पाई गई उनकी शैक्षिक उपलब्धि सामान्य या सामान्य से कम पाई गई ।

तिवारी, जी.एन. (२००१) ने प्राथमिक शिक्षण शिक्षकों की दक्षता और प्रशिक्षण की आवश्यकता का अवलोकनात्मक अध्ययन में पाया कि शिक्षकों में सामुदायिक संसाधन स्त्रोत का कक्षा शिक्षण में प्रयोग करना, छात्रों को निर्देश देना, क्रियात्मक अनुसंधान करना, अनुवर्ती सेवा देना इत्यादि के प्रति कम दक्षता पाई गई।

शुक्ला, एस. के. एवं अग्रवाल, अर्चना (१९९७) ने अनुसूचित जाति तथा सामान्य जाति के छात्र-छात्राओं के सामाजिक, आर्थिक स्थिति, बौद्धिक स्तर व्यावसायिक आकांक्षा तथा शैक्षणिक उपलब्धि स्तर का एक अध्ययन किया और पाया कि अनुसूचित जाति के छात्र-छात्राओं के अपेक्षा निम्न है तथा उनके व्यावसायिक आकांक्षा स्तर तथा शैक्षणिक उपलब्धि स्तर भी सामान्य जाति के छात्र-छात्राओं की तुलना में भिन्न है।

परिकल्पना

१. उच्चतर माध्यमिक स्तर के विद्यार्थियों की वैज्ञानिक अभिवृत्ति के विभिन्न स्तर, लिङ्गानुसार एवं उनके मध्य अन्तःक्रिया का उनकी शैक्षणिक उपलब्धि पर कोई सार्थक प्रभाव नहीं पड़ता है।

२. उच्चत्तर माध्यमिक स्तर के छात्र/छात्राओं के समायोजन क्षमता के विभिन्न स्तर के मध्य शैक्षणिक उपलब्धि के प्राप्तांक के मध्यमान में कोई सार्थक अन्तर नहीं पाया जाता है।

३. उच्चतर माध्यमिक स्तर के विभिन्न वैज्ञानिक अभिवृत्ति स्तर वाले व समायोजन क्षमता वाले विद्यार्थियों का उनकी शैक्षणिक उपलब्धि पर कोई सार्थक प्रभाव नहीं पाया जाता है।

४. शहरी व ग्रामीण विद्यालयों में अध्ययनरत् विद्यार्थियों (छात्र-छात्राओं) की वैज्ञानिक अभिवृत्ति व समायोजन में सार्थक अन्तर नहीं पाया जाता है।

शोधविधि - प्रस्तुत शोध कार्य में सर्वेक्षण विधि का उपयोग किया गया।

योजना/ शोध परिकल्प

१. डिण्डौरी जिले के शासकीय एवं अशासकीय उच्चतर माध्यमिक स्तर के विद्यालय की सूची बनाई गई है।

२. डिण्डौरी जिले के शासकीय एवं अशासकीय उच्चतर माध्यमिक स्तर के विद्यालयों की सूची जिले के जिला शिक्षा अधिकारी कार्यालय से प्राप्त की गई है।

३. इन विद्यालयों में से यादृच्छिक विधि द्वारा वांछित संख्या के विद्यार्थियों ८०० का चयन किया गया।

४. चयन किये गये विद्यालयों के विद्यार्थियों पर डॉ. धर्मशीला मालवीय द्वारा निर्मित वैज्ञानिक अभिवृत्ति मापनी एवं श्रीमती रागिनी दुबे किशोर समायोजन मापनी प्रशासित की गई है।

५. चयन किये गये विद्यालयों के विद्यार्थियों का शैक्षणिक उपलब्धि संबंधित विद्यालय से प्राप्त किया गया।

उपकरण/ परिक्षण - शोध कार्य में निम्नांकित परीक्षण का उपयोग किया जायेगा।

१. वैज्ञानिक अभिवृत्ति मापनी - डॉ. धर्मशीला मालवीय।

२. किशोर समायोजन मापनी - श्रीमती रागिनी दुबे।

प्रशासन की प्रक्रिया

शोध कार्य के प्रशासन के लिये सर्वप्रथम शोधकर्ता द्वारा अवलोकन मापनी के माध्यम से शिक्षकों की कक्षागत परिस्थितियों का अवलोकन किया गया। शोधकर्ता द्वारा प्रत्येक कक्षा में तकनीकी शिक्षकों की व्यवहारगत् परिस्थितियों को अवलोकन मापनी के आधार पर शिक्षक व विद्यार्थियों के मध्य घटित होने वाली प्रत्येक घटना को अवलोकन मापनी में अंकित किया गया है। इस प्रक्रिया के सम्पन्न करने में शोधकर्ता को लगभग १३ मिनट का समय लगा। तत्पश्चात् शोधकर्ता द्वारा अवलोकन मापनी में अंकित किये गये बिन्दुओं के आधार पर शिक्षकों की व्यवहारगत परिस्थितियों को अंक प्रदान कर आवश्यक परिणाम निकाले गए। अंकन-सभी विभाग के अङ्कों को जोड़ लिया गया और कुल अंक प्रदान किये गये और उन क्षेत्रों के अनुसार योगकर के पुस्तिका में लिखा गया। अंकन के लिये इसमें कक्षागत् व्यवहार के सभी पक्षों का प्रतिशत निकाला गया है।

न्यादर्श

जनसंख्या – डिण्डौरी जिले के रहवास की प्रकृति शहरी/ग्रामीण क्षेत्र व जिले के शहरी/ग्रामीण में स्थापित शासकीय व अशासकीय विद्यालयों के उच्चत्तर माध्यमिक विद्यालय स्तर के छात्र व छात्राएं जो कक्षा ११वीं एवं १२वीं में विज्ञान संकाय में अध्ययनरत् हैं। प्रस्तुतशोध कार्य के लिए प्राथमिक न्यादर्श के लिए निम्न प्रकार से न्यादर्श तैयार किया है –

प्राथमिक न्यादर्श तालिका

रहवास की प्रकृति	विद्यालय के प्रकार	छात्र	छात्राएँ	कुल
शहरी	शासकीय	१००	१००	२००
	अशासकीय	१००	१००	२००
ग्रामीण	शासकीय	१००	१००	२००
	अशासकीय	१००	१००	२००
योग		४००	४००	८००

सांख्यिकीय विधियाँ

सांख्यिकीय विधियों द्वारा प्राप्त आँकड़ों का विश्लेषण किया गया। जो निम्न हैं – मध्यमान, मध्यांक व टी. टेस्ट।

परिणाम तालिका

स्रोत	स्वतन्त्रता अंश	स्म ऑफ स्क्वायर	F अनुपात
लिंग	१	१४३.४२	१.४१
वैज्ञानिक अभिवृत्ति	२	१३०.२६	०.६४
समायोजन क्षमता	२	१८२.३६	१८७
त्रुटि	१९४	१९८३६.६६	–

उच्चत्तर माध्यमिक विद्यालय स्तर के विद्यार्थियों की वैज्ञानिक अभिवृत्ति के विभिन्न स्तर एवं लिंगानुसार एवं उनके मध्य अंत:क्रिया का उनकी शैक्षणिक उपलब्धि पर कोई सार्थक प्रभाव नहीं पड़ता है।

उच्चत्तर माध्यमिक स्तर के विद्यार्थियों के वैज्ञानिक अभिवृत्ति के विभिन्न स्तर एवं प्राप्तांकों

के मध्यमानों की तालिका –

लिंग	वैज्ञानिक अभिवृत्ति	मध्यमान	मानक विचलन	संख्या
छात्र	अनुकूल	६४.४३	१०.१४	९४
	समान	६५.०९	१०.०८	३२
	प्रतिकूल	६९.५६	०९.८	१६
छात्राएँ	अनुकूल	६४.५१	१०.५१	३७
	समान	६१.३०	०८.०२	१३
	प्रतिकूल	६०.८७	११.०७	०८

प्रस्तुत शोध कार्य की तालिका से स्पष्ट होता है कि उच्चतर माध्यमिक स्तर के विद्यार्थियों के परिणाम में अनुपात का मान १.४१ प्राप्त हुआ है जो कि १/१९४ स्वतंत्रता के अंश (df) पर ०.०५ स्तर पर सार्थक प्रभाव को नहीं दर्शाता जिससे स्पष्ट होता है। उच्चतर माध्यमिक स्तर के विद्यार्थियों के शैक्षणिक उपलब्धि पर कोई सार्थक अन्तर नहीं पाया गया।

उच्चतर माध्यमिक विद्यालय स्तर के विद्यार्थियों की वैज्ञानिक अभिवृत्ति एवं समायोजन क्षमता के विद्यार्थियों का उनके शैक्षणिक उपलब्धियों पर कोई सार्थक अन्तर नहीं है।

उच्चतर माध्यमिक विद्यालय स्तर के विद्यार्थियों की वैज्ञानिक अभिवृत्ति एवं समायोजन क्षमता के विभिन्न स्तर वाले विद्यार्थियों और उनके शैक्षणिक उपलब्धि तालिका।

वैज्ञानिक अभिवृत्ति/ समायोजन क्षमता	**मध्यमान**	**मानक विचलन**	**संख्या**
अनुकूल	६४.४५	१०.२०	३७५
समान	६४.०	०९.६६	३०१
प्रतिकूल	६६.६६	१०.८५	१२४
विद्यालय समायोजन	७४.४५	०८.६६	३४५
स्व समायोजन	४६.६४	१५.०१	२०९
समवय समूह समायोजन	८४.००	१०.१२	२४६

प्रस्तुत शोध कार्य में प्रस्तुत तालिका से स्पष्ट होता है कि उच्चतर माध्यमिक स्तर के वैज्ञानिक अभिवृत्ति के विभिन्न स्तर वाले एवं समायोजन क्षमता वाले विद्यार्थियों की उनके शैक्षणिक उपलब्धि पर कोई सार्थक प्रभाव नहीं पड़ता जिसमें वैज्ञानिक अभिवृत्ति के विभिन्न स्तर समायोजन क्षमता के लिए F अनुपात का मान ०.६४ प्राप्त होता है जो कि २/१९४ स्वतन्त्रता के अंश (df) पर ०.०५ स्तर पर कोई सार्थक अन्तर नहीं दर्शाता।

निष्कर्ष

प्राप्त आँकड़ों के विश्लेषण के आधार **''डिण्डौरी जिले के उच्च माध्यमिक विद्यालय स्तर के विधार्थियों की वैज्ञानिक अभिवृत्ति एवं समायोजन क्षमता का उनकी शैक्षणिक उपलब्धि पर प्रभाव का तुलनात्मक अध्ययन''** का अध्ययन किया गया। आँकड़ों के सांख्यिकीय आंकलन से प्राप्त परिणाम के आधार पर निम्न निष्कर्ष प्राप्त हुए –

१. परिणाम व्याख्या एवं विश्लेषण के आधार पर स्पष्ट है कि विद्यार्थियों की वैज्ञानिक अभिवृत्ति व समायोजन क्षमता का उनकी शैक्षणिक उपलब्धि सामान्य पाई गई।

२. वैज्ञानिक अभिवृत्ति व समायोजन क्षमता के विभिन्न स्तर के लिंगानुपात एवं उनके मध्य अन्तःक्रिया में कोई अन्तर नही पाई गई।

संदर्भ ग्रन्थसूची

- पाठक, पी. डी. (२०१६), प्रयोगात्मक मनोविज्ञान, श्री विनोद पुस्तक मंदिर, आगरा।
- भटनागर, ए. बी. (२०११), शिक्षण अधिगम का मनोविज्ञान, विनय रखेजा लाल बुॅक डिपो, मेरठ।
- त्रिवेदी, आर. एन. (२००८), रिसर्च मैथ्डोलॉजी, कॉलेज बुक डिपो, जयपुर।
- अग्रवाल, जे. सी. (१९६०), एज्यूकेशन रिसर्च।
- अग्रवाल, जे.सी. एवं गुप्ता, एस. (२००८), शिक्षा के आधार, दिल्ली, क्षिप्रा पब्लिकेशन।

Shodh Navneet (International Peer-Reviewed Research Journal)
ISSN : 2321-6581, IIJ Impact Factor : 5.037, Vol. XIX, July - Dec. - 2022

भूमि उपयोग एवं कृषि परिवर्तन डिण्डौरी जिले के संदर्भ में

प्रसन्न वदन मरकाम*, डॉ. भुनेश्वर टेम्भरे**

सारांश

भूमि उपयोग एक परिवर्तनशील प्रक्रिया है, जो मानवीय हस्तक्षेप द्वारा की जाती है। प्राचीन काल से ही मानव अपनी आवश्यकतानुसार भूमि का उपयोग करता चला आ रहा है। मानवीय आवश्यकताओं में जैसे-जैसे वृद्धि होती जा रही है। मानव भी अपने अनुरूप परिवर्तन करता आ रहा है। जनसंख्या एवं आवश्यकताओं के अनुरूप तथा विभिन्न प्रयोजनों हेतु कृषि भूमि तथा सम्पूर्ण भूमि क्षेत्र उपयोग में परिवर्तन होता चला गया। आधुनिक काल में इस हस्तक्षेप से अधिक वृद्धि के कारण कृषि परिवर्तन तथा भूमि उपयोग के परिवर्तन को हम आसानी से देख सकते हैं।

वर्तमान में कृषि जीवन निर्वाह स्वरूप से व्यवसायिक स्वरूप में परिवर्तित हो चुकी है। कृषि के इस स्वरूप ने न केवल मानवीय भूख को शान्त किया है, अपितु आर्थिक मानव सभ्यता के विकास क्रम में आखेट एवं पशुपालन ने खानाबदोश मानव सभ्यता को जन्म दिया था; परन्तु कृषि ने मानव सभ्यता को न केवल स्थायित्व प्रदान किया, अपितु एक नया कलेवर भी प्रदान किया। मानव सभ्यता के इतिहास में कृषि का मुख्य स्थान है।

प्रस्तावना

भूमि उपयोग परिवर्तन पर्यावरणीय स्वरूप बदलाव का एक प्रमुख मुद्दा है। सन् १९७२ से भूमि उपयोग परिवर्तन पर वैज्ञानिक शोध व्यवस्थित रूप से किया जा रहा है। १९७२ तथा १९९२ के बाद इस पर शोध संगोष्ठी द्वारा विशेष बल दिया जा रहा है। भूमि उपयोग परिवर्तन मूलतः मानवीय क्रियाकलाप तथा पर्यावरणीय समझ का प्रमुख घटक है। भूमि उपयोग एक परिवर्तनशील प्रक्रिया है, जो मानवीय हस्तक्षेप द्वारा की जाती है। मानव की सबसे बड़ी आवश्यकताओं में आवास, वस्त्र एवं खाद्यान्न सामग्री प्रमुख है, जिस पर कृषि उत्पादनों में निरंतर वृद्धि हेतु अन्य क्षेत्र को भी कृषि भूमि पर परिवर्तित किया जा रहा है। भूमि उपयोग तथा कृषि परिवर्तन का मुख्य कारण मानव को माना जा सकता है। मानवीय जनसंख्या की पूर्ति हेतु निरंतर प्रयास किए जा रहें हैं तथा अनेक योजनाओं को क्रियान्वित भी किया जा रहा है।

* शोधार्थी, भूगोल विभाग, रानी दुर्गावती विश्वविद्यालय, जबलपुर (म.प्र.)
** प्रोफेसर, भूगोल विभाग, रानी दुर्गावती शासकीय स्नातकोत्तर महाविद्यालय, मण्डला (म.प्र.)

मानव की मूलभूत आवश्यकताओं में रोटी, कपड़ा और मकान प्रमुख है। जहाँ रोटी एवं कपड़ा हेतु निरंतर कृषि उत्पादन तथा उद्योग पर ध्यान दिया जा रहा है वहीं उसके साथ-साथ आवास तथा अन्य उपयोगी इमारतों का भी निर्माण निरंतर ही हो रहा है। भूमि किसी भी क्षेत्र की सीमित संसाधनों में से एक है। भूमि पर ही मानव का आदि एवं अन्त होता है। मानवीय क्रियाकलाप भूमि से ही शुरू एवं भूमि पर ही समाप्त हो जाते हैं। भूमि का मानव भरपूर प्रयोग करता है। रहना, चलना-फिरना, खाद्यान्न सामग्री का उत्पादन जैसे अनेक क्रियाकलाप भूमि पर ही किए जाते हैं। भूमि का अपनी आवश्यकतानुरूप निरंतर उपयोग मानव अपने इच्छानुरूप करता चला आ रहा है।

विश्व के अधिकांश भागों में जब सभ्यता के विकास का क्रम भी प्रारम्भ नहीं हुआ था तब से वर्तमान समय तक भारत कृषि प्रधान देशों में अपनी सर्वोच्चता स्थापित किये हुए है। समय एवं स्थान के संदर्भ में इस क्षेत्र में निरन्तर बदलाव हो रहे हैं। निरंतर बढ़ती जनसंख्या एवं उसकी विविध आवश्यकताओं ने इस परिवर्तन की गति को तीव्र बना दिया संबल भी प्रदान किया है। कृषि का यह वर्तमान स्वरूप प्राकृतिक कारकों पर निर्भरता को छोड़कर सांस्कृतिक एवं तकनीकी कारकों पर आश्रित होता जा रहा है। जल संसाधनों एवं सिंचाई परियोजनाओं के समुचित प्रबंधन के द्वारा कृषि का आधुनिकतम स्वरूप संभव नहीं है। प्रस्तुत अध्ययन कृषि के व्यवसायिक स्वरूप पर जल संसाधनों एवं सिंचाई परियोजनाओं के प्रभावों को स्पष्ट करने का ही प्रयास है। निरन्तर बढ़ती जनसंख्या एवं उसकी भौतिक आवश्यकताओं में परिवर्तन के कारण जहाँ एक ओर खाद्यान्नों की माँग में उत्तरोत्तर वृद्धि होती जा रही है वहीं दूसरी ओर भूमि संसाधनों पर तीव्र दबाव बढ़ने के कारण कृषि भूमि एवं जनसंख्या अनुपात निरन्तर कम होता जा रहा है। इस परिदृश्य के बेहतर निदान के लिए समग्र कृषि प्रबंधन प्रणाली समय की माँग भी है और जरूरत भी है। जल संसाधनों का सपोशित प्रबंधन समग्र कृषि प्रबंधन का एक महत्त्वपूर्ण अंग है। खाद्यान्नों की बढ़ती माँग, घटती कृषि भूमि कृषि क्षेत्र में त्वरित तकनीकि कारकों को आमंत्रण दे रही है। इस आमंत्रण को जल संसाधनों के बिना पूरा करना असंभव है। प्रस्तावित अध्ययन क्षेत्र में इन्हीं संभावनाओं एवं प्रभावों को आकलित करने का प्रयास है।

अध्ययन क्षेत्र

भारत के हृदय स्थल मध्यप्रदेश के दक्षिण पूर्व में स्थित जिला डिण्डौरी का अक्षांशीय विस्तार भूमध्य रेखा से २२°००' से २३°२२' उत्तरी अक्षांश तथा ८०°८५' से ८०°५८' पूर्वी देशांतर में स्थित है। जिला डिण्डौरी के चारों ओर क्रमशः उत्तर में उमरिया, उत्तर पश्चिम में जबलपुर, दक्षिण-पश्चिम में मण्डला तथा पूर्व में बिलासपुर कवर्धा तथा अनूपपुर जिले स्थित हैं। जिला डिण्डौरी का कुल क्षेत्रफल ६१२८ वर्ग किलोमीटर है।

(स्त्रोत-जनगणना पुस्तिका २००१)

डिण्डौरी : भौगोलिक स्थिति

जिला/तहसील/विकासखण्ड	अक्षांश	देशांश	समुद्र तल से ऊँचाई (मीटर)	
			अधिकतम	न्यूनतम
जिला डिण्डौरी	२२°००' से २३°२२'	८०°८५' से ८०°५८'	११०० मीटर	८८५
तहसील/विकासखण्ड				
१. डिण्डौरी १. डिण्डौरी	२२°५६' से ३१°६८'	८१°४०' से ८१°४५'	११००	८८५
२. अमरपुर	२२°४७' से २३°२२'	८०°५८' से ८०°१२'	अप्राप्त	अप्राप्त
३. समनापुर	२२°००' से २३°२२'	८१°५०' से ८०°५५'		
४. बजाग	२२°००' से २३°२२'	८१°२१' से ८१°२०'		
५. करंजिया	२२°००' से २३°२२'	८१°३५' से ८१°४५'		
योग तहसील	२२°००' से २३°२२'	८१°४०' से ८१°४५'		
२.शहपुरा १. शहपुरा	२२°००' से २३°२२'	८०°४१' से ८०°५८'	८४०	६५०
२. मेंहदवानी	२२°००' से २३°२२'	८०°३७' से ८०°४५'		
योग तहसील	२२°००' से २३°२२'	८०°४१' से ८०°५८'	८४०	६५०

स्रोत-जिला सांख्यिकी डिण्डौरी : अधीक्षक भू-अभिलेख (स्रोत-जनगणना पुस्तिका २००)

डिण्डौरी जिले का मानचित्र

अध्ययन का उद्देश्य

प्रस्तुत शोध कार्य अथवा अध्ययन को पूर्ण करने के लिए निम्न उद्देश्यों को विशेषतौर पर ध्यान में रखा गया है –

१. अध्ययन क्षेत्र के भूमि उपयोग के वर्तमान स्थिति का अध्ययन करना।

२. अध्ययन क्षेत्र में भूमि उपयोग परिवर्तन का अध्ययन करना।

३. अध्ययन क्षेत्र में कृषि भूमि तथा उत्पादन में वृद्धि का अध्ययन करना।

४. विकास में पड़ने वाले प्रभाव का अध्ययन करना।

वैज्ञानिक प्रविधि

वैज्ञानिक प्रविधि में द्वितीयक एवं प्राथमिक दोनों ही आँकड़ों का संकलन किया गया है। द्वितीयक आँकड़ों में जिला सांख्यिकीय पुस्तिका, कृषि विभाग प्रतिवेदन, शोध साहित्य एवं शोध प्रपत्र आदि प्रतिवेदन के माध्यम से प्राप्त किया गया है। प्राथमिक आँकड़ों में अवलोकन तथा साक्षात्कार का माध्यम रखा गया है।

उपकल्पना

शोध प्रपत्र हेतु जिला डिण्डौरी के संदर्भ में भूमि उपयोग एवं कृषि परिवर्तन के संबंध में उपकल्पनाओं के रूप में निम्न बिन्दु स्पष्ट है –

१. अध्ययन क्षेत्र में भूमि उपयोग परिवर्तन हो रहा है।

२. अध्ययन क्षेत्र में कृषि भूमि में वृद्धि हो रही है।

३. कृषि उत्पादन में भी वृद्धि हो रही है।

भूमि उपयोग एवं कृषि परिवर्तन

निरन्तर हो रहे विकास तथा आधुनिकीकरण भूमि उपयोग को निरन्तर प्रभावित करता है। जैसे–जैसे मानवीय जनसंख्या की वृद्धि किसी भी क्षेत्र में होने लगती है वैसे वैसे उसकी माँग में भी वृद्धि होती जाती है फिर चाहे वह भूमि हेतु हो अथवा खाद्यान्न उत्पादन में। किसी भी क्षेत्र की भूमि निश्चित होती है, किन्तु भूमि में मानव अपने अनुसार परिवर्तन करता रहता है। एक भूमि का परिवर्तन कर दूसरी भूमि को नष्ट करता है। किसी एक भूमि में वृद्धि तथा किसी भूमि में कमी का परिणाम परिवर्तन के रूप दिखलाई देता है। मानवीय आवश्यकताओं के पूर्ति हेतु भूमि में निरन्तर परिवर्तन करना निरन्तर जारी है।

डिण्डौरी जिला का निरन्तर आधुनिकीकरण तथा विकास जारी है। भूमि उपयोग के साथ–साथ कृषि उत्पादन में भी काफी वृद्धि आई है। लागातार जनसंख्या हेतु खाद्यान्न आपूर्ति हेतु प्रयास किए जा रहे हैं, जिससे कि कृषि भूमि में निरन्तर बदलाव अवलोकित किया जा रहा है। कृषि भूमि की कमी के कारण इसे दूसरी भूमियों के द्वारा पूर्ण करने का कार्य किया जा रहा है जिससे अन्य भूमियों में इसका प्रभाव पड़ रहा है। अन्य जिलों की तरह भी बालाघाट जिला भी निरन्तर विकास कर रहा

है। कृषि में उन्नत बीज, आधुनिक तकनीकी का विकास होने से खाद्यान्न पदार्थों में भी वृद्धि अवलोकित की गई है।

शोध प्रपत्र में डिण्डौरी जिले का भूमि उपयोग परिवर्तन तथा कृषि परिवर्तन को सारणी द्वारा प्रदर्शित किया गया है।

सारणी क्रमांक - ०१

डिण्डौरी जिला : भूमि उपयोग (हेक्टेयर में)

जिला डिण्डौरी	२०००-०१	२०११-१२	अन्तर
कुल क्षेत्रफल	३५८९३५	३४११७९	१७७५६
वन भूमि	२५१६४	१७७५६	७४०८
कृषि योग्य भूमि	१८४९९	३९१८३	२०६८४
कृषि योग्य अनुपलब्ध भूमि	१३१३२	१३०४१	९१
अन्य अकृषित भूमि	११९४४	१५२९४	३३५०
पड़त भूमि	६९८१६	६१३७७	८४३९
शुद्ध बोया गया क्षेत्र	२५२४०६	२०४५९१	४७८१५

आरेख क्रमांक - ०१

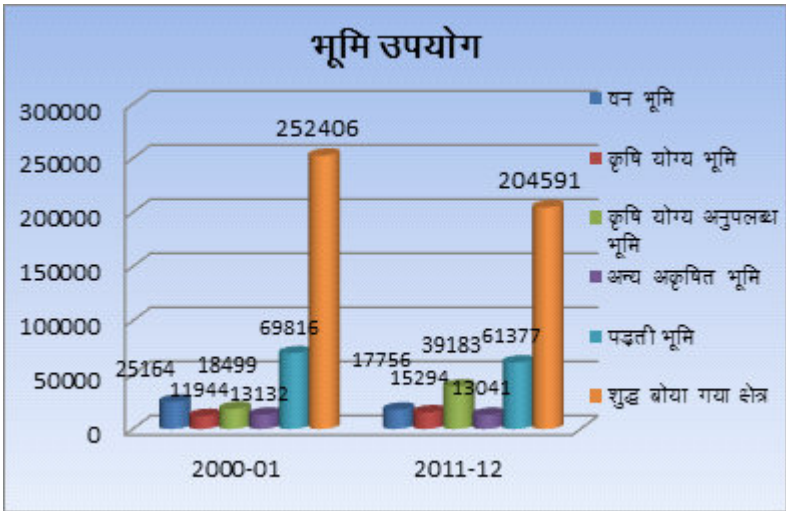

उपर्युक्त सारणी के द्वारा ज्ञात होता है कि १० वर्षीय अंतराल में कुछ भूमि में कमी हुई है तो कई भूमि में गिरावट को आंकलित किया गया है। वन भूमि जहाँ पर सर्वाधिक कमी देखी गई है १० साल के अंतराल में इस भूमि में ७४०८ हेक्टेयर की कमी आकलित किया गया है। कृषि योग्य भूमि

में भी १० साल के अंतराल में ३३५० हेक्टेयर की वृद्धि को आकलित किया गया है। कृषि योग्य अनुपलब्ध भूमि में यह अंतराल जहाँ २०६८४ हेक्टेयर वृद्धि देखी गई है वहीं पड़ती भूमि में ८४३९ हेक्टेयर की गिरावट को आकलित किया गया है। शुद्ध बोया गया क्षेत्र में १० सालों में केवल ४७८१५ हेक्टेयर की कमी हुई है।

सारणी क्रमांक - ०२

डिण्डौरी जिला : खरीफ तथा रबी फसलों के अंतर्गत क्षेत्रफल (हेक्टेयर में)

	२०००-०१	२०११-१२	अन्तर
खरीफ फसलें	१७७१६०	१७९९२१	२७६१
रबी फसलें	७५२४६	१ ०८३९२	३३१४६

आरेख क्रमांक -०२

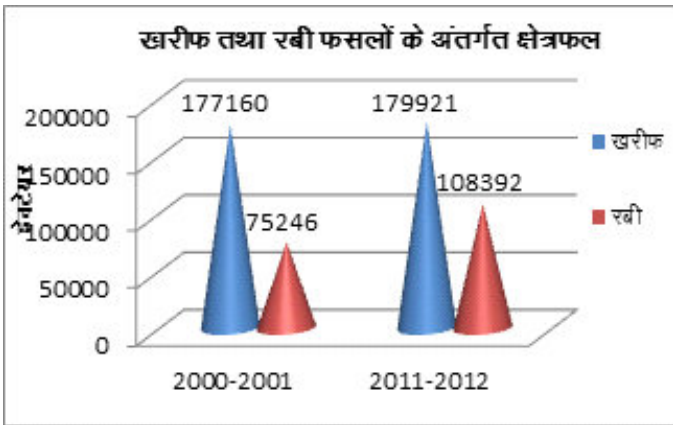

उपर्युक्त सारणी के द्वारा ज्ञात होता है कि १० वर्षीय अंतराल में कृषि परिवर्तन में वृद्धि हुई है। खरीफ फसलें जहाँ पर देखी। १० साल के अंतराल में फसल उत्पादन में २७६१ हेक्टेयर की वृद्धि आकलित किया गया है। वहीं रबी फसल में ३३१४६ हेक्टेयर की सर्वाधिक वृद्धि को देखा गया है।

निष्कर्ष

शोध अध्ययन करने के पश्चात् यह निष्कर्ष निकाला जा सकता है, कि भूमि उपयोग में निरन्तर परिवर्तन तो अवलोकित किया जा ही रहा है साथ ही उसके साथ कृषि भूमि अर्थात् फसलों में भी निरन्तर परिवर्तन देखा जा रहा है। भूमि उपयोग में जहाँ वन भूमि में सर्वाधिक वृद्धि पाई जा रही है तथा कृषि भूमि, अकृषित भूमि तथा शुद्ध सकल बोया गया क्षेत्र में भी निरन्तर वृद्धि हो रही

है वहीं अन्य भूमि जैसे कृषि योग्य अनुपलब्ध भूमि तथा पड़ती भूमि में निरन्तर गिरावट पाई जा रही है।

प्राथमिक तथा द्वितीयक आँकड़ों की सहायता से यह कहा जा सकता है कि भूमि उपयोग परिवर्तन के साथ कृषि भूमियों में फसलों में भी परिवर्तन देखा गया है। जहाँ खरीफ फसलों में वृद्धि हुई है वहीं रबी फसलों में सर्वाधिक वृद्धि देखी गई है। इससे प्रतीत होता है कि भूमि उपयोग परिवर्तन हो रहा है तथा निरन्तर उत्पादन में भी वृद्धि हो रही है।

समस्या

१. भूमि तथा कृषि संबंधी योजना का अभाव।

२. योजनाओं के क्रियांवयन की कमी।

३. जानकारी तथा जागरूकता की कमी।

सुझाव

१. भूमि तथा कृषि संबंधी योजनाओं को किसानों तक पहुँचाने का प्रयास।

२. सरकार द्वारा योजनाओं का सुचारू रूप से क्रियांवयन।

३. किसानों को शिक्षित तथा जागरूक करना।

सन्दर्भ ग्रन्थसूची

- गुर्जर, राम कुमार, ''जल संसाधन भूगोल'' रावत पब्लिकेशन्स, जयपुर, नई दिल्ली।
- जाट, बी.सी., ''जल संसाधन भूगोल'' रावत पब्लिकेशन्स, जयपुर, नई दिल्ली।
- ''भारत सरकार'' केन्द्रीय जल आयोग गेज निस्सारण एवं वेतार केन्द्र, जिला डिण्डौरी (म.प्र.)।
- कार्यालय कार्यपालन यंत्री लोक स्वास्थ्य याँत्रिकीय विभाग खण्ड-डिण्डौरी, जिला डिण्डौरी, मध्य प्रदेश शासन।
- जैन, डॉ. बी.एम., ''रिसर्च मैथ्डोलॉजी'' साउथ एशियन स्टडीज सेन्टर, राजस्थान वि.वि. जयपुर, रिसर्च पब्लिकेशन जयपुर।
- कुमार, डॉ. प्रमीला, शर्मा, डॉ. श्री कमल, ''मध्य प्रदेश हिन्दी ग्रन्थ अकादमी, भोपाल।
- हुसैन, माजिद एवं सिंह, रमेश, ''भारत का भूगोल'' जामिया मिलिया इस्लामिया, (केन्द्रीय विश्वविद्यालय) नई दिल्ली।
- जिला पंचायत एवं जनपद पंचायत डिण्डौरी (म.प्र.)।
- मरकाम प्रसन्न वदन (२०११-२०१२) ''जल संसाधन एवं सिचाई विकास परियोजनाओं का एक भौगोलिक अध्ययन'' (जिला डिण्डौरी के संदर्भ में) अप्रकाशित लघु शोध प्रबन्ध, एम. फिल्. हेतु शोध निर्देशक डॉ. लोकेश श्रीवास्तव, रानी दुर्गावती विश्वविद्यालय, जबलपुर।
- यादव, आलोक कुमार, (२०००) ''मध्य प्रदेश के कृषि विकास में सिंचाई परियोजनाओं का योगदान'' (छिंदवाडा जिले के संदर्भ में), अर्थशास्त्र विषयांतर्गत पी. एच.डी. की उपाधि हेतु अप्रकाशित शोध प्रबन्ध, शोध निर्देशक डॉ. यू.सी. जैन, रानी दुर्गावती वि. वि. जबलपुर (म.प्र.)।

शोध नवनीत शोध पत्रिका के सामान्य नियम

- शोध-नवनीत शोध पत्रिका के सम्पादक, समीक्षक आदि समस्त पद अवैतनिक हैं।
- शोध-नवनीत शोध पत्रिका देश-विदेश के विद्यार्थियों, शोधच्छात्रों, शिक्षाविदों तथा विभिन्न क्षेत्रों के विशेषज्ञों के शोध प्रक्रिया आधारित गुणवत्तापरक, ज्ञानपूर्ण एवं स्तरीय शोधपत्रों/शोधलेखों को नि:शुल्क प्रकाशन के लिए आमंत्रित करता है।
- सम्पादक मण्डल/समीक्षक समिति द्वारा चयनित शोधपत्रों/शोधलेखों को ही प्रकाशित किया जायेगा; किन्तु इसकी सामग्री के प्रति जवाबदेही इसके लेखकों की होगी। शोधपत्र/शोधलेख मौलिक या पाण्डुलिपि से सम्बन्धित होना चाहिए। लेखकों के मत से सम्पादक मण्डल की सहमति अनिवार्य नहीं है, किन्तु किसी धर्म, जाति, सम्प्रदाय आदि के विरुद्ध लेखों के प्रकाशन के लिए न विचार किया जायेगा और न ही प्रकाशित किया जायेगा।
- सम्पादक/सम्पादक मण्डल/समीक्षक आदि के द्वारा अस्वीकृत शोधपत्रों/शोधलेखों को उनके लेखकों को वापस नहीं किया जायेगा। इसलिए लेखक अपने पास इसकी एक प्रति सुरक्षित रखें। शोधपत्रों/शोधलेखों की सामग्री अनुचित या विवादित होने की स्थिति में सम्पादक/सम्पादक मण्डल/समीक्षक का निर्णय अन्तिम होगा। सम्पादक/सम्पादक मण्डल आदि द्वारा शोधपत्रों/शोधलेखों के पाण्डुलिपि आदि में कुछ परिवर्तन करके प्रकाशित किया जा सकता है।
- शोध-नवनीत में प्रकाशित शोधपत्रों/शोधलेखों को देश-विदेश के विश्वविद्यालय, महाविद्यालय, शोध-संस्थान आदि के द्वारा स्वीकृत या अस्वीकृत किये जाने पर प्रकाशक, सम्पादक, सम्पादक मण्डल, मुद्रक आदि की कोई जिम्मेदारी नहीं होगी।
- अगला अंक प्रकाशित होने के बाद पहले के अंकों की सामग्री का दुरुपयोग न हो इसलिए नष्ट कर दिया जायेगा। सी.डी./ई-मेल से प्राप्त लेखों को सुरक्षित रखने का प्रयास किया जायेगा।
- शोध-नवनीत से सम्बन्धित विवाद के किसी भी निर्णय के लिए न्यायिक क्षेत्र जनपद न्यायालय फैजाबाद ही मान्य होगा।
- लेखक शोध प्रक्रिया आधारित शोधपत्रों/शोधलेखों को 5 से 7 पृष्ठों (2000-3000 शब्दों) में Unicode (Mangal), Kruti Dev-10 (size 16)/Times New roman (Size-14) में संस्कृत/अंग्रेजी/हिन्दी भाषा में टंकित कराकर सी.डी. (हार्ड कॉपी सहित)/ई-मेल के माध्यम से नाम, पता, मोबाइल नं. ई-मेल सहित भेजें।
- **शोधपत्र में लगभग 150 शब्दों के शोधसार एवं मुख्य शब्द सहित सन्दर्भ अन्त में होना चाहिए।**
- शोधपत्र में सन्दर्भ, लेखक, पुस्तक, व्याख्याकार का नाम, प्रकाशक, प्रकाशन का स्थान, प्रकाशन वर्ष और पेज संख्या आदि सहित होना चाहिए।

सम्पर्क सूत्र : +91-7800193920

ई-संङ्केत : **shodhnavneet@gmail.com**

ISSN 2321-6581

9 772321 658000

अक्षर संयोजन एवं मुद्रक : **प्रभा कम्प्यूटर्स एण्ड प्रिंटर्स**, युनिवर्सिटी रोड, इलाहाबाद